ओ३म्

"संस्कारचन्द्रिका" से पुनर्मुद्रित वैदिक संस्कार माला–सं० ५

अथ नामकरणसंस्कार

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रणीत "संस्कारविधि" के नामकरण संस्कार की विस्तृत व्याख्या

★

–: रचयिता :–

विद्वद्वर्य्य श्रीयुत (स्व.) पंडित भीमसेन शर्म्मा आगरा (निवासी)

तथा

राजमित्र राजरत्न श्रीयुत (स्व) आत्माराम राधाकृष्ण (अमृतसरी)

–: रचयिता :–

सृष्टिविज्ञान दिग्विज्ञान, शरीरविज्ञान, आत्मस्थान विज्ञान, ब्रह्मयज्ञ, वैदिक विवाहादर्श, बलप्राप्ति, माण्डूक्योपनिषद्, तुलनात्मक धर्म विचार, गीतासार, ऋषि पूजाकी वैदिकविधि, सामान्य धर्म। महर्षि दयानन्द की जीवनी (उर्दु) तथा सत्यार्थ-प्रकाश के सर्वप्रथमउर्दु–गुरुमुखी अनुवादक इत्यादि इत्यादि।

★

: प्रकाशक :

जयदेव ब्रदर्स आत्माराम पथ बड़ोदा

अ. म. पाळेकर द्वारा जागृति मुद्रणालय बड़ोदामे मुद्रित तथा
जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा द्वारा प्रकाशित

षष्ठसंस्करण | सृष्टि संवत् १९७,२९, ४९०५१ | संवत् २००८ वि०, ई० सन् १९५१ | मूल्य ≈)॥

ओ३म्

साहित्यविज्ञापक बड़ोदा

यह मासिक २७ वर्ष से नियमित प्रकाशित होरहा है। इसका वार्षिक मूल्य २) है। आर्य परिवार पत्रिका अजमेर "यह मासिक पत्र जयदेव ब्रदर्स आत्माराम पथ बड़ोदा से प्रकाशित होता है। वा० मू० २) प्रस्तुत पत्र में धार्मिक तथा सामाजिक इंगलिश हिन्दी तथा गुजराती भाषामें लेख तथा देश के प्रत्येक कोने के व्यापारियों पुस्तकविक्रेताओं आदि के विज्ञापन रहते हैं। विज्ञापनदाताओं तथा अपने व्यापारको उन्नतबनाने की अभिलाषावाले सज्जनों के लिए यह पत्र अत्यन्त उपादेय है। हम इस पत्र की उत्तरोत्तर उन्नति चाहते हैं:-

वैदिक संस्कारमाला के सब ग्रन्थ इस मासिक के ग्राहकों को पौने मूल्य में मिलेंगे।

आर्य जगत् " हमें **कर्णवेध संस्कार** तथा **उपनयन संस्कार** नामक दो लघुकाव्य पुस्तकें प्राप्त हुई। ये दोनों पुस्तकें **"संस्कार चन्द्रिका"** ग्रन्थ में से निकाल कर सर्व साधारण के हित के लिए प्रकाशित किए हैं। इसके मूल लेखक श्री० आत्मारामजी अमृतसरी हैं। **पुस्तकें अत्युत्तम हैं**। व सब प्रकार के प्रश्नों को सुलझाने वाले हैं। कर्णवेध तथा उपनयन **पर पर्याप्ति प्रकाश डाला गया है**।"

वैदिक संस्कारमाला

उपनयन संस्कार मू० ।॥)

श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा पथिक सिद्धान्तशास्त्री साहित्यालंकार लिखते हैं " **उपनयन संस्कार** यह पुस्तक आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् परलोकगत राजमित्र राजरत्न आत्मारामजी (अमृतसरी) वैदिक फ़िलासफ़र की लिखी हुई है। इसमें महर्षि दयानन्दजीकृत "संस्कारविधि" में वर्णित उपनयनसंस्कार की विस्तृत, अत्यन्त अनुसन्धान पूर्ण तथा वैज्ञानिक व्याख्या है। यज्ञोपवीत निर्माण, संख्या ब्रह्मसूत्र नाम क्यों है? कन्याओंको पण्डिता बनाना, वेदों में यज्ञोपवीत का वर्णन आदि पर विवेचना है। प्रत्येक आर्य के लिए पठनीय पुस्तक है। पुस्तक की छपाई, सफ़ाई चित्ताकर्षक है, टाइटल पृष्ठ रंगीन व सुन्दर है। हम इस पुस्तक का घरघर में प्रचार चाहते हैं।" मू ।॥) डाक व्यय -)

कर्णवेधसंस्कार मू० ।=)"आर्य जाति में प्रचलित १६ संस्कारों में से कर्णवेध संस्कार भी अपना एक विशेषस्थान रखता है। उक्त संस्कार के विषय व उद्देश्य का स्पष्ट प्रतिपादन विधि, विधान के साथ इसम कियागया है, इसके मूल लेखक राजमित्र स्व० मा० आत्मारामजी अमृतसरी संस्कारचन्द्रिका वाले हैं उसी महाग्रन्थ में से इसे निकाल कर यह छोटीसी पुस्तिका प्रत्येक सर्व साधारण आर्य के उपयोगार्थ प्रकाशित की गई है। अन्त में कर्णवेध महिमा पर युक्ति युक्त लेख भी दियागया है जिससे इस की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। **पुस्तक प्रचार योग्य एवं अत्युपयोगी है**"—मुनीश्वरदेव "आर्य" अंबाला

जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा।

ओ३म्

आर्य समाजस्य प्रवर्तको



श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती

श्री राजमित्र राजरत्न स्व० महात्मा आत्मारामजी (अमृत



" संस्कारचन्द्रिका " के व्याख्याता

जन्म ६ जून १८६६ ★ मृ. २५ जुलाई १९३८

श्रीमती यशोदा देवीजी



कुलमाता " आर्यकन्या महाविद्यालय " बडोदा

ओ३म्

नामकरणसंस्कार

****

अथ नामकरणसंस्कारविधिः

जिस दिन नाम धरना हो उस दिन अति प्रसन्नता से इष्ट मित्र हितैषी लोगों को बुला यथावत् सत्कार कर क्रिया का आरम्भ यजमान—बालक का पिता और ऋत्विज् करें। पुनः सब मनुष्य ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण और सामान्यप्रकरणस्थ संपूर्ण विधि करके आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार और "त्वन्नो अग्ने०" इत्यादि आठ मन्त्रों से आठ आहुति अर्थात् सब मिला के सोलह घृत-आहुति करें। तत्पश्चात् बालक को शुद्ध स्नान करा शुद्ध वस्त्र पहिना के उसकी माता कुण्ड के समीप बालक के पिता के पीछे से आ दक्षिणभाग में होकर बालक का मस्तक उत्तर दिशा* में रखके बालक के पिता के हाथ में देवे और स्त्री पुनः उसी प्रकार पति के पीछे होकर उत्तर भाग में पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् पिता उस बालक को उत्तर में शिर और दक्षिण में पग करके अपनी पत्नी को देवे। पश्चात् जो उसी संस्कार के लिये कर्तव्य हो, प्रथम उस प्रधान होम को करे। पूर्वोक्त प्रकार घृत और सब शाकल्य सिद्ध कर रक्खे, उस में से प्रथम घी का चमसा भरके:—

ओं प्रजापतये स्वाहा॥ अर्थः—प्रजा के स्वामी के लिये सुहुत हो।

इस मन्त्र से एक आहुति देकर पीछे जिस तिथि जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और उस नक्षत्र का नाम लेके, उस तिथि और उस नक्षत्र के देवता के नाम से चार आहुति देनी अर्थात् एक तिथि, दूसरी तिथि के देवता‡ तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र के देवता§ के नाम से अर्थात् तिथि, नक्षत्र और उनके देवताओं के नाम के अन्त में

---

* अथ माता शुचिना वसनेन कुमारमाच्छाद्य दक्षिणत उदञ्चं कर्त्रे प्रयच्छति उदकशिरसम्॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ८। सू० १०॥

† अथ जुहोति प्रजापतये तिथये नक्षत्राय देवताया इति॥ गोभि० सू० प्र० २। का० ८। सू० १२॥

‡ तिथिदेवताः—१—ब्रह्मन्। २—त्वष्टृ। ३—विष्णु। ४—यम। ५—सोम। ६—कुमार। ७—मुनि। ८—वसु। ९—शिव। १०—धर्म। ११—रुद्र। १२—वायु। १३—काम। १४—अनन्त। १५—विश्वेदेव। ३०—पितर॥

§ नक्षत्रदेवताः—१ अश्विनी-अश्वी। २ भरणी-यम। ३ कृत्तिका-अग्नि। ४ रोहिणी-प्रजापति। ५ मृगशीर्ष-सोम। ६ आर्द्रा-रुद्र। ७ पुनर्वसु-अदिति। ८ पुष्य-बृहस्पति। ९ अश्लेषा-सर्प। १० मघा-पितृ। ११ पूर्वाफाल्गुनी-भग। १२ उत्तराफाल्गुनी-अर्यमन्। १३ हस्त सवितृ १४ चित्रा-त्वष्टृ। १५ स्वाति-वायु। १६ विशाखा-इन्द्राग्नी। १७ अनुराधा-मित्र। १८ ज्येष्ठा-इन्द्र। १९ मूल-निर्ऋति। २० पूर्वाषाढा-अप्। २१ उत्तराषाढा-विश्वेदेव। २२ श्रवण-विष्णु। २३ धनिष्ठा-वसु। २४ शतभिषज्-वरुण। २५ पूर्वाभाद्रपदा-अज एकपात्। २६ उत्तराभाद्रपदा-अहिर्बुध्न्य। २७ रेवती-पूषन्॥

चतुर्थी विभक्ति का रूप और स्वाहान्त बोलके चार घी की आहुति देवे। जैसे किसी का जन्म प्रतिपदा और अश्विनी नक्षत्र में हुआ हो तोः—

ओं प्रतिपदे स्वाहा ॥ प्रतिपदा के लिये सुहुत हो।

ओं ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ब्रह्मा के लिये सुहुत हो!

ओं अश्विन्यै स्वाहा ॥ अश्विनी नक्षत्र के लिये सुहुत हो।

ओं अश्विभ्यां स्वाहा ॥ अश्वि-नक्षत्र देवताओं के लिये सुहुत हो। गोभि० प्र० २। खं० ८। सू० ६-१२)

तत्पश्चात् "स्विष्टकृत्" मन्त्र से एक आहुति और चार व्याहृति आहुति दोनों मिल के पांच आहुति देके तत्पश्चात् माता बालक को लेके शुभ आसन पर बैठे और पिता बालक के नासिकाद्वार से बाहर निकलते हुए वायु का स्पर्श करकेः—

*** कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि। यस्य ते नामामन्महि यन्त्वा सोमेनातीतृपाम। भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाः प्रजाभिः स्याँ सुवीरो वीरैः सुपोषैः पोषैः ॥ यजु० अ० ७। मं० २९॥**

अर्थ :—हे बालक! (कोऽसि) तू कः—प्रकाशरूप हो (कतमोऽसि) अतिशयित प्रकाशरूप हो (कस्यासि) तू परमात्मा का है, (को नामासि) तू आत्मनाम वाला है (यस्य, ते) जिस तेरे (नाम) नाम को हम (अमन्महि) जानते हैं (यम, त्वा, सोमेन, अतीतृपाम) जिस तुझको शान्तिदायक पदार्थों से हम तृप्त कर चुके है, (परमात्मा करे कि तू भी हमें तृप्त करे, यह शेष है) (भूः, भुवः, स्वः) अनेकगुणयुक्त परमात्मा की कृपा से (प्रजाभिः) सन्तानों से मैं (सुप्रजाः) सुन्दर सन्तान वाला (स्याम्) होऊं (वीरः वीर सन्तानों से (सुवीरः) अच्छे वीरों से युक्त होऊं। (पोषैः) अन्य पोषणीय भृत्यादि से (सुपोषः) सुन्दर पोषण—रक्षा करने वाला होऊं।

ओं कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि। आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ ॥ मं० ब्रा० १।५।१४॥

अर्थः—तू कौन है? मरणधर्मा है वा अमृतधर्मा? (उत्तर) तू आत्मस्वरूप है, अमरणधर्मा है। तू ईश्वर करे कि सूर्य के मास का उपभोग करे॥

जो यह "असौ" पद है इसके पीछे बालक का ठहराया हुआ नाम अर्थात् जो पुत्र हो तो नीचे लिखे प्रमाणे दो अक्षर का वा चार अक्षर का घोषसंज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण

* तस्य मुख्यान् प्राणान् संमृशन् कोऽसि कतमोऽसीत्येतं मन्त्रं जपति॥ गोभि० सू० प्र० २। का० ८ सू० १३॥ आहस्पत्यं मासं प्रविशासावित्यन्ते च मन्त्रस्य ०००० कृतं नाम दध्यात्॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ८। सू० १४॥

अर्थात् पांचों वर्गों के दो दो अक्षर छोड़ के तीसरा, चौथा, पांचवां, और य, र, ल, व, ये चार वर्ण नाम में अवश्य आवें* । जैसे देव अथवा जयदेव, ब्राह्मण हो तो देवशर्म्मा, क्षत्रिय हो तो देववर्मा, वैश्य हो तो देवगुप्त और शूद्र हो तो देवदास इत्यादि और जो स्त्री हो तो एक तीन वा पांच अक्षर का नाम रक्खे, श्री, यशोदा, सुखदा, सौभाग्यप्रदा इत्यादि नामों को प्रसिद्ध बोल के पुनः "असौ" पद के स्थान में बालक का नाम धर के पुनः "ओं कोसि०" ऊपर लिखित मन्त्र बोलना:—

ओं स त्वाऽह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मास र्त्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरत्वायुषे जरायै परिददातु, असौ ॥ मं० ब्रा० १ ।५। १९ ॥

अर्थ :—ईश्वर करे कि वह सूर्य तुझे दिन के लिये देवे और दिन तुझे रात्रि के लिये देवे, रात्रि तुझे फिर दिन रात के लिये देवे, दिन रात तुझे पक्षों के लिये देवें, पक्ष तुझे महीनों के लिये देवें, महीने तुझे वसन्तादि ऋतुओं के लिये देवें, ऋतुएं तुझे वर्ष के लिये देवें, वह वर्ष तुझे आयुवृद्धि के लिये वृद्धावस्था को देवे ॥

इन मन्त्रों से बालक को जैसा जातकर्म में लिख आये हैं वैसे आशीर्वाद देवे इस प्रमाणे बालक का नाम रख के संस्कार में आये हुए मनुष्यों को वह नाम सुनाके महावामदेव्यगान करे । तत्पश्चात् कार्यार्थ आये हुए मनुष्यों को आदर सत्कार करके विदा करे और सब लोग जाते समय पूर्व रीति से परमेश्वर की स्तुति आदि करके बालक को आशीर्वाद देवें कि—

"हे बालक ! त्वमायुष्मान् वर्चस्वी तेजस्वी श्रीमान् भूयाः ।"

हे बालक ! तू आयुष्मान, विद्यावान्, धर्मात्मा, यशस्वी, पुरुषार्थी, प्रतापी, परोपकारी, श्रीमान् हो ।

इति नामकरणसंस्कारविधिः ॥

---

* विवरण:—ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म, ये स्पर्श और य, र ल, व, ये चार अन्तःस्थ और ह एक ऊष्मा, इतने अक्षर नाम के आदि में होने चाहियें और स्वरों में से कोई भी स्वर हो, जैसे (भद्रः, भद्रसेनः, देवदत्तः, भवः, भवनाथः, नागदेवः, रुद्रदत्तः, हरिदेवः) इत्यादि पुरुषों का समाक्षर नाम रखना चाहिए, तथा स्त्रियों का विषमाक्षर नाम रक्खे अन्त में दीर्घ स्वर और तद्धितान्त होवे, जैसे (श्रीः, ह्री यशोदा, सुखदा, गान्धारी, सौभाग्यवती, कल्याणक्रोड़ा) इत्यादि । परन्तु स्त्रियों के इस प्रकार के नाम कभी न रक्खे, उसमें प्रमाण "नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् १ ॥ मनु० ३।९ ॥ (ऋक्ष) रोहिणी, रेवती इत्यादि (वृक्ष) आम्रा, अश्वत्था, बदरी इत्यादि (नदी) गङ्गा, यमुना, सरस्वती इत्यादि (अन्त्य) चांडाली इत्यादि (पर्वत) विन्ध्याचला, हिमालया इत्यादि (पक्षी) कोकिला, हंसा इत्यादि (अहि) सर्पिणी, नागी इत्यादि (प्रेष्य) दासी, किंकरी इत्यादि (भयङ्कर) भीमा, भयङ्करी, चण्डिका इत्यादि नाम निषिद्ध हैं ।

नामकरणसंस्कार

(प्रमाणभाग)

अत्र प्रमाणम् । नाम चास्मै दद्युः ॥१॥ आश्व० अ० १। खं० १३॥

अर्थः—(अस्मै) इस बालक के लिए (च) और (नाम) नाम (दद्युः) देवें (आचार्यादि मिलकर) ॥

घोषवदाद्यन्तरन्तस्थमभिनिष्ठानान्तं द्व्यक्षरम् ॥२॥ चतुरक्षरं वा ॥३॥ द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः ॥४॥ युग्मानि त्वेव पुंसाम् ॥५॥ अयुजानि स्त्रीणाम् ॥ ६ ॥ अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामोपनयनात् ॥ ७ ॥ इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रेषु । अ० १। खं० १३ । सू० ४–१० ॥

अर्थः—(२) वह नाम (घोषवदादि) घोषवान् वर्ण जिसके आदि में हों (ह, य, व, र आदि घोषवान् वर्ण मूल की टिप्पणी में लिखे हैं) । (अन्तः, अन्तस्थम्) बीच में जिसके "य, र, ल, व," इन चारों में से कोई हो (अभिनिष्ठानान्तम्)* विसर्ग है अन्त में जिसके ऐसा और (द्व्यक्षरम्) जिसमे दो स्वर हों अथवा (३) (चतुरक्षरं, वा) चार स्वर हों (व्यञ्जन चाहे जितने हों) ऐसा नाम रक्खे । (४) कुमार की प्रतिष्ठा की इच्छा करने वाला दो अक्षर का नाम धरे और उसकी ब्रह्मतेज की इच्छा रखने वाला चार अक्षरों का नाम धरे । (आश्वलायनमतानुसार ही मूल की टिप्पणी में नाम रक्खे हैं) । (५) पुंसाम्, तु) पुरुषों के नाम तो (युग्मानि, एव) पूरे अक्षर वाले ही होने चाहिएं, विषमाक्षर नहीं (६) (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के नाम (अयुजानि) ऊने अक्षरों के अर्थात् विषमाक्षरों के होने चाहिएं—सुभद्रा, सावित्री इत्यादि । (७) (अभिवादनीयम्, च, समीक्षेत) आचार्य एक अभिवादनीय–जिससे अभिवादन किया जाय ऐसे नाम को (समीक्षेत) विचारे या करे और (तत्) उस नाम को (मातापितरौ, विद्याताम्) माता पिता ही जानें (आ, उपनयनात्) उपनयनसंस्कार तक अर्थात् एक ऐसा नाम भी उपनयन-संस्कार-पर्यन्त, गुर्वादि को अभिवादन करने के लिए रक्खा जाय, जिसे विशेषतया माता पिता ही जानें ।

§ दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम करोति ॥ १ ॥ द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तस्थं † दीर्घाभिनिष्ठानं कृतं कुर्यान्न तद्धितम् ॥ २ ॥

---

* विवरण:—अभिनिष्ठानो विसर्ग इति आश्व० गृ० सूत्रवृत्तौ गार्ग्यनारायणः । अभिनिष्ठानं समाप्तिरिति जयरामाचार्यादय: ।

§ विवरण:—उत्थाप्येत्यस्यानन्तरम्— "ब्राह्मणान् भोजयित्वा" इतिपाठः ।

† "दीर्घाभिनिष्ठानान्त" ऐसा पाठ गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ८८ सूत्र० १४ में है । दीर्घ वा विसर्ग जिसके अन्त में हो ऐसा टीकाकारों का अर्थ है ।

अयुजाक्षरमाकारान्तँ स्त्रियै तद्धितम् ॥ ३ ॥ शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य ॥ ४ ॥ पार० गृ० सू० का० १। क० १७। सू० १-४।

इसी प्रकार गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्र में भी लिखा है:—

अर्थ:—(दशम्याम्, उत्थाप्य) प्रसवदिन से प्रारम्भ करके दशवें दिन सूतिकाको सूतिकागृह से उठवा और तीन ब्राह्मणो को भोजन करवा ग्यारहवे दिन बालक का (पिता) पिता (नाम, करोति) नामकरण संस्कार को करता है (द्वयक्षरं, चतुरक्षरं वा, घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थम्) इसका अर्थ पूर्व आगया (दीर्घाभिनिष्ठानम्) दीर्घ है समाप्ति में जिसके (कृतम्) कृत्प्रत्ययान्त वा पितामहादि का जो पूर्व किया हुआ हो ऐसा नाम रक्खे (न, तद्धितम्) तद्धिप्रत्ययान्त न रक्खे। जैसे—भद्रकारी इस नाम में सब लक्षण हैं अन्त्याक्षर मे पारस्कर और आश्वलायन मत का भेद है। (अयुजाक्षरम्) अयुज—विषम तीन आदि अक्षर जिसमें हो (आकारान्तम्) आकार जिसके अन्त मे हो ऐसा (स्त्रियै) स्त्रियों के लिये नाम होना चाहिये और वह (तद्धितम्) तद्धितप्रत्ययान्त भी होसकता है।

(ब्राह्मणस्य, शर्म) ब्राह्मण के नाम के साथ "शर्म" इस शब्द का सम्बन्ध होना चाहिये और (क्षत्रियस्य, वर्म) क्षत्रिय के साथ "वर्म" का और (गुप्तेति वैश्यस्य) वैश्य का गुप्तान्त नाम होना चाहिये। मनुस्मृति मे भी लिखा है कि "शर्मान्तं ब्राह्मणस्य स्याद्वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु। वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्" ॥ अर्थात् ब्राह्मण का शर्मान्त क्षत्रियका वर्मान्त, वैश्य का धनसंयुक्त और शूद्र का दासाद्यन्त नाम होना चाहिये।

नामकरण अर्थात् जन्मे हुये बालक का सुन्दर नाम धरे, नामकरण का काल जिस दिन जन्म हुआ हो उस दिन से लेके १० दिन* छोड़ ११ वे वा १ १ वें दिन अथवा दूसरे वर्ष के आरम्भ मैं जिस दिन जन्म हुआ हो नाम धरे।

नामकरणसंस्कार सम्बन्धी व्याख्याभाग

नामकरणसंस्कार—सम्बन्धी जो प्रमाण सूत्रग्रन्थों के दिये गये है उन पर विचार करने से प्रतीत होता है कि प्राचीन आर्य्यलोग बालक के नाम रखने में तीन नियमो का मुख्य रीति से पालन करना अभीष्ट समझते थे।

उच्चारण की सुगमता

(१) जिन वर्णों के उच्चारण मे सुगमता पड़ती है, उनसे युक्त वह नाम अवश्य हो और फिर नाम के आदि, मध्य और अन्त में किस किस प्रकार के वर्ण आने चाहिये, उसका पूरा पूरा ध्यान रक्खा जावे ताकि नाम के विभाग भी उच्चारण करने में सरल हों। जो नाम उच्चारण करने में सरल है वही सुनने में प्रिय रुचिकर होता है।

(२) पुरुष स्त्री के नामों में, जैसा कि सृष्टि मे उनकी आकृति मे भेद है, वैसा ही भेद रक्खा जावे। युग्म और अयुग्म संख्या के अक्षरों से वह पुरुष और स्त्री का भेद नाम

* जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे सम्वत्सरे वा नामधेयकरणम् ॥ गोभिलीय गृ० सूत्र प्र० २। का० ८। सू० ८॥

दर्शाते थे। अयुग्म अक्षरों की संख्या सदैव बोलने में लटकती सी ध्वनि श्रवण कराती है। यह लटकती ध्वनि निःसन्देह कोमल ध्वनि है। कोमलता ही स्त्रीपन का बोधक है।

(३) तीसरा नियम यह था कि नाम सुनने वा उच्चारण करने में जहां सरल हो और पुरुष वा स्त्री का बोधन कराने वाला हो, वहां वह ऐसा सार्थक हो कि बालक को आयु भर उन्नति करने के लिये उत्तेजना देता रहे, जैसा कि एक सूत्र में दर्शाया गया है कि—

"प्रतिष्ठा और ब्रह्मतेज की इच्छा वाले क्रम से दो और चार अक्षरों वाला नाम रक्खें"। उत्तम सार्थक नाम रखने की उत्तम प्रणाली आर्य्यों में अति प्राचीनकाल से चली आती है। उत्तम सार्थक नाम सदैव मन पर शुभ संस्कार डालते और बच्चों को उत्तम काम करने की प्रेरणा करते रहते हैं। शोक का विषय है कि आजकल भारतसंतान उत्तम सार्थक नाम रखने की प्रथा बहुत कुछ भूल गई है। आजकल यूरोप में मनुष्य उन्नति का एकमात्र रहस्य "सेल्फ रिलायंस" Self Reliance अथवा निजधारक शक्ति वा धृति माना जाता है। यूरोप वा अमेरिका के सर्व महाविद्वान् एकमत होकर रातदिन यही पाठ कर रहे है और सन्तान से करा रहे हैं कि मनुष्य जो करना चाहे वह कर सकता है। मनुष्य को अपने ऊपर आप भरोसा रखना चाहिये और इसी भाव को मनु भगवान् ने धृति कहकर धर्म का प्रथम लक्षण दर्शाया है। अंग्रेज़ बच्चा इस दृढ़ विश्वास से संसार में काम करता है, कि यदि उसके पास एकमात्र सङ्कल्प-रूपी साधन है तो वह सर्व प्रकार के अन्य धन रत्न और सुख आदि को प्राप्त कर सकता है। बंगाली बाबू अमृतलाल राय अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि अमेरिका में एक मोची का लड़का टूटे हुए जूते गांठ रहा था, जब उससे प्रश्न किया गया कि तू अन्त को क्या करना चाहता है; तो उसने कहा कि मैं अब मोची का काम करता हूं, जब कुछ धन जमा कर लूंगा तो स्कूल में दाखिल हो जाऊंगा, फिर कालेज में अन्त को मैं अमेरिका के प्रधान होने की आशा रखता हूं।

ऋषि लोग इसी नियम को भलीभांति जानते थे, इसी लिये यह सूत्र निर्माण किया कि जो सर्व प्रकार के प्रतिष्ठादायक कामों को करना चाहे वह नाम दो अक्षरों वाला और जो विद्या धर्म आदि में महान् बनने की इच्छा रखता है वह चार अक्षरों वाला रक्खे। यूरोप के विद्वान् तो "सेल्फ रिलायन्स" का स्तोत्र जब पढाते हैं जब बालक स्कूल में पढने जाता अथवा गृह में माता से बात चीत कर सकता है, पर ऋषि लोग तो ११ वें दिन वा तीन महीने के बालक को ही यह पाठ ऐसी उत्तम रीति से पढाते थे कि वह पाठ ही उसका नाम बन जावे और नाम की ध्वनि जब जब उसके कानों में पड़े तब तब ही उसकी मानसिक शक्ति जागृत होती रहे।

अहो! धन्य थे वे तत्त्ववेत्ता ऋषि जो मनुष्य के बच्चे को ११ वें दिन से ही धृति का परम पुनीत पाठ पढाने लग जाते थे। जब नामकरण संस्कार का महत्व भारत में समझा जाता था तब ही तो यह देश सदाचारी, महाव्रती और तपस्वी पुरुष स्त्रियों से भरपूर था, जो नाम की लाज रखने के लिये जीवन तक अर्पण कर देते थे।

मनु महर्षि कितनी कडी आज्ञा देते हैं कि जिस लड़की का नाम जड़ पदार्थों वा पशु, पक्षियों का वाची हो उससे विवाह ही न किया जावे। यह क्यों ? इसीलिये कि नाम वा शब्द का प्रभाव बिजली से भी महान् और चमत्कारी है। जो लड़की रात दिन चम्पा नाम से पुकारी जाती है वह विना इसके कि शृंगारप्रिय होजावे क्या महान् काम संसार में कर सकती है ? इस प्रथा को रोकने के लिये मनुजी ने मानों लड़की के माता पिता को दण्ड देना चाहा है, ताकि वह भूल से भी बुरा नाम न रक्खें।

आजकल इसीलिये जिन लड़कियों के नाम बुरे होते हैं उनके नाम विवाहसमय पुरोहित लोग बदल देते हैं। जब विद्या का प्रचार अधिक होगा, तब लोग लड़कियों के नाम पहिले से ही भावपूर्ण रक्खेंगे, जिससे कि वे विवाह के समय बदलने ही न पड़ें।

एक सूत्र के भाग में दर्शाया गया है कि दशवें दिन प्रसूता को प्रसूतागार से बाहिर लाने के पीछे " ब्राह्मणान् भोजयित्वेति " अर्थात् कम से कम तीन ब्राह्मणों का भोजन से सत्कार करे। संस्कारविधि में यह पाठ मूलसूत्र से रह गया है। तीन से अधिक ब्राह्मणों को भोजन देने का इससे निषेध नहीं, किन्तु " ब्राह्मणान् " यह शब्द बहुवचन में कम से कम तीन संख्या ली जाती है। इन तीन ब्राह्मणों में से एक तो पुरोहित (संस्कार कराने वाला), दूसरा गृहवैद्य (फैमिली डाक्टर) और तीसरा उपदेशक वा किसी विशेष विद्या में प्रवीण हो।

यह तीनों ऐसे हैं कि जिनसे गृहस्थी लोगों को बड़ा लाभ पहुंचता है इसलिये इन तीन वा ऐसी योग्यता वाले तीन से अधिक परोपकारी ब्राह्मणों को भोजन से सत्कार करना जरूरी है, जबकि, प्रसूता जैसे समय में उन्होंने अपनी अमूल्य सम्मति से लाभ पहुंचाया है।

आजकल लोग डाक्टरों को फ़ीस (दक्षिणा) देना क्या ज़रूरी नहीं समझते ? और क्या कई शुभ अवसरों पर डाक्टरों को फीस के अतिरिक्त अधिक सन्मानार्थ यूरोपादि देशों में " पार्टी " (भोज) नहीं दिया जाता ? जब दिया जाता है तो अपने हितकारी महाविद्वानों (ब्राह्मणों) को, जो कि उस समय गृहवैद्य, गृहअमात्य वा उपदेशक और गृहपुरोहित का काम करते थे, भोजन आदि से सत्कार करना ज़रूरी था और अब भी है। फिर लिखा है कि तद्धितप्रत्ययान्त नाम न रक्खो। यह इसलिये कि तद्धित नाम विशेष स्पष्ट नहीं हो सकते। माता पिता के नाम को सन्तान के नाम द्वारा प्रकट करने के लिये जो नाम रक्खे जाते हैं वे तद्धित कहलाते हैं। यदि किसी पुरुष का नाम जनक है तो उसकी लड़की का तद्धित नाम जानकी होगा, किन्तु यदि उसकी दूसरी लड़की हुई तो वह भी जानकी कहलायगी। दो समान नाम वाली लड़कियों में से किस लड़की के विषय में किसी को क्या विशेष कहना वा जतलाना है, यह जानना स्पष्ट नहीं हो सकता। इसलिये तद्धित नाम नहीं रखना चाहिये। फिर लिखा है कि ब्राह्मण के नाम के पीछे शर्मा (कल्याणकारी), क्षत्रिय के नाम के पीछे वर्म्मा (रक्षा करने वाला,) वैश्य के नाम के साथ गुप्त (धन को सुरक्षित रखने वाला) यह उपाधियां लगावे। आजकल, रायसाहब, खांसाहब, ऑनरेबल इत्यादि अनेक उपाधियां हैं जो लोगों में मानसूचक समझी जाती हैं पर थोडे लोगों को मिलती हैं। पुराने

समय में चारों वर्णों की प्रत्येक व्यक्ति को शर्म्मा, वर्मा, गुप्त और दास चार उपाधियों के धारण करने का सौभाग्य प्राप्त होता था।

शंका हो सकती है कि दास तो सेवक के भाव को साधारण रीति पर प्रकट करता है यह शूद्र भी कैसे उपाधि समझते होंगे ? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि जो शब्द उपाधि में प्रयोग होने लगता है वह गौरवसूचक होजाता है। क्या आजकल बड़े से बड़े अधिकारी (ऑफीसर) जब दफ्तरों में नित्यप्रति परस्पर पत्रव्यवहार में अपने नाम के साथ "सरवेन्ट" अर्थात् सेवक शब्द का उपयोग नहीं करते हैं ? एक रायसाहब तक अपने लिये "सरवेन्ट" शब्द लिखता है, तो क्या सेवक शब्द उनका अपमानसूचक है वा सेवा के उच्चभाव को प्रकट करता है ? विचारदृष्टि से प्रतीत होता है कि समाज के चारों वर्ण ही सेवक हैं साधारण सेवक को दास, धन द्वारा सेवा करनेवाले को गुप्त, बल द्वारा सेवा करनेवाले को वर्मा और सत्यज्ञान द्वारा सेवा करने वाले को शर्मा कह सकते हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि इनके अतिरिक्त पुराने समय में चारों वर्णों के लिये अन्य और उच्च उपाधियां नहीं थी।

अभिवादन करने के लिये एक और नाम रखने का भी वर्णन है यह गुप्त नाम कहला सकता है, कारण कि सूत्रानुसार इस को बच्चे के माता पिता ही जान सकते और वह नाम उपनयन काल तक रह सकता है। यह गुप्त नाम आयु भर के लिये नहीं है इसका विशेष लाभ तो दृष्टि नहीं पड़ता विना इसके कि काल विशेष में गुप्त नाम रखना लोग सीख सकें।

नाम कब रखें

इसमें तीन विकल्प हैं प्रथम ११ वें दिन रखने का दूसरे १०१ दिन का और तीसरे दूसरे वर्ष के आरम्भ मे जिस तिथि को जन्म हुआ हो। तीनों विकल्प युक्त हैं। कारण कि जो स्त्रियां दशवें दिन स्नान करके इस संस्कार में सम्मिलित हो सकती हैं उनकी सुविधा का विचार करके ११ वां दिन नियत ठीक प्रतीत होता है। कई स्त्रियें ऐसी होती हैं जो एक दो वा तीन मास तक निर्बल रहती हैं। दो मास के पीछे निर्बल रहनेवाली थोडी होती हैं। इनकी सुविधा का विचार कर के १०१ दिन की अवधि बांधनी उचित ही है। वादी कह सकता है कि १०० वा १०२ दिन क्यों न रक्खे ? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि यदि १०० वा १०२ दिन रक्खे जाते तो उस दशा में क्या प्रश्न नहीं हो सकता कि ९९ वा १०३ दिन क्यों नहीं रक्खे ? यहां पर "अशोक वन के न्याय" की बात चरितार्थ होती है अर्थात् एक पुरुष ने रामायण की कथा सुनते समय पंडितजी से यह प्रश्न किया कि महाराज ! रावण ने सीताजी को अशोक नामी वन में ही क्यों रक्खा ? उसने कहा कि यदि वह और किसी वन वा बाग में रखता तब भी तो तुम प्रश्न करते कि उस वन में क्यों रक्खा ? किसी वन वा बाग में तो रखना ही था। तीन महीने निर्बलता की अवधि समझकर १०१ दिन की अवधि ठहराई, इसमें दोष ही क्या है ? यह अवधि बहुत उपयोगी है।

तीसरा विकल्प इसलिये रक्खा गया प्रतीत होता है कि कभी कभी बालक का पिता अथवा कोई और सम्बन्धी वा मित्र परदेश में होते हैं और देर से उनके आने की सम्भावना होती अथवा कोई और विघ्न आजाता है, जिससे १०१ दिन की अवधि पर नाम नहीं रख सकते तो ऐसी दशाओं में दूसरे वर्ष के आरम्भ में ही यह संस्कार कर लेना ठीक हो सकता है।

फिर प्रधान होम करने का विधान है जिस में स्त्री वेदी पर आती हुई पति की गोद में बालक को देती है और अपनी जगह बैठ जाने के पश्चात् पति बालक को उसकी गोद में देता है। प्रधान होम की समाप्ति पर "प्रजापतये स्वाहा" इस मन्त्र से आहुति देकर, पीछे जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो, उस तिथि और नक्षत्र का नाम उच्चारण करके और उसी तिथि और उसी नक्षत्र के देवता के नाम से चार आहुति देनी, अर्थात् पहिली तिथि, दूसरी तिथि देवता, तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र देवता के नाम से, ऐसा लेख संस्कारविधि में है।

बच्चा किस दिन वा किस तिथि को उत्पन्न हुआ यह बात सभामण्डप में बैठे हुए लोगों को जनाने की आवश्यकता है, जिस समय तिथि का नाम लेकर आहुति दी जायगी उस समय सब विद्वान् समझ जावेंगे कि अमुक तिथि को बालक का जन्म हुआ। शंका हो सकती है कि तिथि का नाम उच्चारण करके आहुति देना क्या तिथि की पूजा तो नहीं है? हम कहेंगे कि नहीं। क्या हम गर्भाधानसंस्कार में नहीं देख चुके कि ऐसे ऐसे मन्त्र जिनका अर्थ यह है कि—

"हे स्त्री तू गर्भ को धारण कर" वा "तेरा गर्भ सुखपूर्वक उत्पन्न हो"।

कहते हुए आहुतियें दीगई। क्या स्त्री उन आहुतियों को उस समय खाती है और उसका पति वा पुरोहित, जो पास बैठे हैं, नहीं खाते। ऋषियों का अभिप्राय यह था कि हवन तो करना ही है, जो जो बात उस संस्कारसम्बन्धी किसी एक वा अनेक को सुनानी है वह वह पाठ करते हुए ही हवन क्यों न किया जावे? गर्भाधानसंस्कार के समय स्त्री को सुनाना था कि तेरे कर्त्तव्य यह है, और तू उनको सुनले वह सुनाने के पश्चात् आहुति डाली जा रही है। यहां जब यह कह कर आहुति डाली गई कि प्रतिपदा (तिथि विशेष) के लिए हम श्रेष्ठ क्रिया करते हैं, तो इसका अभिप्राय यह जानने का हो सकता है कि वह प्रतिपदा का दिन शुभ था जिसको कि हमें स्मरण करना पड़ा। हमारे कथन का सार यह है कि आहुति देने के अनेक प्रयोजन होते हैं। कहीं उपदेशार्थ, कहीं सन्मानार्थ (जैसा कि सीमन्तोन्नयनसंस्कार में स्त्री को "राका" कहकर दी गई थी) और कहीं स्मरणार्थ आहुतियें दीजाती हैं। यहां स्मरणार्थ अर्थात् जन्मतिथि को स्मरण करने कराने के लिए जो बात स्मरण करनी होती है उसको यदि कुछ बार दोहराया जाय तो स्मृति में रह जाती है। इसी वास्ते एक तिथि को चार प्रकार से आहुतियां देते हुए दोहराया गया है।

संस्कृत-कोष वाचस्पत्य अभिधान के पृष्ठ ३२९१ पर सिद्धान्तशिरोमणि, जो ज्योतिष् का प्रसिद्ध ग्रन्थ है, उसके प्रमाण से यह लिखा गया है कि:-"तन्यन्ते कलया यस्मात्ता-स्तिथयः स्मृताः"

जिसका भावार्थ यह है कि चन्द्र की कला से जिसका परिमाण किया जावे वह तिथि है। जिनको यहां तिथि देवता कहा गया है वे तिथियों की संख्या के बोधक शब्दरूपी संकेत हैं, जो कि भिन्न भिन्न ज्योतिषियों ने अपनी सुविधा के लिये भिन्न भिन्न कल्पना किये हैं। यह शैली उर्दू' में "अबजद" के नाम से प्रसिद्ध है और संस्कृत श्लोक बनाने वाले कविजन संवत् की संख्या देने मे अङ्कों उपयोग न करते हुए "राम, मुनि, चन्द्र" आदि अनेक शब्दों द्वारा संख्या का बोधन कराते हैं। संकेत की रीति से "राम, मुनि, चन्द्र" आदि शब्द अमुक संख्या के वाची ठहराए जाते हैं। कवियों की इस परिपाटी के समान नवीन नवीन ज्योतिषियों की भी संकेत* परिपाटी है। वह भी तिथियों की संख्या को संकेतरूपी शब्दों द्वारा प्रगट किया करते है जैसे कि यहांपर पहिली तिथि का ब्राह्मण शब्द से प्रकट किया गया है।

अतएव पहिली आहुति प्रतिपदा का नाम लेकर दीगई तो दूसरी आहुति मे ब्रह्मन् नाम लिया जायगा, जो कि पहिली तिथि का संकेत है इस संकेत को सुनने से उसी तिथि का रूपान्तर ज्ञान व स्मरण हो जावेगा।

नक्षत्र तथा नक्षत्र देवता

रात को गगनमण्डल में जो असंख्य चमकते हुए तारे प्रतीत होते हैं, वे नक्षत्र हैं। पृथिवी से कई गुना बड़े होने पर भी दूरी के कारण छोटे ही प्रतीत होते हैं। इन नक्षत्रों की दिन रात एकसी दशा रहती है, परन्तु दिन में सूर्य्य के तेज से हम देख नहीं सकते। इन में से जो अचल नक्षत्र हैं वे किन्हीं लोक, लोकान्तरों की परिक्रमा नहीं करते, केवल अपनी ही धुरी पर घूमते रहते हैं। सौर्य जगत् में एक एक नक्षत्र मानो ग्रह आदिक अन्यान्य विशेष गतिमान् आकाशस्थ पदार्थों के घर हैं। जिस प्रकार इस पृथिवी पर नाना आकार के घर हैं उसी प्रकार आकाश में भी नक्षत्रपुञ्ज की आकृति भिन्न भिन्न प्रकार की है। यद्यपि नक्षत्र असंख्य हैं तथापि हमारे सौर्यमण्डल का व्यवहार जिन नक्षत्रों से अतिविशेष है, वे २७ हैं।

ज्योतिष् के अति प्राचीन ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त में तिथिदेवता और नक्षत्रदेवता इनके विषय में कुछ उल्लेख नहीं मिलता। श्रीयुक्त उदयनारायणसिंहजी सूर्यसिद्धान्त का अनुवाद करते हुये अपनी उत्तम भूमिका में इस विषय सम्बन्धी जो लिखते हैं उसका सार यह है कि, तैत्तिरीय ब्राह्मण में अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों के भिन्न देवता लिखे हैं। अश्विनी आदि नक्षत्रदेवता नक्षत्रपुञ्ज हैं और इनके अश्विनी आदि नाम इनकी आकृति पर से रक्खे गये हैं अर्थात् जैसे इनके नाम हैं वैसी आकृति इनकी प्रतीत होती है। यथा-"कृत्तिका" नक्षत्र का देवता अग्नि है, सो दूरबीन द्वारा देखने से इसकी आकृति अग्निसदृश मालूम होती है। इस प्रकार अन्यान्य कई नक्षत्रों की देवतायें हैं यह तो आकृतिपरक देवता हुए। इसलिये ऐसा समझना चाहिये कि नक्षत्रदेवता, नक्षत्रपुञ्ज की आकृति के बोधक नाम हैं।

---

* विवरण:—यह जो संकेतमात्र हैं ज्योतिष् के नवीन ग्रन्थों में ही 'मिलते हैं। गणित ज्योतिष् के ग्रन्थों में इनका नाममात्र भी नहीं और यह संकेत भी कल्पनामूलक हैं, क्योंकि किसी ग्रन्थकार ने तिथियों के संकेत कुछ माने हैं और किसी ने कुछ। वाचस्पत्य अभिधान में वह्नि, रवि, विश्वेदेवा सलिलाधिप, वषट्कार, वासवः, ऋषि, अज एकपात्, यम, वायु, उमा, पितर, कुवेर पशुपति और प्रजापति यह तिथिदेवता दिए हुए हैं।

संस्कारविधि में जो नक्षत्र और नक्षत्रदेवता दिये गये हैं वही तैत्तिरीय ब्राह्मण ४-४-१० में दिये हुए हैं। संस्कारविधि में पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र का देवता "अजपात्" लिखा हुआ है उसके स्थान में "अज एकपाद्" ऐसा होना चाहिये। संस्कारविधि में अश्विनी का अश्वीदेवता लिखा हुआ है, तैत्तिरीय ब्राह्मण में "अश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवता" अर्थात् "अश्वयुज्" नक्षत्र का "अश्विनौ" देवता लिखा हुआ है। वास्तव में यह पाठभेद समझना चाहिये। संस्कारविधि में जिस प्रकार लिखा है प्रायः लोग आर्य्यभाषा में वैसा ही लिखते हैं।

अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि संस्कारविधि के आर्य्यभाषा लेख में जो प्रजापति आहुति के अनन्तर तिथि, तिथिदेवता, नक्षत्र और नक्षत्रदेवता के नाम लेकर आहुति देना लिखा है उसका मूल गोभिलीय गृह्यसूत्र प्रपाठक २। खण्ड ८। सूत्र १२ में इस प्रकार है:-

अथ जुहोति प्रजापतये तिथये नक्षत्राय देवताया इति ॥

इस सूत्र की टीका पृष्ठ ८९ पर श्री पंडित सत्यव्रत सामाश्रमीजी ने यह की है कि:—

"अथ तदनन्तरं क्रोडीकृतकुमारः सः 'प्रजापतये' प्रजापतिदेवता-मनुकूलयितुं तथैव 'तिथये' 'नक्षत्राय' "जुहोति" हवनं कुर्यात्"।

इसका भावार्थ यह है उसके पश्चात् वह कुमार को गोद में लिये हुए प्रजापति की देवता को अनुकूल करने के लिये * वैसा ही तिथि तथा नक्षत्र के लिये हवन करे।

इससे सिद्ध होता है जैसा कि उसके हिंदीटीकाकार ने भी उक्त लेख के आधार पर स्वीकार किया है कि "पहिले प्रजापति देवता की तुष्टि के लिये हवन करे, पीछे जिस तिथि में कुमार का जन्म हुआ है उस तिथि का नाम लेकर दूसरी आहुति प्रदान करे, उसके बाद जिस नक्षत्र में कुमार का जन्म हुआ है, उसका नाम कहकर तीसरी आहुति देवे।"

इससे ज्ञात हुआ कि (१) प्रजापति, (२) तिथि, (३) नक्षत्र का नाम लेकर आहुति देनी चाहिये। तिथिदेवता और नक्षत्रदेवता की आहुतियां श्री सामाश्रमीजी के लेख में नहीं आतीं। संस्कारविधि में लिखी प्रजापति आहुति को यदि तिथि आदि चार आहुतियों के साथ गिनें तो पांच आहुतियें होती हैं।

इसके दूसरे अर्थ यह भी होसकते हैं जिससे प्रजापति तिथि, नक्षत्र और नक्षत्रदेवता के नाम से आहुति देना सिद्ध हो सकता है, और यह अर्थ जर्मनी देश के अनुवादक महोदय ओलडनबर्ग § तथा प्रोफेसर मैक्समूलर † ने भी किये हैं।

तीसरे अर्थ यह हो सकते हैं जो संस्कारविधि में लिये गये हैं, जिससे प्रजापति, तिथि, देवता, नक्षत्र, और नक्षत्रदेवता के नाम से आहुति देने को लिखा है। इस दशा में पहिले तिथि, फिर उसके संख्यावाचक संकेत (तिथिदेवता), फिर तिथिसम्बन्धी नक्षत्र और अन्त में नक्षत्रसम्बन्धी उसका आकार (नक्षत्रदेवता) का उच्चारण करने से किस तिथि में बालक उत्पन्न हुआ है यह बात स्मृति में रह जावेगी। मूल एक सूत्र में ही प्रजापति आहुति तथा

---

* प्रजापति के अर्थ ईश्वर वा वायु हैं। ईश्वराज्ञापालनार्थ वा वायुशुद्धिनिमित्त हवन करना युक्तिसिद्ध बात है॥

§ Prof. Oldenburg. † Prof. Maxmuller

तिथि आदि की आहुतियों का विधान किया गया है। संस्कारविधि में प्रजापति आहुति डालने के पीछे तिथि आदि की आहुति का वर्णन किया गया है। बात एक ही है, प्रयोगशैली का भेद है। आगे चलकर संस्कारविधि में लिखा है कि "पिता बालक के नासिकाद्वार से बाहिर निकलते हुए वायु को स्पर्श करके" यह मन्त्र बोले! इसका मूल गोभिल गृह्यसूत्र प्र० २। खं० ८ सूत्र १३ में इस प्रकार है:—तस्य मुख्यान् प्राणान्संस्पृशन्। इसका भावार्थ यह है कि उसके मुख में प्राणों का स्पर्श करता हुआ।

प्राणों को स्पर्श करने की सब से उत्तम रीति यह है कि उसकी नासिका के द्वार को स्पर्श करे। नासिका स्पर्श करते ही बच्चा स्पर्श करने वाले की ओर देखने लग जावेगा और कुछ गुदगुदीसी होने के कारण मुसकराने वा हँसने लगे यह सम्भव है। छोटे बच्चों को हँसाने के लिये प्रायः उनके नाक और ओष्ठ प्रेम से छुये जाते हैं, छूतेही वे प्रसन्न हो जाते हैं। क्योंकि बालक को उसका नाम सुनाना है, इस लिये जरूरी है कि उसका ध्यान अपनी ओर खैंचा जावे और साथ ही वे प्रसन्न हो दुःख न मानें। इसलिये उसके मुख और नासिका द्वार को छूने का विधान सूत्र में है। क्या हम रात दिन नहीं देखते कि मातायें गोदी के बालकों को हंसाने के लिए उन के नाक और ओष्ठ को प्रेम से अंगुली लगाती हैं और वे उनकी ओर देखकर हँस पड़ते हैं और फिर जो शब्द मातायें कहती हैं वे सुनते और आनन्द दर्शाते हैं। जो विज्ञानसिद्ध आत्मा का स्वरूप है उसका सार किस उत्तमता से इस मन्त्र में निरूपण किया गया है। इस मन्त्र के अर्थों पर विचार करते हुए आत्मा के स्वरूप का बोधन होता है, न केवल यही परब्रह्म पिता की यह प्रार्थना कि मैं वीर सन्तान और सुवीर मित्रों से युक्त होऊं, कैसी अद्भुत बात है। इससे आगे जो मन्त्र का भाग दिया हुआ है उसमें जीवात्मा को "अमृत" बतलाया गया है। फिर बालक का नाम उच्चारण करने का विधान है तथा आशीर्वाद है, जिसके अर्थ और व्याख्या जातकर्मसंस्कार में आचुकी हैं, जो कि एक दिन से लेकर वृद्ध अवस्था पर्यन्त जीते रहने का उत्तम आशीर्वाद है। मन्दालसा ने अपनी लोरियों से अपने पुत्रों को आत्मज्ञानी बना दिया था, परन्तु मन्दालसा की लोरियां भी "ओ३म् कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि" इस वाक्य के आगे मात हैं जिसमें नाम रखते ही बच्चे को कहा जा रहा है कि— "तू अमृत है" सुकरात ने भी यही उपदेश यूनान को दिया था, कि आत्मा अमृत है। अभी तक यूरोप के तत्त्ववेत्ता इस आत्मज्ञान को पूर्ण रीति से प्राप्त नहीं कर पाये।

जाते हुए सब मंडली के लोग बालक को बड़ी आयु, बड़ी कान्ति और बड़े तेज तथा धन सम्पत्ति वाला होने का आशीर्वाद दें। यूरोप में शिक्षण के अन्दर बच्चों के मन उत्तेजन करना वे अपना कर्तव्य समझते हैं। आशीर्वाद का प्रयोजन भी उत्तम शैली से बच्चे के मन में यह संस्कार बीजवत् जमा देने का है। तू बुद्धि आदि से युक्त हो सकता है, और हमारी सहानुभूति तथा ईश्वरकृपा तेरे पुरुषार्थ को बढ़ाने वाली होगी।

इति नामकरणव्याख्या

ओ३म्

"संस्कारचन्द्रिका" से पुनर्मुद्रित वैदिक संस्कार माला–सं० ६-७

अथ निष्क्रमण तथा अन्नप्राशन संस्कार

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रणीत "संस्कारविधि" के निष्क्रमण तथा
अन्नप्राशन संस्कार की विस्तृत व्याख्या

✱

-: रचयिता :-

विद्वद्वर्य श्रीयुत (स्व.) पंडित भीमसेन शर्मा (आगरा निवासी)

तथा

राजमित्र राजरत्न श्रीयुत (स्व.) आत्माराम राधाकृष्ण (अमृतसरी)

-: रचयिता :-

सृष्टिविज्ञान दिग्विज्ञान, शरीरविज्ञान, आत्मज्ञान विज्ञान, ब्रह्मज्ञान, वैदिक विवाहादर्श,
बलप्राप्ति, माण्डूक्योपनिषद्, तुलनात्मक धर्म विचार, गीतासार, मूर्ति पूजाकी
वैदिकावधि, सामान्य धर्म। महर्षि दयानन्द की जीवनी (उर्दु) तथा
सत्यार्थ-प्रकाश का सब प्रथम उर्दु गुरमुखी अनुवादक
इत्यादि इत्यादि।

★

: प्रकाशक :

जयदेव ब्रदर्स आत्माराम पथ बड़ोदा

अ. म. पाळेकर द्वारा जागृति मुद्रणालय बड़ोदामें मुद्रित तथा
जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा द्वारा प्रकाशित

षष्ठसंस्करण | सृष्टि संवत् १९७२९४९०५२ | संवत् २००८ वि०, ई० सन् १९५१ | मूल्य ।)

चार अंकों में ५६ पृष्ठों में संग्रहणीय सामग्री प्रस्तुत की है।

अपने ढग का सर्व प्रथम सब से सस्ता मासिक प्रकाशन। मासिक की **चार हजार** से अधिक प्रतियां छपी हैं। प्रचार का सुलभ मासिक साधन।

पुस्तक विक्रेता वा० मू० एक रुपया

आधुनिक साहित्य का प्रचारक साहित्यिक समाचार, समालोचनाएं कागज संबंधी समाचारों के साथ मुद्रण कला तथा तद्हितोपयोगी वस्तुओं की एक मात्र चर्चा करनेवाला मासिक।

पुस्तक विक्रेता का प्रचार बुकसेलरों, ग्राहक बनाने वालों, विज्ञापकों, पुस्तकालयों, पत्र संचालकों के साथ साथ भारतीय एवम् विदेशीय सरकारों के प्रायः सब उच्च कोट के विभागों में इसका प्रचार है। इस लिए यह आपके हितकी बात है कि आप इसके ग्राहक बनकर इसके द्वारा यथेष्ठ लाभ प्राप्त कर और जिसपर वार्षिक मूल्य केवल एक रुपया है।

BOOK-SELLER Re. ONE only

A Review of Modern Literature. Literary News & Reviews Devoted to Paper Information, Printing, Stationery & Allied Trades **Books Seller** circulates among booksellers, subsbrieption agencies, advertisers and agents, journalists libraries press agents & Various Govt. & official bodies in all parts of the world. It is therefore to your interest to subscribe this monthly the only one of its kind. Subscription Re 1/ only.

आजही नमूने की प्रति मंगाइए और अपना वा० मू० तुरन्त भेजिए।

जयदेव ब्रदर्स पुस्तक विक्रेता कार्यालय बड़ोदा

पुस्तक विक्रेता के ग्राहकों को लाभ : यदि आप इसके ग्राहक (१) भेज कर बन जायेंगे तो आपको किसी भी विदेशी दैनिक साप्तिक प्रकाशनो मासिकों साप्ताहिकों के नाम पते जिस विषय के आप चाहेंगे तो वह सिर्फ दो पैसे प्रतिनाम तथा डाकव्यय अतिरिक्त लेकर भेज सकेंगे। उदाहरणार्थ विलायत के Sport magazines, Scientific magazines Ladies Journals, Automobile magazines, Dailies, Monthlies Weeklis जैसे भी चाहेंगे भेज सकेंगे। यह मूल्य अग्रिम आना चाहिए तथा डाक व्यय के लिए भी लिफाफा पता लिखा हुआ तथा पु. वि. की ग्राहक रसीद सं० लिखकर आने पर भेजा जाएगा।

श्री दुरानी एस. ए. आत्माराम पथ बडोदा

मुफत अपने गांव व शहर के पुस्तक विक्रेताओं के नाम पते लिख भेजने पर 'पुस्तक-विक्रेता' का अंक मुफत भेजेंगे।

व्यवस्थापक पुस्तक विक्रेता बड़ोदा।

वैदिक संस्कारमाला के ग्राहक बनें।

ओ३म्

निष्क्रमण-संस्कार

****

अथ निष्क्रमणसंस्कारविधिः

इस संस्कार के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् बालक को शुद्ध जल से स्नान करा शुद्ध सुन्दर वस्त्र परिधान कराये पश्चात् बालक को यज्ञशाला में बालक की माता ले आके पति के दक्षिण पार्श्व में होकर पति के सामने आकर बालक का मस्तक उत्तर और छाती ऊपर अर्थात् चित्ता रख के पति के हाथ में देवे पुनः पति के पीछे की ओर घूमके बायें पार्श्व में पूर्वाभिमुख आकर बैठ जावे।

ओं यत्ते सुसीमे हृदयँ हितमन्तः प्रजापतौ। वेदाहं मन्ये तद्ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम्॥ १॥ * मं० ब्रा० १।५।१०॥

अर्थः—शोभन केशों वाली! तेरा हृदय ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखने वाला और उदार भावों से युक्त रहने वाला है, यह मैं जानता हूं अर्थात् तू तुच्छ बातों में पड़कर अपने हृदय को कभी द्वेष तथा चिन्ता शोक आदि से युक्त करती नहीं। ऐसी ईश्वरनिष्ठ और विशाल हृदय वाली जननी की सन्तान ईश्वरकृपा से दीर्घायु भोगे, यह मेरी प्रार्थना है।

ओं यत्पृथिव्या अमामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदामृतस्याहं नाम माहं पौत्रमघं रिषम्॥ २॥ मं० ब्रा० १।५।११॥

अर्थः—हे देवि! तेरा हृदय पृथिवी के सारभाग-समान दृढ़ है और चन्द्र आदि आनन्दवर्द्धक पदार्थों के दृश्यों से सुन्दरता, आनन्द तथा पूर्णता आदि गुणों का चिन्तन करचुका है। ऐसे हृदय वाली तुझ देवी की सन्तान दृढ़ मन वाली, रूपवान् आनन्दी और उन्नतिशील हो तथा ईश्वर अपनी कृपा से उस सन्तान को दीर्घायु प्रदान करे॥ २॥

ओं इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजापती। यथायन्न प्रमीयते पुत्रो जनित्र्या अधि॥ ३॥ मं० ब्रा० १।५।१२॥

अर्थः—हे देवि! तू ईश्वररूपी परम ज्योति पर सच्चा विश्वास रखने से आत्मिकबलयुक्त है और भौतिक अग्नि के सेवन करने से उत्तम जठराग्नि तथा होम अग्नि को धारण करती हुई शारीरिक उन्नति वाली है। यह दोनों अग्नियां सन्तान को भी कल्याणकारी हों और ईश्वर बच्चे को दीर्घायु प्रदान करे, यही मेरी वारम्बार प्रार्थना है॥ ३॥

इन तीन मन्त्रों से परमेश्वर की आराधना करके परमेश्वरोपासना स्वस्तिवाचन,

* अथ जपति—यत्ते सुसीमे इति०॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ८। सू० ४॥

शान्तिप्रकरण आदि सामान्यप्रकरणोक्त समस्त विधि कर और पुत्र को देख के इन निम्नलिखित तीन मन्त्रों से पुत्र के शिर को स्पर्श करे* ।

ओं अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० १ । कं० १८ । सू० २ ॥

अर्थः— अङ्गादंगात्सं०........(निरु० ३।४) हे बालक ! तू अङ्ग अङ्ग से उत्पन्न हुए वीर्य्य तथा हृदय से उत्पन्न होता इसलिये तू मेरा आत्मा (प्राणप्यारा) है, मुझ से पूर्व मत मर किन्तु सौ वर्ष तक जी ॥ १ ॥

ओं प्रजापतेष्ट्वा हिङ्कारेणावजिघ्रामि सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ २ ॥ पार० गृ० सू० का० १ । कं० १८ । सू० ३ ॥

अर्थः—(प्रजापतेः) परमात्मा के दिये (हिंकारेण) स्नेहार्द्र शब्द से (त्वाम्) तुझे (अवजिघ्रामि) सूंघता हूं (सहस्रायुषा) बहुत जीवन को लिए हुए (असौ) यह तू (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (जीव) जीता रहे ॥ २ ॥

ओं गवां त्वा हिङ्कारेणावजिघ्रामि । सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ ३ ॥ पार० गृ० सू० का० १ । कं० १८ । सू० ४ ॥

अर्थः—(गवां, हिङ्कारेण) गौओं के जैसे स्नेहार्द्र शब्द से तुझे सूंघता हूं । बहुत जीवन को लिए हुए तू सौ वर्ष तक जीता रहे ॥ ३ ॥

तथा निम्नलिखित मन्त्र बालक के † दक्षिण कान में जपे—

ओं अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः । अस्मे शतँ शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ १ ॥ ऋ० मं० ३ । सू० ३६ । मं० १० ॥

अर्थः—हे (मघवन्, ऋजीषिन्, इन्द्र !) जगत्रूपी धनवाले, प्राप्त करने योग्य ईश्वर ! (विश्ववारस्य, भूरेः, रायः) सब से स्वीकार के योग्य बहुत धन को (अस्मे, प्रयन्धि) हमारे लिये दीजिये । और (अस्मे, जीवसे) हमारे जीवन के लिये (शत, शरदः, धाः) सौ वर्षों को दीजिये । हे (शिप्रिन्, इन्द्र) ज्ञानयुक्त वा सुखद भगवन् ! (अस्मे) हमारे लिये (शश्वतः, वीरान्) बहुत वीर पुरुषों को दीजिये ॥ १ ॥

* अर्थात् नासिका से सूंघे ।

† दक्षिणेऽस्य कर्णे जपति-अस्मे प्रयन्धि० इन्द्र श्रेष्ठानि० ॥ पार० गृ० सू० का० १। अ० १८ । सू० ४–५ ॥

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ २ ॥ ऋ० मं० २। सू० २१। मं० ६॥

अर्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर! (श्रेष्ठानि, द्राविणानि) अति प्रशंसनीय धनों को (अस्मे) हमारे लिये (धेहि) रक्खो और (दक्षस्य) कर्म करने की सामर्थ्य की (चित्तिम्) प्रसिद्धि को दीजिए और हमको (सुभगत्वम्) सौभाग्य दीजिये (रयीणाम्) धनों की (पोषम्) पुष्टि को दीजिये (तनूनाम्) अंगों की वा संतानों की (अरिष्टिम्) अहिंसा को दीजियेः (वाचः, स्वाद्मानम्) वाणी की मधुरता को दें (अह्नाम्, सुदिनत्वम्) दिनों की उत्तमता को दीजिये। अर्थात् ऐसे दिन हमारे व्यतीत हों जिनमें शुभ कार्य होते रहें ॥२॥

इस मन्त्र को वाम कान में जप के पत्नी की गोद में उत्तर दिशा में शिर और दक्षिण दिशा में पग करके बालक को देवे और मौन करके स्त्री * उसके शिर का स्पर्श करे, तत्पश्चात् आनन्दपूर्वक उठ के बालक को सूर्य का दर्शन करावे और निम्नलिखित मन्त्र वहः बोले :—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १ ॥ य० अ० ३६। मं० २४॥

अर्थः—हे सूर्यवत् प्रकाशक परमेश्वर विद्वानों के हितकारी शुद्ध नेत्रतुल्य सबके दिखाने वाले और अनादि काल से अच्छी तरह सबके ज्ञाता हैं। उस आप को हम सौ वर्ष तक ज्ञान द्वारा देखें और आपकी कृपा से सौ वर्ष तक हम जीवें, सौ वर्ष तक सच्छास्त्रों को सुनें सौ वर्ष तक पढ़ावें, उपदेश करें और सौ वर्ष तक दीनतारहित हों और सौ वर्ष से अधिक भी देखें, जीवें, सुनें, और अदीन वा स्वतन्त्र रहें। इस मन्त्र को बोल के थोड़ासा शुद्ध वायु में भ्रमण करा के यज्ञशाला में लावे, तब सब लोग :—

"त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः"

अर्थः—अर्थात् हे बालक! (शतं शरदः) सौ वर्ष (वर्द्धमानः) बढ़ता हुआ (त्वं, जीव) तू जीता रहे। इस वचन को बोल के आशीर्वाद देवे तत्पश्चात् बालक के माता संस्कार में आये हुए स्त्रियों और पुरुषों का यथायोग्य सत्कार कर के विदा करें। तत्पश्चात् जब रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशमान हो तब बालक की माता लड़के को शुद्ध वस्त्र पहिना दाहिनी ओर से आगे आके पिता के हाथ में बालक को उत्तर की ओर शिर और दक्षिण की ओर

* स्त्री—बालिका, देखो—पार० गृ० सू० का० १। अ० १८। मं० ६॥

पग करके देवे और बालक की माता दाहिनी ओर से लौट कर बांई ओर आ अञ्जलि भर के चन्द्रमा के संमुख खड़ी रह के:—

*** ओं यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयꣳश्रितम् । तदहं विद्वाꣳस्तत्पश्यन्माहं पौत्रमघꣳरुदम् ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १। ५।१३ ॥**

अर्थः—जो यह काला पृथिवी का सारभाग चन्द्रमा में स्थित है, उसका जानने वाला मैं, उसको विचारता हुआ, पुत्रसम्बन्धी दुःख के लिये न रोदन करूं ॥ इस मन्त्र से परमात्मा की स्तुति करके जल का पृथिवी पर छोड देवे। तत्पश्चात् बालक की माता पुनः पति के पृष्ठ की ओर से पति के दाहिने पार्श्व से संमुख आके पति के पीछे होकर बाईं ओर बालक का उत्तर की ओर शिर दक्षिण की ओर पग रख के खड़ी रहे और बालक का पिता जल की अञ्जलि भर (ओं यददश्च०) इसी मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके जल को पृथिवी पर छोड़ देवे, फिर दोनों प्रसन्न होकर घर में आवें।

इति निष्क्रमणसंस्कारविधिः

प्रमाणभाग **अत्र प्रमाणम्**

निष्क्रमणसंस्कार उसको कहते हैं कि जो बालक को घर से जहां का वायुस्थान शुद्ध हो वहां भ्रमण कराना होता है। उसका समय जब अच्छा देखें तभी बालक को बाहर घुमावें अथवा चौथे मास में तो अवश्य भ्रमण करावें, इसमें प्रमाण:—

चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका ॥ १ ॥ सूर्य्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति ॥२॥ पार० का० १ । कं० १७ । सू० ५–६ ॥

जननाद्यस्तृतीयो ज्योत्स्नस्य तृतीयायाम० ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २ । कां० ८ । सू० १ ॥

अर्थः—निष्क्रमणसंस्कार के काल के दो भेद हैं, एक बालक के जन्म के पश्चात् तीसरे शुक्ल पक्ष की तृतीया और दूसरा चौथे महीने में जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि में यह संस्कार करे।

निष्क्रमणसंस्कारसम्बन्धी व्याख्या

इस संस्कार के दो उद्देश्य हैं—(१) एक तो बच्चे को जंगल वा उद्यान के शुद्ध वायु का सेवन कराना जिससे उसके अनेक भावी रोग दूर होजावें और शारीरिक उन्नति होसके। (२) उसको सृष्टि अवलोकन करने का प्रथम शिक्षण दिया जावे। यूरोप के विद्वान् आजकल यह कहते हुए नहीं थकते कि उन के देशों में दो वा तीन वर्ष के बालकों को सृष्टि-अवलोकन करने का स्वभाव डाला जाता है। कारण कि सृष्टिदर्शन ही सृष्टिविज्ञान का प्रथम द्वार है।

* अपामञ्जलिं पूरयित्वाभिमुखश्चन्द्रमसम् ॥ ६ ॥ यददश्चन्द्रमसीति० ॥ ७ ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० ८ । सू० ६–७ ॥

पुराने ऋषि इस मर्म को समझे हुये थे, यही तो कारण है कि उन्होंने जहां निष्क्रमणसंस्कार का एक अंग वायुसेवन रक्खा वहां दूसरा अंग सृष्टि-अवलोकन ठहराया और इसी उद्देश्य से वे सृष्टिरूपी पुस्तक के सूर्य्य चन्द्र रूपी दो आरम्भिक अक्षरों के दर्शन कराते थे। कोई कह सकता है कि दो वा तीन वर्ष का बच्चा तो कुछ सुनकर सृष्टि के किसी पदार्थ का अवलोकन करेगा, तीन मास का बच्चा क्या कर सकता है? ऐसा कहने वाला बच्चों के स्वभाव से मानो अज्ञ है। दो महीने तक तो बच्चा बहुत सोता है फिर कभी कभी जागकर टिकटिकी लगाये रहता है यदि रात्रि में दीपक उसकी आँखों के सामने दूर रक्खा हो, वह कई क्षण विना आंख झपके उस ज्योति का दर्शन (अवलोकन) करता रहता है। मातायें दीपक को आड़ में कर देती हैं यह समझते हुए कि कहीं आंख थक न जाय परन्तु यह उनकी भूल है। बच्चा मानो योगी की तरह ज्योति का दर्शन कर रहा है और थकने पर आंख स्वयं ही बन्द कर लेगा। आरम्भ में बच्चा पूरी रुचि के साथ यदि किसी पदार्थ का दर्शन करना चाहता है तो वह ज्योति ही है।

चौथे मास में जब उसकी अवलोकन शक्ति उत्तेजित होरही है उस समय उसको सूर्य्य चन्द्र के दर्शन कराना मानो स्वाभाविक रुचि को तृप्त करना है। बालशिक्षण का यही रहस्य माना गया है। अंग्रेज मातायें अपने छोटे बच्चों को, जो दो तीन मास की आयु के होते हैं, गाडी आदि में लिटाकर जंगल की वायु सेवन कराती हैं। यह निष्क्रमण नहीं तो क्या है? यूरोप की माताओं ने निष्क्रमण का महत्व सचमुच समझ लिया है, यही तो कारण है, कि उनके बच्चे परिश्रमी, तपस्वी और दीर्घजीवी होते हैं। हमारे पूर्वजोंने शुद्ध वायु का महत्व भलीभांति समझा था और इसीलिये तीन मास के बच्चे को शुद्ध वायु सेवन कराने के लिये इस संस्कार की नींव डाली थी। खेद का विषय है कि आजकल भारतीय मातायें भूत प्रेत आदि मिथ्या जालों में फंसकर बच्चों को घर से नहीं निकालतीं।

समयः—

यह संस्कार कब किया जावे? इसके लिये ऋषियों के दो मत हैं। प्रथम मतानुसार बालक के जन्म के पश्चात् तीसरे शुक्लपक्ष की तृतीया को संस्कार करना चाहिये। कल्पना करो कि एक बच्चा ८ मई सन् १९१२ को जन्मा है तो १७ जुलाई १९१२ को शुक्लपक्ष की तृतीया होगी। अथवा यह कहिये कि १७ जुलाई को २ मास और १० दिन होते हैं। इस मत का अभिप्राय है कि जो बलवान् बच्चे हों वे दो मास से कुछ ऊपर व तीन मास के अन्दर इस योग्य समझे जावें कि उनको वायु-सेवन कराया जावे वा उष्णकाल में यह मत अधिक उपयोगी हो सकता है। शुक्लपक्ष की तृतीया तिथि रखनेका प्रयोजन यह है कि प्रतिपदा वा द्वितीया में चांद स्पष्टता से दृष्टिगोचर कम होता है। तृतीया को उसकी कला इतनी भरजाती है कि बच्चे को सहज से दृष्टिगोचर हो सके। दूसरा मत यह है कि चौथे महीने में जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो, उस तिथि में संस्कार करे। इसका अभिप्राय यह है कि जब बच्चा पूरे तीन मास का होजावे और उसका चौथा मास आरम्भ होतो इस मास में, उसकी जन्मतिथि में जो शुक्लपक्ष में आवे उस में यह संस्कार होना चाहिये। साधारण बच्चों के लिये अथवा शीत ऋतु में यह मत अधिक उपयोगी है।

आरम्भिक क्रिया

संस्कार के दिन सूर्योदय के पश्चात् बालक को शुद्ध जल से माता स्नान करा सुन्दर, शुद्ध, कोमल वस्त्र, जो शरीररक्षा में उपयोगी हों, पहिनावे। फिर उसकी माता बालक को पति के हाथ में देने के लिये यज्ञशाला में आवे। पति पूर्वाभिमुख बैठे, स्त्री पति के दक्षिणपार्श्व से होकर उसके सामने खड़ी रहकर दे देवे। स्त्री जब बच्चे को उठाकर लावे, तब उसका शिर अपने दक्षिण हाथ को रक्खे, फिर जब वह पति के सामने होकर बच्चा देगी तो बच्चे का शिर उत्तर दिशा की ओर अपने आप होगा, जब बच्चा उसको दे चुके तो फिर उसी मार्ग से अर्थात् पति के पीछे की ओर घूमकर, पति के वामपार्श्व में पश्चिमाभिमुख खड़ी रहे, और तीन मन्त्रों के पाठ से उसका सत्कार पति करे। यह तीन मन्त्र स्त्रीजाति के विशेष गुणों के बोधक तथा उनके सत्कारार्थ हैं, और जब यह मन्त्र पति पढ़े तब तक वह स्त्री खड़ी रहे। खड़ी रहने से प्रयोजन यह है जिस देवी के गुण वर्णन होरहे, हैं उसका दर्शन भी सब कर सकें। तत्पश्चात् बैठे जावे और पति पत्नी दोनों सामान्य होम आदि की क्रिया समाप्त करें।

तीन मन्त्रों का भावार्थ

स्त्री सत्कार तथा बालक के आशीर्वादार्थ जो तीन मन्त्र पति बोले वह वही हैं जो जातकर्मसंस्कार में मार्जन करते समय पति बोला था उनके अर्थ वहां पर आचुके हैं तो भी यहां दे देते है। (१) हे शोभन केशों वाली! तेरा हृदय ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखनेवाला और उदार भावों से युक्त रहने वाला है, यह मैं जानता हूं अर्थात् तू तुच्छ बातों में पड़कर अपने हृदय को कभी द्वेष तथा चिन्ता शोक आदि युक्त करती नहीं। ऐसी ईश्वरनिष्ठ विशाळ हृदयवाली जननी की सन्तान ईश्वरकृपा से दीर्घायु भोगे, यही मेरी प्रार्थना है।

(२) हे देवी! तेरा हृदय पृथिवी के सारभागसमान दृढ़ है और चन्द्र आदि आनन्दवर्द्धक पदार्थों के दृश्यों से सुन्दरता, आनन्द तथा पूर्णता आदि गुणों का चिन्तन कर चुका है ऐसे ही हृदयवाली तुझ देवी की सन्तान दृढ़ मन वाली, रूपवान्, आनन्दी और उन्नतिशील हो तथा ईश्वर अपनी कृपासे उस सन्तान को दीर्घायु प्रदान करे।

(३) हे देवी! तू ईश्वररूपी ज्योति पर सच्चा विश्वास रखने से आत्मिकबल युक्त है और भौतिक अग्नि के सेवन करने से उत्तम जठराग्नि तथा होम अग्नि को धारण करती हुई शारीरिक उन्नति वाली है। यह दोनों अग्नियां सन्तान को भी कल्याणकारी हों और ईश्वर बच्चे को दीर्घायु प्रदान करे यही मेरी वारम्बार प्रार्थना है। जब जप का एक मन्त्र उसके दक्षिण और दूसरा वाम कान में जप चुके तो पति, पत्नी की गोद में उत्तर दिशा में शिर और दक्षिण दिशा में पग करके बालक को देवे और मौन होकर के बालिका के शिर का आघ्राण करे।

संस्कारविधि में बालिका के स्थान में "स्त्री" छपगया है, किन्तु पार० गृ० सूत्र में बालिका ही से अभिप्राय है। इसलिये स्त्री के स्थान में बालिका के शिर का आघ्राण, यह पाठ ठीक समझना चाहिये। फिर वहां से उठकर बड़ी युक्ति से बालक को सूर्य का दर्शन करावे।

सोते बालक को जगावे नहीं किन्तु जब जग रहा हो तो उस समय क्षणमात्र ही सूर्य की ओर उसका मुंह करदेना पर्याप्त है वह आपही देख लेगा। सूर्य को दिखाने का यत्न करना नहीं चाहिये, अधिक दिखाने से किसी नेत्र-रोग की सम्भावना है। उधर बालक सूर्य का अवलोकन करने लगे, इधर यह मन्त्र बोले "तच्चक्षुर्देवहितम्" इसका सार यह है कि हम दृढ़ इन्द्रियों के सहित १०० सौ वर्ष भोगने का पुरुषार्थ करें तथा दर्शन श्रवण की इन्द्रियों द्वारा ज्ञानवृद्धि करते रहें। इस मन्त्र-पाठ के पीछे शुद्ध वायु में भ्रमण कराके यज्ञशाला में लावे जहां सब लोग "त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः" अर्थात् हे बालक! (शतं, शरदः) सौ वर्ष (वर्धमानः) बढ़ता हुआ (त्वं, जीव) तू जीता रहे। इस उत्तम वचन से आशीर्वाद दें। फिर बालक के माता और पिता संस्कार में आये हुये स्त्री और पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें।

तत्पश्चात् रात को जब चन्द्रमा प्रकाशमान हो रहा हो, तब बालक की माता बालक को रात के उपयोगी शुद्ध सुन्दर वस्त्र पहिना दक्षिण ओर से आगे आकर पिता के हाथ में बालक को उत्तर की ओर शिर और दक्षिण की ओर पग करके देवे और बालक की माता दक्षिण ओर से लौटा कर वाम ओर आकर अंजलि भर कर चन्द्रमा के सन्मुख रहकर "ओम् यददश्चन्द्र..." इस मन्त्र से ईश्वर की स्तुति करके जल को पृथिवी पर छोड़ देवे।

प्रश्न हो सकता है कि क्यों जी! स्त्री पति के दक्षिण ओर से आकर खड़ी रहकर बच्चे को देकर फिर पीछे घूम उसके वाम ओर को हो पश्चिमाभिमुख क्यों खड़ी रहे और इधर उधर की घूमाघामी क्यों करे? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि सभा में बैठने उठने आने जाने आदि के नियम व्यवहार की सुविधा के लिये सबको बनाने पड़ते हैं। क्या हम देखते नहीं कि बड़ी बड़ी सभाओं में सभापति के पीठासन (कुर्सी) के पास व्याख्यान देने वालों के लिये स्थान नियुक्त किया होता है और वक्ता लोग सभा के मध्य में से अथवा जहां से चाहें वहां से न आते हुए सभापति के पीछे की ओर को दक्षिण वा वाम भाग में खड़े रहकर व्याख्यान देते हैं और फिर उसी मार्ग से चले जाते हैं। यह सब बातें व्यवहार की सुविधा के लिये नियत करनी ही पड़ती हैं। इसी प्रकार जब यज्ञशाला में पुरुष स्त्रियां भर रही हैं तो पत्नी का पति के दक्षिण ओर से होकर उसके सामने बच्चे को युक्ति से देना क्या ही उत्तम व्यवहार-कुशलता की बात है। यदि कोई कहे कि पत्नी वाम ओर से क्यों न आवे? तो इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि यदि वाम ओर ही को आना लिखा होता तो वादी का प्रश्न फिर यह होता कि दक्षिण ओर से वह क्यों न आई? कोई ओर तो आने की नियत करनी ही थी। जब दक्षिण ओर आने को नियत की और इससे लेशमात्र भी विघ्न काम में पड़ता नहीं तो इस दिशा को परिवर्तन करने का प्रश्न व्यर्थ है। रही यह बात कि वह फिर पीछे से घूमकर क्यों वाम ओर को पुनः खड़ी हो। यह इसलिये कि पहिला काम उसका बच्चे को पति के हाथ में देना था, वह काम कर लेने के पीछे उसको उसी मार्ग से पीछे लौटना चाहिये, और दूसरा काम उसका पति के वामभाग में पश्चिमाभिमुख खड़ा रहना है,

तो उस स्थान के लिये पीछे से आना प्रकट करता है कि वह एक काम कर चुकी अब दूसरे में संयुक्त होती है।

दूसरा प्रश्न यह है कि यह मन्त्र पढ़कर माता पानी की अंजलि क्यों चन्द्र की ओर मुख करके जमीन पर छोड़े ? इसका उत्तर यह है जो कि मन्त्र में कहा गया है कि—

"* जो यह काला पृथिवी का सारभाग चन्द्र में स्थित है उसका जानने वाला मैं, उसको विचारता हुआ पुत्र-सम्बन्धी दुःख के लिये रोदन न करूं" चन्द्रशक्ति मन को प्रसन्न करने के आयुवृद्धि का एक कारण है। चन्द्र के यदि दो अंश कहे जावें तो चन्द्र का वह अंश जो तेजोमय है, वह मन पर, जो तेज के अंश से विशेष बना हुआ है, प्रसन्नता-रूपी प्रभाव डालता है। चन्द्र का दूसरा अंश पार्थिव है, वह अंश जल पर प्रभाव डालता है। समुद्र पर रहने वाले यह तो अनुभव करते हैं कि जल में ह्रास वा वृद्धि चन्द्र पर निर्भर है, पर साधारण मनुष्य यह नहीं समझते कि चन्द्र क्यों जल पर प्रभाव डालता है ? इसका उत्तर इस मन्त्र में स्पष्ट शब्दों द्वारा दिया हुआ है। मन्त्र में बतलाया गया है कि जो चांद में काला भाग दीखता है वह पृथिवी का सार है वा यह कहो कि पृथिवीमय है और पृथिवी-मय होने के कारण ही जल को आकर्षित करता है। पृथिवी का स्वभाव जल को आकर्षण करने का है। जब चन्द्र में पृथिवी का तत्व है तो वह क्यों न हमारे पृथिवी के जल पर प्रभाव डालेगा ? अब यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चय कराने के लिए कि यह हमारी पृथिवी जल को आकर्षण करती है, उदाहरणार्थ एक चुल्लू जल ज़मीन पर छोड़ा जाता है। जल छूटते ही पृथिवी पर गिरता है और यही प्रत्यक्ष प्रमाण है कि पृथिवी जल को आकर्षण करती है। जब अंजलि छोडने से यह बात निश्चय होगई कि पृथिवी जल को आकर्षण करती है तो फिर अनुमान से यह निश्चय सहज से हो सकता है कि चांद में जो काला काला दीखता है वह चूंकि पृथिवी का सारभाग है, इसलिए वह क्यों न जल को आकर्षण करेगा ? अतः जब यह निश्चय होगया कि चांद जल पर प्रभाव डालता है तो हमारे शरीर में जैसा कि बुद्धिमान् कहते हैं एक भारी भाग जल तत्व का है, उस पर इसका प्रभाव क्यों न पड़ेगा ? अवश्य पड़ेगा इसलिये चन्द्रमा मन को प्रसन्न करने तथा हमारे शरीरस्थ व पृथिवीस्थ जल के शोधक शोधक होने से आयुवृद्धि का कारण है। इस बात के रहस्य को जानने वाला जैसा मन्त्र में कहा गया है, संतान की दीर्घायु की आशा कर सकता है, क्योंकि वह जानता है कि चन्द्र इसका एक कारण है। आजकल यूरोप के विद्वान् मानते हैं कि चांद में काले पहाड़ हैं। पहाड़ भी पृथिवी तत्व का दूसरा नाम ही है जोकि मन्त्र साफ बतला रहा है। न्यूटन‡ महोदय ने सेव को जमीन पर गिरते देखकर समझा था कि पृथिवी आकर्षण करती है और अब यूरोप के सब विद्वान् मानते हैं कि पानी नीचे इसलिए गिरता व बहता है कि पृथिवी

* वही भाव जातकर्मसंस्कार में व्याख्यासहित आचुका है॥

‡ Newton.

उसको आकर्षण कर रही है। कभी समय था कि यही सिद्धान्त जल की एक अंजलि छोड़ने से भारत के नरनारी समझते थे। बालक की माता अंजलि छोड़ देवे तब वह पति के दक्षिण पार्श्व से सन्मुख आकर पति से बालक को लेवे। पुनः पति के पीछे होकर वाम ओर आकर बालक का उत्तर की ओर शिर दक्षिण की ओर पग रखकर खड़ी रहे और बालक का पिता जल की अंजलि भर पूर्वोक्त मन्त्र के पाठ से ईश्वरप्रार्थना करके जल को पृथिवी पर खड़ा खड़ा छोड़ देवे।

कौमारभृत्य और चरक

चरकसंहिता शरीरस्थान अध्याय ८ सूत्र ११९ में बच्चे के निवासस्थान-सम्बन्धी जो बातें बतलाई हैं, वह ये हैं:— कुमारागारविधि

अतोऽनन्तरं कुमारागारविधिमनुव्याख्यास्यामः। वास्तुकुशलप्रशस्तं रम्यतमं निवातं प्रवातैकदेशं दृढमपगतश्वापदपशुदंष्ट्रिमूषकपतङ्गं सुसंविभक्त-सलिलोलूखलमूत्रवर्चःस्थानस्नानभूमिमहानसमृतुसुखं यथर्तुशयनासना-स्तरणसम्पन्नं कुर्यात् तथा सुविहितरक्षाविधानबलिमंगलहोमप्रायश्चित्तं शुचिवृद्धवैद्यानुरक्तजनसम्पूर्णमिति कुमारागारविधिः॥

अर्थः—इसके अनन्तर बालक के रहने के स्थान बनाने की विधि का कथन करते हैं। उत्तम वास्तुशास्त्री (इञ्जीनियर) से बनाया हुआ इधर उधर फिरने योग्य अन्धकाररहित, जिस स्थान में अधिक वायु न आती हो तथा एक ओर सुन्दर पवन भी आती हो, ऐसा दृढ़ अर्थात् पक्का मकान बनावे, जिस मकान में कुत्ते, पशु, अन्य दांतों वाले जानवर तथा हिंसक जीव, मच्छर, मूषक, पतंग आदि न आसकें, और घर में विधिपूर्वक यथास्थान जल, ऊखल, मल मूत्र त्यागने का स्थान, स्नान करने का स्थान, भोजन बनाने का स्थान, यथाऋतु शयन करने और बैठने के लिये तथा बिछाने और ओढ़ने के लिये सुखदायी वस्त्र एवं जिस घर में सम्पूर्ण रक्षा के विधान, बलिदान, मंगलकर्म, होम और प्रायश्चित्त की सामग्री तथा पवित्र वृद्ध वैद्य और बालक से प्रीति रखने वाले मनुष्य रहने चाहियें। इस प्रकार कुमारागार की विधि वर्णन की गई है।

शयनास्तरणप्रावरणानि कुमारस्य मृदुलघुशुचिसुगन्धीनि स्युः स्वेदमलजन्तुमूत्रपुरीषोपसृष्टानि च वर्ज्यानि स्युः॥ चरक० १२०॥

अर्थः—बालक के सोने की शय्या और बिछाने के वस्त्र और ओढ़ने के वस्त्र हलके सुन्दर, नरम, पवित्र और सुगन्धित होने चाहियें। उन में पसीना, मल, मूत्र, जीव, विष्ठा आदि किसी समय भी न रहना चाहिए॥ १२०।'

फिर धूप-द्रव्यों का विधान किया है:-

धूपनानि पुनर्वाससां शयनास्तरणप्रावरणानाञ्च यवसर्षपातसीहिंगु-गुग्गुलुवचाचोरकवयःस्थागोलोमीजटिलापलङ्कषाशोकरोहिणीसर्पनिर्मोकाणि घृते संपृक्तानि स्युः॥ १२२॥

अर्थ :—धूपन द्रव्य अर्थात् बालकों के वस्त्रों को धूनी देने के ये द्रव्य हैं। जैसे यव, सरसों, अलसी, हींग, गूगल, वच, गठीवन, हरड़, बालछड, जटामासी, काख, अशोक, कुटकी और सांप की कांचुली, इन सब के बारीक चूर्ण को घृत में मिला बालक के वस्त्र, शय्या आदि सबको धूनी देनी चाहिये ॥ १२२ ॥

निम्नलिखित सूत्र में दर्शाया है कि बालक को खेलने के लिये कैसे खिलौने देने चाहियें—

क्रीडनकानि खल्वस्य तु विचित्राणि घोषवन्त्यभिरामाणि अगुरूण्य-तीक्ष्णाग्राणि अनास्यप्रवेशीनि अप्राणहराणि अवित्रासनानि स्युः ॥ १२४ ॥

अर्थ :—इस बालक के खेलने के लिये चित्र विचित्र शब्द करने वाले अथात् बजने वाले सुन्दर खिलौने रखने चाहियें। वह खिलौने हलके, जिन के हाथ पावों पर गिर जाने से चोट न लगे तथा आगे से पैनें न हों एवं मुख मे न चुभ जायं ऐसे तीक्ष्ण न हों जो बालक के प्राणो को लेलें या कष्ट देवें। उत्तम प्रकार के, न डराने वाले, हलके खिलौने चाहियें।

(१२५ सूत्र में) बालक को कभी भी डराना न चाहिये यदि बालक रोता हो और खाता न हो वा अन्य उपद्रव करता हो तो भी उसे भयभीत न करना चाहिये। उसे डराने के लिये किसी राक्षस, पिशाच; पूतना आदि का नाम भी न लेना चाहिये। बच्चे को किसी दशा में भयभीत न करना, इसका मर्म जापानी देवियां जान गई है।

इति निष्क्रमणसंस्कारव्याख्या* ।

* विवरण (निष्क्रमणसंस्कार के "यददश्चन्द्रमसि कृष्णम्" वाक्य से सम्बन्ध) विदित हो कि सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान अध्याय ६। वाक्य १९ में चन्द्र को सब प्राणियों के बल बढाने वाला कहा गया है। यथाः—

तयोर्दक्षिणं वर्षाशरद्धेमन्तास्तेषु भगवानाप्यायते सोमोऽम्ललवण-मधुराश्च रसा बलवन्तो भवन्त्युत्तरोत्तरं च सर्वप्राणिनां बलमभिवर्द्धते ॥१९॥

अर्थ :—तीन में से वर्षा, शरद् और हेमन्त इन तीन ऋतुओं का दक्षिणायन होता है इन तीनों में भगवान् चन्द्र बलिष्ठ होता है और अम्ल, लवण, मधुर, ये रस (क्रम से) बलवान् होते हैं और उत्तरोत्तर सब प्राणियों का बल बढ़ता है।

ओ३म्

अन्नप्राशन-संस्कार

****

अथ अन्नप्राशनसंस्कारविधिः

जब यह संस्कार करना हो तब घृतयुक्त भात अथवा दही, शहद और घृत तीनों भात के साथ मिलाके निम्नलिखित विधि से अन्नप्राशन करे अर्थात् सामान्यप्रकरणोक्त सम्पूर्ण विधि को करके जिस दिन बालक का जन्म हुआ हो उस दिन यह संस्कार करे और निम्न लिखे प्रमाणे भात सिद्ध करे।

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। ओं अपानाय त्वा०। ओं चक्षुषे त्वा०। ओं श्रोत्राय त्वा०। ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा०॥

अर्थ—प्राण के हितार्थ तुझे प्रीति से साफ करता हूं, अपान के हितार्थ तुझे धोता हूं (वा साफ करता हूं), चक्षु के हितार्थ तुझे साफ करता हूं, श्रोत्र के हितार्थ तुझे साफ करता हूं अच्छे रस के कर्त्ता अग्नि के लिये तुझे शुद्ध करता हूं।

इन पांच वाक्यों का यही अभिप्राय है कि चावलों को धो शुद्ध करके अच्छे प्रकार बनाना और पकते हुए भात में यथायोग्य घृत भी डाल देना जब अच्छे प्रकार पकजावें तब उतार थोड़े ठण्डे हुए पश्चात् होमस्थाली में:—

*** ओं प्राणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि। ओं अपानाय त्वा०। ओं चक्षुषे त्वा०। ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा०॥ ५॥**

अर्थ:—प्राणों के हितार्थ तुझे प्रीति से रखता हूं (वा देता हूं) अपान के हितार्थ प्रेम से रखता हू, नेत्र के हितार्थ प्रेम से रखता हूं, प्राणों के हितार्थ प्रेम से रखता हूं, अच्छे इष्टसाधक अग्नि के लिये तुझ प्रेम से रखता हूं।

इन पांच मन्त्रों से कार्यकर्ता यजमान और पुरोहित तथा ऋत्विजों को पात्र में पृथक् पृथक् देके अग्न्याधान समिदाधानादि करके प्रथम आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार मिलके आठ घृत की आहुति देके पुनः उस पकाए हुए भात की आहुति नीचे लिखे हुये मन्त्रों से देवे।

§ देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु स्वाहा॥ इदं वाचे, इदन्न मम॥ १॥ ऋ० मं० ८। सू० १००। मं० ११॥

---

* विवरण:-चावलो को धोते समय और स्थाली मे रखते समय ऐसा कहना याज्ञिकों की शैली है, देखो आश्वला० गृ० सू० अ० १। कं०। १० सू० ६-७॥ प्राण, अपान, वायु, चक्षु, श्रोत्र, अग्नि इनके लिये (जुष्टं, त्वा) प्रीतिभोजन तुझको (प्रोक्षामि) धोता हूं। निर्वपामि) रखता हूं।

§ विवरण:—पार० गृ० का० १। कं० १९॥ सू० २-३।

अर्थः—(देवाः) विद्वान् लोगों ने (देवीं, वाचम्) ध्वनि वाली वाणी को (अजनयन्त) उत्पन्न किया है (ताम्) उस वाणी को (विश्वरूपाः, पशवः) अनेक प्रकार के अज्ञानी जन (वदन्ति) बोलते हैं (सुष्टुता) हम सब से प्रशंसित (सा, वाक्) वह वाणी (नः, मन्द्रा) हमारे लिये हर्षकारिणी होती हुई (इषम्, ऊर्जम्) इष्यमाण बल वा रस को (दुहाना) देने वाली (धेनुः) गौ की नाईं (अस्मान्) हम सबों को (उप, एतु) प्राप्त हो। अर्थात् विद्वानों की परिष्कृत हर्षकारिणी संस्कृत वाणी ईश्वर करे कि हमें प्राप्त हो ॥ १ ॥

वाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ २॥ ऋतुभिः कल्पयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयꣳस्वाहा ॥ इदं वाचे वाजाय इदन्न मम ॥ २ ॥ यजु० अ० १८ । मं० ३३ ॥

अर्थ :—(वाजः) अन्न (नः) हमारे लिये (दानम्) दानशक्ति को (अद्य, प्रसुवाति) आज पैदा करता है । (ऋतुभिः) ऋतुओं के उत्सवों के साथ (देवान्) विद्वानों को (वाजः) अन्न ही (कल्पयाति) समर्थ बनाता है । (वाजः, हि (अन्न ही) (सर्ववीर, मा, जजान) सब पुत्रादि वीर हैं जिसके ऐसा मुझे करे, जिसके कि मैं (वाजपतिः) अन्न का अध्यक्ष होकर (विश्वाः, आशाः) सब दिशाओं को ईश्वर करे कि (जयेयम्) जीतूं ॥ २ ॥ इन दो मंत्रों से दो आहुति देवे तत्पश्चात् उसी भात में और घृत डाले ।

ओं प्राणेनान्नमशीय स्वाहा ॥ इदं प्राणाय—इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थ :—(प्राणेन) प्राण वायु से (अन्नम्) अन्न का (अशीय) उपभाग करूं ॥१॥

ओं अपानेन गन्धानशीय स्वाहा ॥ इदमपानाय—इदन्न मम ॥ २ ॥

अर्थ :—(अपानेन) प्राणेतर वायु से (गंधान्) अन्नव्यतिरिक्त द्रव्यों का (अशीय) उपभोग करूं ॥ २ ॥

ओं चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा ॥ इदं चक्षुषे—इदन्न मम ॥ ३ ॥

अर्थ :—(चक्षुषा, रूपाणि) चक्षु-नेत्र से रूपों का (अशीय) उपभोग करू ॥३॥

ओं श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा ॥ इदं श्रोत्राय इदन्न मम ॥ ४ ॥ पार० गृ० सू० का० १। क० १९ । सू० ४ ॥

अर्थ :—(श्रोत्रेण, यशः) कान से यश का (अशीय) उपभोग करूं ॥४॥

इन मन्त्रों से चार आहुति देके (ओं यदस्य कर्मणो०) इससे स्विष्टकृत् आहुति एक देवे तत्पश्चात् व्याहृति आहुति चार और (ओं त्वन्नो०) इत्यादि से आठ आज्याहुति मिल के बारह आहुति देवे । उस के पीछे आहुति से बचे हुए भात में दही, मधु और उसमें घी यथायोग्य किंचित् किंचित् मिला के और सुगन्धियुक्त और भी चावल बनाये हुए थोड़े से मिलाके बालक के रुचि प्रमाणे:—

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्रप्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे *॥ १ ॥ यजु० अ० ११ । मं० ८३ ॥

अर्थः—हे (अन्नपते) अन्नमात्र के स्वामी परमात्मन् ! (अनमीवस्य) अमीवा—व्याधि से रहित (शुष्मिणः) बल देने वाले (शुष्ममिति बलनाम) (अन्नस्य) अन्न को (नः) हमारे लिए (देहि) दीजिये और (प्र, दातारम्) अन्न का दान करने वाले को, सुखसामग्री से (तारिषः) बढ़ाइये। (नः) हमारे (द्विपदे, चतुष्पदे) भृत्यों और गौ आदि के लिए भी (ऊर्जम्) बलकारक अन्न को (धेहि) दीजिए ॥

इस मन्त्र को पढ़ के थोड़ा थोड़ा पूर्वोक्त भात बालक के मुख में देवे यथारुचि खिला बालक का मुख धो और अपने हाथ धोके महावामदेव्यगान करके जो बालक के माता पिता और अन्य वृद्ध स्त्री पुरुष आये हों वे परमात्मा की प्रार्थना करके:—

त्वमन्नापतिरन्नादो वर्धमानो भूयः।

अर्थ (त्वम्) तू (अन्नपतिः) अन्न का स्वामी (अन्नादः) अन्न का ही उपभोग करने वाला (वर्धमानः, भूयाः) ईश्वर करे कि शरीर वृद्धि को प्राप्त हो।

इस वाक्य से बालक को आशीर्वाद देके पश्चात् संस्कार मे आये हुए पुरुषों का सत्कार बालक का पिता और स्त्रियों का सत्कार बालक की माता करके सब को प्रसन्नतापूर्वक विदा करें।

इत्यन्नप्राशनसंस्कारविधिः

(प्रमाणभाग) **अत्र प्रमाणम्**

अन्नप्राशनसंस्कार तभी करे जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे।

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम् ॥ १ ॥ घृतौदनं तेजस्कामः ॥ २ ॥ दधिमधुघृतमिश्रितमन्नं प्राशयेत् ॥ ३ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ । कं० १६ । सू० १, ४–५॥

इसी प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्रादि में भी हैं। देखो पार० गृ० सू० कां० १। कं० १९।सू० १॥

उपर्युक्त मन्त्रों का अर्थ यह है कि छठे महीने बालक को अन्नप्राशन करावे। जिसको तेजस्वी बालक करना हो वह घृतयुक्त भात अथवा दही, शहद और घृत तीनों भात के साथ मिला के खिलावे अर्थात् अन्नप्राशनसंस्कार में लिखी हुई विधि के अनुसार काय्यारम्भ करे।

अन्नप्राशन संस्कारसम्बन्धी व्याख्याभाग

एक सूत्रकार का मत है कि जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे तब यह संस्कार करना चाहिये। दूसरे सूत्रकार के मत में छठे मास में यह संस्कार होना ठीक है।

बलवान् बच्चे तो छठे मास में ही, पर साधारण शक्तिवाले बच्चे आठवें वा नवें मास अन्न पचाने के योग्य हो जाते हैं। प्रायः बालक जब छः मास का होने लगता है तब उसके

* आश्व० गृ० सू० अ० १। कं० १६ ॥ सू० ५ ॥

नीचे के दो दांत निकलने आरम्भ होते हैं। इस समय बच्चे क्षार वा लवण पदार्थ चाहते हैं और इसलिये मट्टी चाटना उनको भाता है क्योंकि मट्टी में क्षार (सोडा) वा लवण रहता है। मट्टी के चाटने को तो रोकना ही ठीक है, किन्तु भुना हुआ सुहागा १ वा २ रत्ती भर थोड़े शहद के साथ दिन मे एक बार चटा देना अच्छा होता है। इसके चटाने से मिट्टी चटाने की ज़रूरत नहीं रहती। रबर वा मुलेठी वा काष्ठ की उत्तम चूसनी दांत निकालने के इन दिनों में बच्चों को लाभदायक होती है। सुश्रुत में १ वर्ष के बच्चे की संज्ञा "क्षीरपा" और दो वर्ष के बच्चे की "क्षीरान्नाद" कही गई है, परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि छः मास के बालक को जरासा अन्न, जब कि वह पचा भी सकता है, न दिया जावे। स्वयं सुश्रुतकार का ही मत है कि छठे मास अन्नप्राशन कराया जावे जैसा कि नीचे के प्रमाण से विदित होगा—

षण्मासं चैनमन्नं प्राशयेल्लघु हितं च। नित्यमवरोधरतश्च स्यात्कृतरक्ष उसपर्गभयात्। प्रयत्नतश्च ग्रहोपसर्गेभ्यो रक्ष्या बाला भवन्ति॥ सुश्रुत शरीरस्थान अ० १० । सू० ६४॥

अर्थ:—छठे महीने में बालक को अन्नप्राशन करावे। जो अन्न बच्चे को देवे वह हलका, पतला और हितकारी होना चाहिए। तथा सदैव बालक के पास कोई न कोई मनुष्य रहना चाहिये और उपद्रवों के भय से सदा रक्षित रखना चाहिए, क्योंकि बालक यत्नपूर्वक, ग्रह (मानसिकरोग, भय आदि) और उपद्रवों से रक्षा करने योग्य होते हैं। इससे पहिले के सूत्रों में जो लेख सुश्रुत में है उसका अनुवाद ही देना यहां काफी होगा।

" बालक को जिस प्रकार उसको सुख मिले गोद में रक्खे उसको त्रास न देवे। सोते हुए को झटपट उठावे नहीं, क्योंकि वह डर जावेगा, झटका देकर ऊपर को न उठावे और नहीं नीचे को करे, क्योंकि इससे वायु के विकार का भय है। अति छोटे बच्चे को बिठावे नहीं क्योंकि इससे कुबड़ा हो जाने का भय है। माता पिता नित्य बालक के अनुकूल और प्रिय बातें किया करें, क्योंकि ऐसा करने से बालक प्रसन्नचित्त रह कर वृद्धि को प्राप्त होता है तथा सत्व सम्पन्न नीरोगी और आनन्दित रहता है। बालक को तेज हवा, धूप, बिजली की चमक, वृक्ष, बेल (लता), सूने स्थान और जहां दीवालों की छाया पड़ती हो ऐसी जगहों से बचावे। उसका अशुद्ध जगह रोगी आदि के पास न छोड़े, खुली छतों पर तथा ऊंची नीची जगह पर भी न छोड़े। गरम पवन (लू), वर्षा, धूल तालाब, नदी, कूप आदि जलस्थानों के पास न जाने दे। बालक को दूध ही अनुकूल होता है, इस कारण से जो दूध पिलानेवाली के स्तनों में पर्याप्त दूध न हो तो गाय बकरी का दूध मात्रा के अनुसार बालक को पिलावे।

अन्नप्राशन संस्कार की प्रथा भारतवर्ष में न रहने से अनेक मातायें दो दो तीन तीन वर्ष तक दूध पिलाती चली जाती हैं। कई माताएं तो यहांतक अबोध होती हैं कि दूसरा गर्भ रह गया है और पहिले बच्चे को दूध पिला रही हैं। इस प्रकार गर्भिणी का दूध पीने से कई भयंकर रोग दूध पीनेवाले बालक को हो जाते हैं। यूरोप के कई डाक्टरों का मत

है कि ९ वा १० मास तक दूध पिलाना चाहिये। इस नियम पर चलने वाली स्त्रियां छटे व सातवें मास से अपना दूध कम पिलाना आरम्भ कर देती हैं, और गाय के दूध में उचित भाग पानी वा चूने के पानी (लाइमवाटर) को डालकर बालक को ऊपर के दूध का अभ्यासी बनाती हैं और कभी कभी ऊपर के दूध के अतिरिक्त चावल वा रोटी का टुकड़ा चबाने को दे देती हैं। किसी रूप में बच्चे को जो यह अन्न सर्वत्र दिया जाता है यही तो अन्नप्राशन है।

अन्नप्राशन संस्कार बतलाता है कि बच्चे को किसी उत्तम विधि से अन्न देने का आरम्भ किया जावे। यदि भारतवर्ष में अन्नप्राशन संस्कार समझ बूझ कर करने की प्रथा होती तो लाखों माताएं एक वर्ष से अधिक दूध पिलाने के कारण स्वयं रुग्ण न होतीं। सैकड़ों मातायें गर्भिणी होने पर दूध पिलाती हुई न चली जातीं। दो वा तीन वर्ष तक दूध पिलाने के कारण सैकड़ों माताएं अति निर्बल और पागलपन के रोग में न फंसजातीं। अन्नप्राशनसंस्कार बतलारहा है कि बालक को अब लवणयुक्त अन्न की ज़रूरत पडने वाली है, यह माताओं को उपदेश दे रहा है कि तुम अभी से बच्चे को कुछ कुछ अन्न और कुछ कुछ ऊपर के दूध देने का ढब डालो ताकि ११ वा १२ मास का होकर बालक तुम्हारा दूध छोड़सके।

उत्तम भोजन से बालक तेजस्वी वा वीर हो सकता है, इस सिद्धान्त को जानने वाले तपोधन ऋषि लिखते हैं कि तेजस्वी बालक बनाने के लिये घृतयुक्त भात अथवा घृतयुक्त भात, शहद और दही खिलाया जावे।

हमारे विचार में चार तोला भर भात में चार माशे घी पकते समय डाल देना और पीछे १२ माशे मधु और १ माशा दही मिलालेना चाहिये। यह बात सदैव याद रखनी चाहिये कि घी और मधु समभाग में मिलने से विष होजाता है इसलिये घी बराबर मधु, तौल में न डाला जाय।

पाकविद्या

ऋषि, पाकविद्या के धनी थे। वह बच्चे के लिये भी जो भात पकाया जाता है उसको औषधि से बढ़कर गुणकारी समझते थे। जो जो सावधानी रसायन औषध के तैयार करने में करनी चाहिये वही मानो भात बनाने के लिए लिख रहे हैं। समय आगया है कि लोग बच्चों को भोजन देने और तत्सम्बन्धी सावधानी रखने की ज़रूरत को अनुभव करें।

चावल बनाते वा उसको शुद्ध करते समय पांच मन्त्र बोल लेवे। इनका अभिप्राय यह है कि थ्यूरी (सिद्धान्त) और प्रेक्टिस कर्त्तव्य की जहां एकता होसके वहां लोग 'थ्यूरी' को भूल न जावें। यह पांच मन्त्र सिद्धान्तरूप से दर्शा रहे हैं कि चावल शोधन करने वाला पूरी पूरी सावधानी से काम करे। आजकल जो काम करना हो उसको "टेबल" के रूप में लिखकर काम करने वाले कमरे में लटका छोड़ते हैं और कहा जाता है कि यह बड़ा भारी गुण प्रबन्धकर्त्ताओं का है कि क्या काम करना है उसको लेख द्वारा प्रत्येक आंख रखने वाला टेबल पर से पढ़ सकता है। पुराने समय में लिखने के स्थान में उच्चारण ही ठीक समझा जाता

था और कान रखने वाले उस समय पाठ से जान लेते थे कि अब क्या कर्म होने लगा है और करने वाले भी पूरे सावधान होजाते थे। आजकल यदि किसी बिसकुट बनानेवाले के कमरे में एक दीवार से चिपके हुए कागज़ पर यह लिखा हुआ हो बिसकुट बनाने से पहिले आटे को पूर्ण रीति से शोध लो तो लोग कहेंगे—अहो! कैसी सावधानी का उपदेश लटका रक्खा है! पर जब उनको कहा जावे कि चावल पकाने से पहिले अमुक पांच मन्त्र बनाने वाल बोल लेवें जिनमें भी सावधानी का उपदेश बनाने वालों तथा श्रवण करनेवालों के लिए है तो उसको पाकविद्या के नियम न कहते हुए कह उठेंगे कि "हरएक काम करने से पहिला मन्त्र पढ़ने की क्या ज़रूरत" इसके उत्तर में हम कहेंगे कि यदि लिख रखने की ज़रूरत है तो उच्चारण करने की विधि उससे उत्तम है, उक्त पांच मन्त्रों का अर्थ समझ कर पाठ करने वाले जानलेंगे कि कंकर, पत्थर, बाल, जन्तु, तृण आदि कोई भी हानिकारक पदार्थ अन्न में न रहजावे और वे स्मरण करलें कि शरीर की नाना शक्तियो, अंगों यथा—प्राण, अपान, चक्षु, शिर आदि अङ्गों की पुष्टि तथा यज्ञ के होम के लिये यह चावल बनते हैं। बना लेने पर परोसते समय वह फिर उक्त पांचो उद्देश्यों का विचार करके उचित रीति से युक्ति पूर्वक परोसे जो अन्न बच्चे ने खाना है वह तो पूर्णरूप से गलजाना चाहिये, ज़रा भी कच्चा रह गया तो उसके पेट में विकार करेगा।

भात की दो आहुतियां

सामान्य होम करने के पीछे पके हुए भात की दो आहुति इन दो मन्त्रों से देने का विधान है, उनकी व्याख्या इस प्रकार है। इन मन्त्रों में संस्कृत वाणी को प्रकाश की उपमा से बतलाया है कि जैसे प्रकाश की सहायता से मनुष्य यथार्थ दर्शन सहज से कर सकता है, उसी प्रकार संस्कृत शब्द, अर्थ का प्रकाश सहज से करते है। संस्कृत बोलने से भारी लाभ यह है कि इससे ज्ञान की वृद्धि सहज से होती है। कोई प्रश्न कर सकता है कि अन्नप्राशन—संस्कार के समय संस्कृत वाणी के महत्व दर्शाने की क्या ज़रूरत पड़ गई?

उसके उत्तर में हम कहेंगे कि ऋषियों की यह बड़ी भारी चितावनी, एक पन्थ दो काज के समान है, कि छः वा नौ मास के बच्चे को शुद्ध संस्कृत शब्द बोलने सिखाये जावें। सब जानते हैं कि छठे मास मे बच्चे कोई शब्द बोलने लग जाते हैं, पुराने समय में जब कि माता पिता संस्कृत बोलते थे तो बच्चे को शुद्ध संस्कृत क्यों न सिखाते होंगे? तीन मास का बच्चा आंख द्वारा ज्ञान प्राप्त करने लगता है। छः मास का बोलकर ज्ञान लेना चाहता है। इस समय उसको—

(१) अर्थबोधक खिलौने दिखा कर साथ ही शब्द बोल कर सुनाना चाहिये। (२) शब्द का शुद्ध उच्चारण ही सदैव सिखाया जावे। बच्चे के तोतले शब्द को अनुकरण करके वही तोतले शब्द कोई नहीं सिखावे। (३) बच्चे की अशुद्धि वा भूल पर कभी कोई ऐसी चेष्टा न करे जिससे उसका उत्साह भंग हो। सदैव याद रखना चाहिये कि "मनुष्य

भूल करके ही सीखता है" यह फ्रांस देश के तत्ववेत्ता प्रौडन* महोदय का वाक्य है। हमारी जनश्रुति है "गिरे बिना चलना नहीं आता"। दूसरे मन्त्र में बतलाया गया है कि:—

(क) अन्न दानशक्ति का उत्पादक है जब तक अन्न कोई भूखे लगने पर नहीं खाता तब तक उसको अनुभव नहीं होता कि निर्धन भूखे लोगों को भी इस के दान की जरूरत है।

(ख) विद्वान् भी ऋतु ऋतु में अन्न संग्रह कर लेने से दुष्काल आदि के भय से निवृत्त होते हैं वा वर्ष भर के लिये समर्थ हो जाते हैं।

(ग) जिन गृहस्थों को पेट भर अन्न खाने को मिलता है उनके वंश में ही वीर संतान होती है। अन्न के भूखे क्या वीर संतान उत्पन्न कर सकते हैं!

(घ) जो लोग अन्न के अध्यक्ष हैं उनको कोई भी दुःख देने वाला किसी दिशा में नहीं है ऐसा जानना चाहिये अर्थात् निर्भयता का कारण अन्न है।

आजकल केवल सोना चांदी से सन्दूक भर लेने का का नाम धनवान् होना समझते हैं। सोना आदि, अन्न प्राप्ति के साधनरूप हैं। सोने हीरे आदि से भी अमूल्य धन तो अन्न ही है।

अन्य चार आहुति

उसी भात में विशेष घृत डाल कर जो चार आहुतियें देने का विधान है उनकी व्याख्या करते हैं—

(१) प्राण वायु से अन्न का उपभोग करने का अभिप्राय यह है कि भूख लगने पर अन्न खाया जावे। (२) अपान वायु से गन्ध-द्रव्यों का अभिप्राय यह है कि अन्न से भिन्न सुगन्धित पदार्थ-जैसे जीरा, इलायची आदि खावे ताकि अपान वायु विकार न करे। (३) चक्षु से रूप आदि देखने का अभिप्राय यथायोग्य व्यवहार करने का है कि प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा ज्ञान की वृद्धि करते रहना चाहिये जिससे जहां अन्न से शारीरिक उन्नति हो वहां विद्यावृद्धि से आत्मिक उन्नति होती रहे। (४) श्रोत्रों से यश श्रवण करने का अभिप्राय यह है कि सदैव धर्माचरण किया जावे जो कि सर्व समाज का कल्याणकारी है और जिसके आचरण करने से ही यश सुनने का अवसर मिलता है। विद्या की उन्नति के साथ साथ धर्म की उन्नति करने का विधान इससे पाया जाता है। इसके पश्चात् सामान्यप्रकरण में बतलाये हुए बारह मन्त्रों से आहुति देने का विधान है फिर "ओं अन्नपते········" इस मन्त्र को पढ़के भात बालक के मुख में देने को कहा है।

(क) ऐसे खाने का इस मन्त्र में विधान है जो रोगोत्पादक न हो। सड़े, गले, दुर्गन्धियुक्त तथा बासी अन्न न खाये जावें। कृमि, कंकड़, बाल आदि से रहित अन्न उपयोग में लाया जावे। अन्नों के उत्तम मध्यम गुणों पर भी दृष्टि रक्खी जावे। (ख) भोजन के पदार्थ बल देने वाले हों जैसे चावल, दूध, घृत, दलिया उड़द, दही, छाछ इत्यादि।

† J. P. Prowdon.

(ग) अन्न का दान करने वाला सुखसामग्री से युक्त होता है। यह बात सत्य है क्योंकि जो अन्नदान से दूसरों के प्राण बचायेगा वह क्यों न सुख पायेगा? (घ) अन्नप्राप्ति के साधन भृत्य आदि मजदूर और बैल आदि पशु हैं; जो इन साधनों की रक्षा के लिए अन्न घास आदि का भण्डार रखते हैं वे पूर्ण सुख पाते हैं।

फिर "त्वमन्नपतिरन्नादो........" इत्यादि से शुभ आशीर्वाद दें।

इसमें दो बातें हैं एक तो यह कि बालक अन्न का स्वामी बने; दूसरे वह अन्न का भोगने वाला भी हो। एस धनी तो हमारे इस देश में अनेक हैं जिनके यहां कोठ अन्न से भरपूर रहते हैं, परन्तु जो सदा रुग्ण रहने के कारण अन्न का उपभोग नहीं कर सकते और ऐसे मनुष्य भी इस देश में बहुत हैं जो अन्न को भोगने की शक्ति रखते हैं परन्तु पेट भर अन्न दोनों समय कठिनता से ही पाते हैं वे कभी अन्न के पति नहीं बनते। जरूरत है कि प्रत्येक मनुष्य अन्नपति और अन्नाद बने जो इस आशीर्वाद द्वारा बतलाया गया है।

इत्यन्नप्राशनसंस्कारव्याख्या

ओ३म्

"संस्कारचन्द्रिका" से पुनर्मुद्रित वैदिक संस्कार माला-सं० ९

अथ कर्णवेधसंस्कार

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रणीत "संस्कारविधि" के कर्णवेध संस्कार की विस्तृत व्याख्या

★

-: रचयिता -

विद्वद्वर्य्य श्रीयुत (स्व.) पंडित भीमसेन शर्म्मा (आगरा निवासी)

तथा

राजमित्र राजरत्न श्रीयुत (स्व.) आत्माराम राधाकृष्ण (अमृतसरी)

-: रचयिता :-

सृष्टिविज्ञान दिग्विज्ञान, शरीरविज्ञान, आत्मस्थान विज्ञान, ब्रह्मयज्ञ, वैदिक विवाहादर्श, बलप्राप्ति, माण्डूक्योपनिषद्, तुलनात्मक धर्म विचार, गीतासार, ऋषि पूजाकी वैदिकविधि, सामान्य धर्म। महर्षि दयानन्द की जीवनी (उर्दु) तथा सत्यार्थ-प्रकाश के सर्वप्रथमउर्दु-गुरुमुखी अनुवादक इत्यादि इत्यादि।

★

: प्रकाशक :

जयदेव ब्रदर्स आत्माराम पथ बड़ोदा

अ. भ. पाळेकर द्वारा जागृति मुद्रणालय बड़ोदामें मुद्रित तथा
जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा द्वारा प्रकाशित

षष्ठसंस्करण } सृष्टि संवत् १९७,२९,४९०५१ / संवत् २००८ वि०, ई० सन् १९५१ { मूल्य ।≈)

ओ३म्   प्रकाशकीय वक्तव्य

प्रायः सभी यह मानते हैं कि आत्मा अमर है और आत्मा पर विजय पाना मनुष्य का श्रेष्ठतम कर्तव्य है। कठिनाइयों में सफलता दिलानेवाली आत्मा प्रतिकूलता पा बलवान् हो उठती है और उसे ईश्वर के दर्शन होते हैं। यही आत्मा और परमात्मा की एकता हमें विकास की ओर लेजाती है। आत्मा की संस्कारिता उस की शिक्षा-दीक्षा पर निर्भर है। जीवनकी उच्चतम शक्तियों को संस्कारी बनाने के लिए वेद ने जिन ऋचाओं द्वारा मार्ग दर्शन किया है उन के आधार पर **संस्कार चन्द्रिका** अस्तित्व में आई। भारत के निर्जीव हिन्दू समाज में जागृति की वीणाके तारों को महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने झंकृत किया और उसमें से निकले हुए स्वरों को पकड़ कर **महात्मा आत्मारामजी** (अमृतसरी) ने संगीत छेड़ा। जीवन के अनेक विध पहलुओं के विविध स्वरों में से निकले हुए संगीत की मधुर ध्वनि ने श्रोताओं के हृदय को मिठास से भर दिया। निर्जीव हृदय आशाजल से सिक्त हो लहलहाने के लिए व्याकुल हो उठे। महर्षि के इस सचे भक्तने जनताकी व्याकुलता मिटाने के लिए भक्तिभाव से वेदामृत की धारा बहाई। निष्काम कर्म के इस साधकने अपनी सारी शक्ति वैदिक संस्कृति और महर्षि के आदेश को विश्वव्यापी बनाने में लगादी। पाश्चात्य शिक्षा लेने पर भी आर्य संस्कृति और सभ्यता को अपनाया। आरंभ काल से ही समाज सुधार की भावना हृदय में अंकुरित हुई थी और वह पनपती ही गई वैदिक साहित्य को पढकर। व्यक्तिगत प्रतिभा ओजस्विनी बनी और एकनिष्ठा तथा परमार्थने इनको फिलोसोफर बनादिया। समयने इनको पंजाब से गुजरात में भेजदिया और इन का कार्य मौन रूप से बढता गया। जीवन के कार्यक्षेत्र में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जनता की अरुचि, अपमान और ईर्ष्या का सामना इन्हों ने उसी प्रकार किया जिस प्रकार एक सुमाता अपने कुपुत्र को सुधारने के लिए प्रयत्न करती है। धन के अभाव में आभूषणों को बेचा कार्यकर्त्ताओं के अभाव में अपनी संतानों को दिया और इन के अभावों में भाव बनकर प्रेरणादी इनको निर्मलमना धर्मपत्नीने। जीवन भर जिस व्यक्तिने सात्विक फलाहारी भोजन किया उस का देह और मन सात्विक क्यों न बनता और उस का प्रभाव संसर्ग में आनेवाली व्यक्तियों पर क्यों न पड़ता। पढना, मनन करना और लिखना प्रायः सभी ज्ञानी करते हैं परन्तु कार्य में लाना विरलेही करते हैं। इन्होंने जैसा कहा वैसा अंत तक किया, और उसी का परिणाम है कि आज हम उन की एक एक कृतियों में से प्रेरणा पाते हैं वही प्रेरणा जो व्यक्ति समाज और देश को उन्नति की ओर लेजाती है। उन की प्रेरणा का एक तत्व '**संस्कार चन्द्रिका**' को समयने अपनाया और आज उसी संस्कारदायिनी संस्कारचन्द्रिका का एक अंग आप के सामने है।

जिस पितामह की पवित्र छत्र छाया में पलकर जिन के अगाध वात्सल्य सागर में अवगाहन कर जीवन की संस्कारिता और पवित्रता के मर्म को समझा है उन्हीं प्रातः स्मरणीय पूज्य पितामह के चरणों में यह पुष्प समर्पित करती हुई परम देव परमात्मा से प्रार्थना करती हूं कि वह ऐसी शक्ति और बुद्धि प्रदान करे कि जिसके द्वारा हम मन, वचन और कर्म से पवित्र रहते हुए उन के अधूरे कार्य को पूरा कर सकें। अतएव आज पाठकों के सन्मुख संस्कार चन्द्रिका इस नए रूप में रख कर हम अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं। आशा है आर्य विद्वान् एवम् पाठक इस का स्वागत करेंगे और हमें सक्रिय रूप से इसके प्रचारमें योग देकर अनुगृहीत करेंगे। यह नवम **कर्णवेध संस्कार** सन १९२४ में छपी संस्कारचंद्रिका तथा संस्कार विधिके आधारसेही पुनः छपी है; तथा **कर्णवेध महिमा** जो १९२६ में पृथक् ट्रैक्टरूप छपा था वह भी इसी में संपूर्णतया लेलिया गया है।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा सं. २००८ }
आत्माराम पथ बडोदा. }

सरस्वतीकुमारी
बी. ए. बी. टी.

ओ३म्

आर्य समाजस्य प्रवर्तको



श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती

राजमित्र राजरत्न स्व० महात्मा आत्मारामजी (अमृतसरी



" संस्कारचन्द्रिका " के व्याख्याता

श्रीमती यशोदा देवीजी



कुलमाता " आर्यकन्या महाविद्यालय " बडोदा

ओ३म्

कर्णवेधसंस्कार

अथ कर्णवेधसंस्कारविधिः

जो दिन कर्णवेध का ठहराया हो उसी दिन बालक को प्रातःकाल शुद्ध जल से स्नान और वस्त्रालङ्कार धारण कराके बालक की माता को यज्ञशाला में लावे और सब सामान्यविधि करे और उस बालक के आगे कुछ खाने का पदार्थ वा खिलौना धरके:—

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ यजु अ० २५। मं० २१॥*

अर्थः—हे संग करने योग्य विद्वान् लोगो! हम कानों से अनुकूल ही सुनें, नेत्रों से अच्छी वस्तुओं को देखें, दृढ़ अंगों से आपकी स्तुति करने वाले हम लोग शरीर से या भार्यादि के साथ विद्वानों के लिये कल्याणकारी जो आयु है उसको अच्छे प्रकार प्राप्त हों।

इस मन्त्र को पढ़के चरक, सुश्रुत वैद्यक ग्रन्थों के जानने वाले सद्वैद्य के हाथ से कर्णवेध करावें कि जो नाडी आदि को बचा के वेध कर सके। पूर्वोक्त मन्त्र से दक्षिण कान और:-

ओं वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना। योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन् ज्या इयꣳ समने पारयन्ती॥ यजु० अ० २९। मं० ४०॥§

अर्थ:—वीर पुरुषो! (अधिधन्वन्, वितता) धनुष् में फैली हुई (समने) संग्राम में (पारयन्ती) पार पहुंचाने वाली अर्थात् विजय देने वाली (इयं, ज्या) यह धनुष् की प्रत्यञ्चा डोरी (वक्ष्यन्ती इव इत्) कुछ कहती हुई जैसे हो वैसे (कर्णम्, अगनीगन्ति) धनुर्धारी के कर्णप्रदेश को अतिशय करके प्राप्त होती है और (प्रियम्, सखायम्) प्रिय पति को (परिषस्वजाना) आलिंगन करने वाली (योषा, इव) स्त्री के तुल्य (शिंक्ते) बाण के आलिंगन से कुछ अव्यक्त शब्द करती है उसे तुम समझो; अर्थात् वीर पुरुषों को चाहिये कि कवच और धनुष् के तुल्य धनुष् की डोरी से भी अपनी प्रियपत्नी के तुल्य स्नेह रक्खें क्योंकि वह विजय दिलानेवाली और रोगों से मुक्त करनेवाली है। इस मन्त्र को पढ़के दूसरे वामकर्ण का वेध करे तत्पश्चात् वही वैद्य उन छिद्रों में शलाका रक्खे कि जिससे छिद्र पूरा† न जावें और ऐसी ओषधि उस पर लगावे जिससे कान पकें नहीं और शीघ्र अच्छे होजावें।

इति कर्णवेधसंस्कारविधिः

---

* ऋ० मं० १ सू. ८९। ८॥

§ ऋ० मं० ६ सू. ७५। ३॥

† 'पूर' शब्द गुजराती का है जिसका अर्थ 'भरना' होता है। महर्षि की मातृभाषा के शब्द इस प्रकार भिन्न भिन्न स्थलों पर अनायास आजाते हैं।

कर्णवेधसंस्कार

(प्रमाण भाग)

अत्र प्रमाणम्। कर्णवेधो वर्षे तृतीये पंचमे वा ॥ १ ॥ कात्यायनगृह्यसूत्र

इस वचन से बालक के कर्णवेध का समय जन्म से तीसरे वर्ष वा पांचवें वर्ष करना उचित है। आश्वलायन गृह्यसूत्र, मानव गृह्यसूत्र आपस्तम्बीय गृह्यसूत्र, और गोभिल गृह्यसूत्र, इन ग्रन्थों में कर्णवेधसंस्कार का उल्लेख नहीं मिलता। कात्यायन गृह्यसूत्र में इसका उल्लेख है। पण्डित जेष्ठाराम मुकुन्दजी बम्बई वालों से हमने जो कात्यायन गृ० सू० की पुस्तक मंगवाई तो उसको पारस्कर गृह्यसूत्र के अन्तर्गत छपाहुआ पाया, कात्यायन सूत्रों को उन्होंने "......" इस चिह्न के अन्दर छापा है उक्त पुस्तक के ग्यारहवें पत्र दूसरे पृष्ठ और चौथी पांक्ति से मुण्डन के पीछे कर्णवेध का केवल इतना ही उल्लेख है जितना हम नीचे देते हैं—

अथ कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा। पुष्येन्दुचित्राहरिरेवतीषु पूर्वाह्णे कुमारस्य मधुरं दत्वा प्राङ्मुखायोपविष्टाय दक्षिण कर्णमभिमन्त्रयते भद्रं कर्णेभिरिति सव्यं वक्ष्यन्ती वेदिति चाथभिंद्यात्ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ पारस्कर परिशिष्ट कात्यायन गृह्य सूत्र कर्णवेध सूत्र १, २ ॥

अर्थः—कर्णवेध तीसरे वा पांचवें वर्ष में करना और जब चांद, पुष्य, चित्रा, हरि और रेवती इनमें से किसी एक नक्षत्र से युक्त हो* प्रातःकाल संस्कार करे, बालक को मिठाई देकर पूर्व को मुख करके बिठावे और दाहिने कान में "भद्रं कर्णेभिः...." यह मन्त्र सुनावे और सव्य अर्थात् बायें कान में "वक्ष्यन्ती" यह मन्त्र बोले तत्पश्चात् कानों के वेधन की क्रिया करे, यथाशक्ति ब्राह्मणों का भोजन से सत्कार करे ॥

कात्यायन सूत्र के अतिरिक्त इस संस्कार का उल्लेख सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय सोलहवें के आरम्भ में इस प्रकार है—

रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येत्। षष्ठे मासि सप्तमे वा शुक्लपक्षे तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रेषु कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनं धात्र्यङ्के कुमारमुपवेश्य बालक्रीडनकैः प्रलोभ्याभिसांत्वयन् भिषग्वामहस्तेनाकृष्य कर्णं दैवकृते छिद्रे चादित्यकरावभासिते शनैः शनैर्ऋजु विद्धयेत् प्रतनुकं सूच्या बहुलमारया पूर्व दक्षिणं कुमारस्य वामं कन्यायास्ततः पिचुवर्त्तिं प्रवेश्य सम्यग् विद्धमामतैलेन परिषेचयेत् ॥ १ ॥

अर्थः—रोग से रक्षा के लिये और आभूषण पहरने के निमित्त बालक के दोनों कान बींधने चाहियें। छठे या सातवें महीने में शुक्लपक्ष तथा अनुकूल तिथि (वार) नक्षत्र, करण

---

* क्योंकि ऐसा दिन आंधी मेघादि से प्रायः रहित होता है।

मुहूर्त में मंगलाचारपूर्वक स्वस्तिवाचन कर धाय या माता की गोद में बालक को बिठाकर खिलौने मिठाई आदि से बहला कर प्रेम करके वैद्य अपने बायें हाथ से कान को खींच कर देखे, जहां सूर्य की किरण चमकें वहां देवकृत छिद्र में धीरे धीरे सीधा बींधे। कोमल कान हो तो सुई से और कड़ा मोटा हो तो आरा (आर) से बेधन करे। पुत्र का पहिले दाहिना और कन्या का बायां बींधे और रुई का डोरा डाल कर ठीक बींधे हुए पर ठण्डा तैल चुपड़ दे।

कर्णवेधसंस्कारसंबन्धी व्याख्याभाग

मुख्य उद्देश्य रोग-निवृत्ति ही है।

पुराने आर्य्य वैद्यों ने यह संस्कार रोग के बीज को बाल्यपन में दग्ध करने के लिये निकाला था। भूषण धारण करना इसका मुख्य उद्देश नहीं जैसा कि सुश्रुत के ऊपर के प्रमाण से ही सिद्ध हो रहा है प्रत्युत रोगनिवृत्ति ही है। अब रहा यह प्रश्न कि वह कौन सा ऐसा भयङ्कर रोग है जिसके शमनार्थ ऋषियों ने कर्णवेध संस्कार चलाया? इसका उत्तर सुश्रुतसंहिता चिकित्सा स्थान अध्याय १९ के पाठ से विदित होता है। इस अध्याय में बतलाया गया है कि सात प्रकार के अंडवृद्धि के रोग होते हैं उनमें से छः प्रकार के रोगों में तो केवल अण्डवृद्धि ही होती है और सातवे प्रकार के रोग में अंडवृद्धि के साथ अन्त्रवृद्धि के रोग में यह बातें त्याज्य हैं। घोड़े आदि की पीठ की सवारी, व्यायाम, मैथुन, वेगो का रोकना, बहुत सा फिरना, अतिलंघन (उपवास) करना और गरिष्ठ भोजन।

(१) वातज अंडवृद्धि, (२) पित्तज अंडवृद्धि, (३) रक्तज अण्डवृद्धि, (४) श्लेष्मज अण्डवृद्धि, (५) मेदोज अण्डवृद्धि, (६) मूत्रज अण्डवृद्धि इन छः प्रकार की अण्डवृद्धि की दशाइयां वर्णन करने के पश्चात् सातवीं अन्त्रज अण्डवृद्धि का वर्णन किया है और उसको निर्मूल करने के लिये लिखा है कि-"जो अन्त्रवृद्धि अण्डकोश में नहीं पहुंची हो उसमे वातवृद्धि के समान कर्म करना हित है और जो वक्षण (नली) में प्राप्त हुई अन्त्रवृद्धि हो उसे आधे चन्द्रमा के से मुखवाली शलाका से दग्ध करे।

सब मार्ग रोकने के लिये जो अण्डकोश में उतरी हुई आंत हैं वे तो त्यागने ही के योग्य हैं, परन्तु इसमें अङ्गविपर्यय से अंगूठे के मध्य में भेदन करके दग्ध करना उचित है (अर्थात् बाईं ओर की अन्त्र बढ़ी हो तो दाहिने अंगूठे के मध्य और दाहिनी तरफ़ आंतें हों तो बायें अगूठे की त्वचा को भेदन करके दग्ध करना चाहिये)। इससे आगे चल कर एक इलाज यह भी बतलाया है कि कर्णवेधन किया जावे। तथाहि—

शंखोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीम्।
व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदंत्रवृद्धिनिवृत्तये ॥ (सुश्रुत चिकित्सितस्थान अ० १९, २१)

अर्थ:—शंख (कनपटी) से ऊपर कान के अन्त में सीवन (जोड़) कर अङ्ग के व्यत्यय से नस को बींधने से अंत्रवृद्धि निवृत्त होजाती है (दाहिनी तरफ़ वृद्धि हो तो बांयें कान की और बांईं तरफ़ की अण्डवृद्धि हो तो दाहिने कान की नस बींधे) ॥२१॥

आंत बढ़ जाने के भावी रोग को निवारण करने के लिये बच्चे के कान पुराने आर्य्य बींधते थे, दोनों तरफ के बींधने से दोनों ओर आंत न बढ़े यह उनका उद्देश्य था। कर्णवेध-संस्कार आंतवृद्धि के भावी रोग को शमन करने का एक उपाय है। यह रोग जिन कारणों से होता है वह कारण ऊपर सुश्रत के आशय से हम दर्शा चुके हैं। वे सब कारण दो भागों में हम बांट सकते हैं।

(१) शारीरिक निर्बलता वा दुर्बलता, जो मिथ्या आहार विहार से होती है।

(२) बलिष्ठ होते हुए मैथुनासक्त होकर निर्बल होजाना।

इस संस्कार में जो दो मंत्र बच्चे के कान में पढ़े जाते हैं वे इस रोग के दोनों कारणों के प्रतिबंधक हैं। " भद्रं कर्णेभिः " यह मन्त्र बतलाता है कि (१) विषयासक्ति से बचो, अर्थात् कानों से भला सुनो, आंखों से भला देखो। जिसके कान और आंखें वश में हैं वह विषयासक्त नहीं हो सकता। (२) फिर यह मन्त्र बतलाता है कि निर्बलता तथा दुर्बलता से बचो और शरीर तथा अङ्गों को उचित आहार विहार से स्थिर (बलवान्) बनाये रक्खो। शुभकर्म करते रहो ताकि विषयासक्ति और दुर्बलता कभी ठहरने न पावे।

" वक्ष्यन्तीवेदागनीगन्ति कर्णं " यह दूसरा मन्त्र बतला रहा है कि बड़े बड़े वीर पुरुष बल रखते हुए जब मैथुनासक्त हो जाते हैं तब रोग उन बलिष्ठों को भी दबा देते हैं। बलिष्ठ होकर जो जितेन्द्रिय रहेगा वह ही अण्डवृद्धि के एक प्रबल कारण को नष्ट कर सकेगा, क्योंकि सुश्रुत में अतिमैथुन भी इसका एक कारण बतलाया गया है। इसलिये इस दूसरे मन्त्र का भाव यह है कि वीर पुरुषों को अपने शस्त्र अस्त्रों के अभ्यास करते रहना चाहिये जिस प्रकार वह अपने स्त्री से प्रेम करते हैं उसी प्रकार वह शस्त्र अस्त्रों के अभ्यास से भी प्रेम रक्खें। इस के दो फल होंगे। प्रथम तो वे विषयासक्त न होने पायेंगे क्योंकि अस्त्र शस्त्र के अभ्यासी वीर्य्य-निग्रह के विना सिद्धि को प्राप्त नहीं होते और दूसरे अंत्रवृद्धि अंडवृद्धि के रोग, जिनकी निवृत्तिके लिये यह संस्कार है, नहीं होंगे, केवल कर्णवेध से अंत्रवृद्धि का भावी रोग सर्वथा निर्मूल हो जावे यह कोई न समझ लेवे। कर्णवेध तब ही पूर्णरूप से सफल हो सकता है जब उसके साथ शारीरिक बल स्थिर रखने के लिये विषयासक्ति आदि अनके दोषों का त्याग भी होगा। इसी बात को अङ्कित करने के लिये यह दोनों मन्त्र पढ़े जाते हैं।

व्याख्याः—इस मन्त्र का एक भावार्थ तो स्पष्ट ही है दूसरा उपलक्षण से जो लेना चाहिये वह यह है कि व्यायाम या श्रम मर्य्यादा से प्रत्येक पुरुष स्त्री को नित्य करते रहना चाहिये। जो मर्य्यादा से श्रम नहीं करेंगे, वे बलवान् होने पर भी मैथुनासक्त हो जावेंगे। जितेन्द्रियपन के बढ़ाने का एक प्रबल साधन मर्यादापूर्वक श्रम है। स्कूल में प्रत्येक बालक को कवायद कराई जाती है। बड़ी अवस्था में वह इससे यह भाव लेते हैं कि हमें मर्य्यादा से श्रम करना चाहिये। यह बात याद रखनी चाहिये कि मनुष्य मैथुनासक्त न भी हो तो भी उसको अंत्रवृद्धि तथा अंडवृद्धि रोग हो सकता है, क्यों इन रोगों के कारण एक नहीं किन्तु अनेक हैं जैसे कि पूर्व सूक्ष्मरूप से आ चुके हैं तथापि कुछ विस्तार से यहां पर भी लिखते हैं—

१ घोड़े की अति सवारी। २ शक्ति से बढ़ कर वा थक जाने पर भी व्यायाम करना। ३ मर्यादारहित मैथुन। ४ मल, मूत्र, खांसी, छींक आदि स्वाभाविक वेगों को रोकना। ५ बहुत बैठे रहना। ६ बहुत चलना फिरना। ७ बहुत देर तक भूखे रहना। ८ ऐसे भोजन खाना जो गुरु हों और बहुत देर में पचें।

सुश्रुत के मतानुसार छठे वा सातवें मास में, कात्यायनमुनि के मतानुसार तीसरे वा पांचवें वर्ष यह संस्कार करना चाहिये। छोटे बच्चे को जो छः वा सात मास का है कान बींधने में अधिक सुविधा होती है और इसीलिये भारतवर्ष में स्त्रियां प्रायः छः वा सात मास के बच्चों के कान बिंधा लेती हैं। यदि इस समय वह संस्कार न होसके तो फिर तीसरे वर्ष और यदि तब भी न हो सके तो फिर पांचवें वर्ष तक करना ही चाहिये, इसके पीछे कान मोटा होता चला जायगा। यद्यपि संस्कारविधि में सद्वैद्य से कर्णवेधन कराना लिखा है और यही सुश्रुत में लिखा है, परंतु जबतक ग्राम ग्राम में सद्वैद्य नहीं होंगे तबतक तो उन लोगों से ही यह बींधन कर्म कराना चाहिये जो इस समय बींधन कर्म में अनपढ होते हुए भी कम्पौन्डरों की न्याईं दक्ष है। केवल पुस्तक पढा हुआ वैद्य जो शस्त्रक्रिया में दक्ष नहीं वह उत्तमता से बींधन कर्म नहीं कर सकता।

कुछ साक्षियें

१—बनारस से श्री पण्डित शिवदत्तजी काव्यतीर्थ (अमृतसरी) हमारे एक पत्र के उत्तर में लिखते हैं कि काशी के सुप्रसिद्ध वैद्य कविराज उमाचरणजी अंडकोश वृद्धि तथा अंत्र-वृद्धि इन रोगों का दूर करने वाला कर्णवेधसंस्कार बतलाते हैं और यह भी कहते हैं कि मैंने स्वयं एक रोगी का, जिसके अण्डकोश में पानी आगया था कर्णवेधन किया था जिससे उसको आराम होगया था। सुना जाता है कि अमृतसर में भी एक वृद्धा थी जो कर्णवेधन करके छिद्र में ५ कौडी पिरो दिया करती थी और जिस किसी का नल उतरा हुआ होता था चढ़ जाता था। बुकरातकी हिकमत की पुस्तक में कहते हैं कि लिखा हुआ है कि अगर नल में पानी आ जावे तो कर्णवेधन करावे।

२—लाहौर के श्रीयुत वैद्य काशीरामजी कविराज का कथन है कि वज़ीराबाद के निकट एक प्रसिद्ध फकीर के पास लोग बच्चों को कर्णवेध कराने के लिये ले जाया करते थे और यह बच्चे पसली रोग से भी बच जाते थे।

३—सन् १९१२ में जब हम राजपूताना के कोटा नगर के आर्यसमाज के उत्सव पर गये तो श्रीयुत पण्डित बालकृष्णजी शास्त्री मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल देवलाली (बम्बई प्रान्त) के सन्मुख एक प्रसिद्ध यूनानी हकीम साहब ने कहा था, यदि एक वर्ष के अन्दर यह कर्णवेध किया जावे तो अंडकोष के रोग, नामर्दी, बांझपन तथा बच्चों के पसली रोग तक दूर हो सकते हैं।

४—बड़ौदा राज्य के विसनगर ग्राम में हमें एक वैद्यजी ने बतलाया कि उनके वृद्ध पिता अंड कोश-वृद्धि के रोग में कर्णवेधन किया करते थे।

५—नगीना जि. बिजनौर आर्यसमाज के प्रधान वैद्यरत्न पण्डित हरिशंकरजी का कथन है कि कर्णेन्द्रिय का सम्बन्ध वीर्यवाहिनी नाडियों से होने के कारण अण्डवृद्धि के अतिरिक्त पुंसत्व नष्ट करने वाले रोगों से भी यह संस्कार रक्षा करता है।

६-वेदप्रकाश में जो मेरठ से स्वर्गस्थ श्रीयुत पण्डित तुलसीरामजी स्वामी निकालते थे, कुछ वर्ष हुए " ग्लोब " नामी एक अंग्रेजी मासिकपत्र के आधार पर लिखा गया था कि भूगोल की सर्व जातियों में कर्णवेध का प्रचार रह चुका है।

नासिका वेधन का विधान कहीं नहीं है

आजकल भारतवर्ष में सर्व स्त्रियों में नाक में एक छिद्र करने की प्रथा पाई जाती है यदि किसी रोग निवृत्ति के लिये वह प्रथा होती तो दो छिद्र बींधे हुए प्रायः दृष्टिगत होते, एक छिद्र का बींधना ही दर्शा रहा है कि वह केवल श्रृङ्गार मात्रार्थ प्रथा है। कात्यायन गृह्य-सूत्र, सुश्रुत अथवा और किसी सूत्र ग्रन्थ में नासिका के वेधन का उल्लेख नहीं है इसलिये यह प्रथा बंद होनी चाहिये। हर्ष का विषय है कि इस समय विदुषी स्त्रियां अपनी पुत्रियों की नासिका के वेधन की प्रथा को रोक रही हैं और कन्याओं के जो कानों में अनेक छिद्र बींधने की प्रथा है वह भी बन्द होनी चाहिये ; केवल एक कान में एक छिद्र करना चाहिये।

स्त्रियां प्रायः एक ही नाक बींधती हैं पर लड़कों के नाक नहीं बींधे जाते। यदि नाक बींधने से लाभ होता तो वे लड़के क्यों इससे वर्जित रहते। कोई कोई लड़कों के नाक भी बींध देते हैं पर वह श्रृङ्गार समझ कर। इसलिये मिथ्या श्रृङ्गार की यह कुप्रथा बंद होनी चाहिये।

केवल सुश्रुत के बतलाये हुये दोनों कानों के दोनों दैवछिद्र ही बींधने चाहियें। संस्कारभास्कर नामक जो संस्कारों की पद्धति का एक नूतन ग्रन्थ है उसके पृष्ठ १३६ तथा १३७ पर जो कर्णवेधसंस्कार का विषय है उस में भी कहीं पर नासिका-वेधन का विधान नहीं पाया जाता। इसलिये नासिका-बींधन में सौभाग्य मानना मिथ्या कल्पना है।

अशुद्धि का सुधार

१—संस्कारविधि में जहां पर इस संस्कार का वर्णन है, वहां भाषा-लेख में कर्ण के साथ नासिका शब्द भी तीन स्थलों पर पाया जाता है जिसको उड़ा देने की ज़रूरत है। जो शब्द संस्कृत मे संस्कारविधि मे प्रमाणरूप से लिखे हैं वे यह हैं—

" कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा " इनमें कहीं पर भी नासिका शब्द नहीं है इसलिये भाषा की अशुद्धि, शोधक का दृष्टिदोष ही समझना चाहिये।

२—"वक्ष्यन्ती" इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध अशुद्ध छपगया है शुद्ध इस प्रकार है—
" योषेव शिङ्क्ते वितताधिधन्वन् ज्याऽइयं समने पारयन्ती "। कोई प्रश्न कर सकता है कि यूरोप के तो किसी डाक्टर ने अभी तक स्वीकार नहीं किया कि कर्णवेध अंत्रवृद्धि रोग की निवृत्ति का एक प्रबल उपाय है।

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि सुश्रुत से विद्याग्रन्थ में जो गुण बतलाए गये हैं धीरे धीरे उन्नति करते हुए यूरोप के डाक्टर समझेंगे। भारतवर्ष देश में अनेक नामी वैद्य अन्त्र-वृद्धि आदि रोगों में उसका अनुभव करते आये हैं और अब भी कर रहे हैं। उनके अनुभवों से कर्णवेध के लाभ वास्तव में वही सिद्ध हुए हैं जो आयुर्वेद में हैं। हमारा आयुर्वेद इस समय में भी यूरोप के आयुर्वेद से कई दर्जे बढ़कर है। जो सूक्ष्म सिद्धान्त हमारे आयुर्वेद में हैं उनकी ओर दिनों दिन पश्चिमी विद्वान् आरहे हैं और अन्त को आवेंगे। सदैव सत्य की जय होती है और होगी।

कर्णवेध महिमा*

इस समय विद्वान् उदार हिंदु जगत् बाल विवाह, बेजोड विवाह, भारी दहेज आदि अनेक सामाजिक भयंकर कुरीतियां दूर कर के उनकी जगह उत्तम षोडश संस्कारों के प्रचार द्वारा समाज तथा गृहसुधार के परम उपयोगी काम में लगा हुआ है। पर यह Social Reform (सामाजिक सुधार) रूपी जागृति तथा स्वदेशी वस्त्र प्रचार का भारी व्रत जिस युग प्रवर्तक पुस्तक ने ५० वर्ष से भारत में फैलाया था, उसका नाम संस्कारविधि है इसके रचने वाले ऋषि दयानन्दजी हैं।

इस समग्र गृह उपयोगी Code of Social Reform (सामाजिक सुधारक विधि) की महिमा हम अपने भाष्यरूपी ग्रन्थ संस्कारचंद्रिका में बहुत कुछ दर्शा चुके हैं।

कर्ण वेध संस्कार पर आक्षेप करने वाले पूर्वपक्षी विलायती फेशन (विदेशीय रूढी) की सब बातों को विना तर्क धारणकरने को तैयार हैं पर कर्णवेध उक्त फेशन (रूढी) के अन्दर नहीं इस लिए इस पर आक्षेप करने की चिन्ता में रहते हैं। एक दृष्टांत देकर हम इस बातको बतावेंगे। एक भारतीय ऐसा है कि वह सदैव कुनेनकी जगह कोई एक निम्नलिखित आयुर्वेदिक दवाईयों में से उपयोग करके चंगा होजाता है:—

(१) सुदर्शन चूर्ण वा (२) पंच तिक्त (३) चरैता (४) गिलोका सत तथा त्रिफला। पर एक और भारतीय वैदिक धर्मी सज्जन ऐसा है जो विदेशीय कुनेन का भक्त है। वह सुदर्शन चूर्ण गिलोय आदि का स्वयं अनुभव नहीं करेगा जो वैद्य वा रोगी करते हैं उनका उपहास्य करता है केवल इस लिए कि किसी अंग्रेज ने सुदर्शन चूर्ण को Certificate (प्रमाण पत्र) नहीं दिया। जब कोई अंग्रेज लिखेगा कि उक्त सुदर्शन कुनेन से भी १० गुना बढ कर है तब यह विलायती रूढीभक्त मानेगा। इस लिए इस लेख में हम किसी भी अंग्रेज का प्रमाण नहीं दे सके इस लिए वादी की तुष्टि हमारे इस लेखसे नहीं होगी पर जो पाठक सज्जन अंग्रेजी के विद्वान् होने पर भी अपने निज तर्क से काम लेकर अपने देशके वैद्यों के अनुभवों को Old fools (पुराने मूर्खों) की बातें कहने को तैयार नहीं वह हम से सहमत हो सकेंगे इस दृढ आशा से यह लेख लिखा गया है। हमारे विचार में यदि अंग्रेज डाक्टर कर्णवेध का प्रयोग वा परीक्षण करें तो बहुत संभव है कि इनको आये दिन वह भयंकर चीरफाड अंग्रजी प्रजाकी इंगलैंड में आंतों संबंधी न करनी पडे जो इस वक्त वह विवश कर रहे हैं। यहीं नहीं पर समग्र युरोप तथा अमेरिका में भी उनकी आंत की शल्यक्रिया operation

---

*कुछ वर्षों से अनेक वैदिक धर्मी भारतीय अंग्रेजी फैशन (रूढी) के भक्त सज्जन पुरुषों तथा देवियों ने संस्कारविधि अन्तर्गत कर्णवेध पर लेखी शंकाएं वा पूर्व पक्ष किए थे। उनके उत्तरपक्ष में यह जो कर्णवेधमहिमा सन १९२९ में अलग पुस्तकाकार छपी थी जो अब कर्णवेध संस्कार का ही अंश होने से इस में अंतर्गत करदिया है। —प्रकाशक

नित्य प्रति अन्य शल्यक्रियाओं (Surgical operations) की अपेक्षा अधिक करने पडते हैं। यहां तक भी पढ़ने में आया है कि कई डाक्टर पश्चिम जगत् के आजकल यह घोषणा कर रहे हैं कि एक वर्ष के बालक की उतर जानेवाली आंत की शल्यक्रिया जरुर की जावे। अमृतसर समाज के कर्मवीर सभ्य श्रीयुत लाला ईश्वरदासजी भाटिया शालमरचैंट का दृढ व्रती पुत्र सुखदेव जो मैक्सबरो (England) इंग्लैंड के मैडिकल कोलेज में उच्चतम श्रेणी में कुछ समय पढ़ा और जो अपने पवित्र आर्य जीवन के लिए यहांतक सदाचारी है कि चाय तक गत तीन वर्ष में नहीं पी वह सदैव देशी दातन करता और मांस शराब अंडा सिगार आदि को छूता तक नहीं, उस के जो पत्र हमारे मित्र लाला ईश्वरदास को आते हैं, उनके आधार पर उक्त लालाजी हम को कभी कभी लिखा करते थे। अतः इस स्थल पर अमृतसर से ता. २०-३-२९ के आए हुए पत्र के कुछ शब्द नीचे उद्धृत करते हैं जो प्रसंग वशात् है।

" बहुत दिन हुए तो सुखदेवजी ने विलायत से लिखा था कि यहां इग्लैंड में दो भारी रोग प्रायः अंग्रेजों को होते हैं एक तो पेट की आंत का, दूसरा दांत का हम को सदैव अंग्रेजों के पेटों का उक्त रोग के कारण ओपरेशन (चीरफाड) करना पडता है। यहां के लोग शराब बहुत पीते और मांस बहुत खाते हैं और टट्टी कमोड पर करते हैं जिस से भारी जोर आंतों पर पड़ता है। इस लिए तीन मुख्य कारणों से इन को आंतों के भयंकर रोग होते हैं। नाच (Ball) आदि में जो भरेपेट अधिक नाचते हैं वह भी उक्त रोग के शिकार होजाते हैं। यहां प्रायः सब पुरुषों तथा देवियों के दांत बहुत मैले तथा रोग युक्त रहते हैं। जिस घर में मैं रहता हूं उस घर की पूज्यमाता तथा उन के पूज्यपति मेरे दृढ शुद्ध तथा रोग रहित दांतों का देखकर चकित होगए हैं। अन्त को एक दिन दोनों ने मुझ से अपने सफेद, दृढ तथा रोग रहित दांतों का कारण पूछा। मैंने उत्तर में कहा कि खाना खाने वा दूध पीने के पीछे मैं पानी के ७ कुल्ले सदैव करता हूं और प्रातः स्नान से पूर्व हिंदुस्तान से मंगवाई दातुन को खूब चबाचबाकर दांत तथा जबान आदि साफ किया करता हूं। मैंने ३ वर्ष में एक दिन भी आप के Tooth brush (टूथब्रश) वा किसी टूथ पौडर Tooth powder को कभी छुआ तक नहीं। मैंने जन्म से लेकर मांस, शराब, सिगार व तंबाकू तथा चाय का सेवन आजतक नहीं किया। सिनेमा और थिएटर का मुझे व्यसन नहीं निद्राकी हानि कर के पाचन क्रिया को रोक देते हैं। हिंद से आई हुई दातुन Stickbrushes यदि कभी सूख कर कडी hard हो जावें तो रात को पानी में भिगो देता हूं ताकि चबाने में सुविधा रहे।'

जिस प्रकार अब अमेरिका के प्रथम कोटिके डाक्टर मैकफैडन आदि आर्य वा हिंदु दिनचर्या के अनेक नियमों तथा आर्य आहार विहार तथा जो गो दूध के भक्त बनते चले जा रहे हैं संभव है कि किसी अमेरिका जापान के डाक्टर का ध्यान कभी कर्णवेध की तरफ चला जावे और वह जो रातदिन आंतों संबंधी Operations (शल्यक्रिया) अपने यजमानों की करते हैं उनकी जगह इसको स्थान दें।

मुझसे वे लोग जो युरोप की संस्कृति तथा रुढियों (fashions) के अन्ध भक्त नहीं वे कर्णवेध संस्कार आदि क्रिया को इस लिए त्याग नहीं सकते। युरोप के पंडित वा डाक्टर विद्वान् हैं पर योगी नहीं। हमारे भारतीय ऋषि जैसा कि माननीय भारतभूषण श्रीबोस जी का कथन है "परम विद्वान्, परम सदाचारी और परम योगी थे। जहां उनकी शांत योग दृष्टि (Intuition) पहुंचती थी वहां युरोपके विद्वानों के सूक्ष्म यंत्र कभी नहीं पहुंच सकते।

इन्हीं योगी भारतीय ऋषियों ने जो विद्या तत्व खोज निकाले वह तीन काल में सत्यज्ञान के रूपमें रहने से सनातन आर्यधर्म के नाम से प्रसिद्ध हैं!" देखो बोसजी के भाषण जो दारजीलिंग में दिए गए।

जिस समय हमने सृष्टिविज्ञान पुस्तक लिखकर डारविन मत के क्रूर वाद का खंडन किया था उस समय हम को महर्षि गौतम, महर्षि दयानन्द, महामुनि पं. गुरुदत्त इन तीन पुरुषों के वचनों का आधार था और यद्यपि Modern Review (मौडर्नरिव्यू) के नामी सत्यप्रिय संपादकने इस हमारे ग्रन्थ की प्रथम कोटि की उत्तम समालोचना कर के हमें भारी उत्साहित किया था तथापि आज वह शुभ दिन है कि अब विज्ञानाचार्य श्री डाक्टर सर बोसजी डारविन मत रूपी लाठी भैंस की नीति का भारी खंडन कर रहे है और दो वर्ष हुए तो उनका भाषण स्वयं गवरमेंट के University Convocation के समय यू. पी. के एक नामी नगर मे हुआ। इन बातों से यह सिद्ध हुआ कि भारतीय योगी वैदिक ऋषियों के सिद्धान्त तथा संस्कारों की तरफ युरोप के विद्वान् तथा उन में मान पाये हुए बोस से विज्ञानी अन्तको पूर्ण रूप से आवेंगे।

एक पूर्वपक्षी का प्रश्न

मुंडन संस्कार में बालों को कुशा से क्यों बांधा जाता है ? (उत्तर पक्षी) आप मृतक संस्कार के मूल संस्कृत लेख में जो संस्कारविधि में ऋषिदयानन्दजीने दिया है उस में कुशा घास को मुरदे के साथ जलाने का विधान सूत्र ग्रन्थ के आधार से पावेंगे संस्कारचंद्रिका मे हमने आयुर्वेद के प्रमाण से बतलाया है कि यह कुशाघास विष नाशक अर्थात् Disinfectant है। इसी लिए मुरदे के साथ इस के जलाने का विधान सार्थक है।

मुंडन क्रिया में बालों के दो भाग हैं एक लंबे दूसरे छोटे। लंबे बालों को पहिले से ही सावधानी के तौर पर इस लिए जरूरी है कि जब सब बाल जमीन में दबानें लगें तो कुशा जरुर उनके साथ विष नाशक पदार्थ के रूप मे दबाई जावे ताकि बालों के Disinfectant लिए मुरदे के साथ इस के जलाने का विधान सार्थक है।

मुंडन क्रिया में बालों के दो भाग हैं एक लंबे दूसरे छोटे। लंबे बालों को पहिले से ही सावधानी के तौर पर इस लिए बांधना जरूरी है कि जब सब बाल जमीन में दबानें लगें तो कुशा जरूर उनके साथ विष नाशक पदार्थ के रूप मे दबाई जावे ताकि बालों के Decompose (अणुरूप होने) के समय दुष्ट रोग वर्धक दृश्य तथा अदृश्य जन्तु (Germs) पृथिवी

में अधिक पैदा न हों। कपूर आदि विष नाशक होनेपर स्वयं शीघ्र उडजाते वा अगुरूपी हो जाते हैं। नीम के पत्तों से भी बढकर यह विचित्र गुण कुशा में है कि बहुत कालतक आप बनी रहती है। कुशाघास rough pointed खुरदरा तथा नोकीला होने से अनेक प्रकार के जन्तुओं के लिए सुई समान चुभने का भी काम देता है। यह घास विष नाशक देर तक रहनेवाला और तीक्ष्ण स्वरूप होने से बहुत उपयोगी है। कुशा विष नाशक है यह आयुर्वेद के मूल ग्रन्थ चरक और सुश्रुत दोनों का सिद्धान्त है।

मद्रास से The Health (दीहैल्थ) अर्थात् स्वास्थ्य नामी जो उत्तम अंगरेजी का मासिक निकलता है—उसके गत वर्ष के एक अंक में दर्शाया गया था कि ग्रहण के समय शरीर में विद्युत् कम होने से स्नान का लाभ हिंदु जो लेते हैं वह उत्तम बात है। हम जानते हैं कि हिंदु हलवाई ग्रहण के समय मिठाइयों में कुशाघास रखा करते हैं मेरे विचार में यह उत्तम बात है इस से वह मिठाइयां अधिक स्वादहीन नहीं होतीं कारण कि कुशा उन को स्वयं विषनाशक होने से Decompose विकृत होने से बचाती है।

कर्णवेध का समय सूत्र ग्रंथोंमें तीन वर्ष का प्रायः माना गया है। यह संस्कार मुण्डन का बन्धु समझिए, कारण कि इसका भी मुख्योद्देश दांत निकलने के विकट समयमें बालककी सर्व प्रकारसे सहायता करना है। महर्षि सुश्रुतकारने सूत्रस्थान अ. १६ में इसका उल्लेख किया है। जिसमें इसका उद्देश निम्न है "रक्षा भूषण निमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येत षष्ठे मासे सप्तमेवा।"

इससे मालूम हुआ कि सुश्रुतकार इस का समय ६ वा ८ वां मास दर्शाते हैं। विद्यालंकार श्री पं. ईश्वरदत्तजी भिषगाचार्य कानपुरी कहते हैं कि रक्षा शब्दके अर्थ, आधि, व्याधि अर्थात् सर्व प्रकार के रोगों से निवृत्ति के हैं, और वे बतलाते हैं कि कलकत्ते में उनके गुरुजीके पास कर्ण रोगी आते थे उनमें प्रायः अधिक संख्या उनकी होती थी जिनका कर्णवेध नहीं हुआ था। सुश्रुत चिकित्सित स्थान अ. १९ श्लोक २१ में लिखा है :—

शंखोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीम् व्यत्यासाद्वा शिरांविध्येदंत्रवृद्धि निवृत्तये ॥

इस मे शंख शब्दके अर्थ संबंधी उक्त कानपुरी भिषगाचार्यजी कहते है कि शंख वैद्योंका पारिभाषिक शब्द है और इसके अर्थ कर्ण-कुहर-परिधि अर्थात् कानके छेद का घेरा है।

इस घेरे के ऊपर अर्थात् शंख के ऊपर कहने से दोनों दैव छिद्र आजाते हैं, और कर्णान्ते शब्द से तीसरे नीचे के देव छिद्र का समावेश होजाता है अर्थात् उक्त सुश्रुत वचन का आशय यह है कि शंखसे ऊपर के दो दैव छिद्र और नीचेका तीसरा दैव छिद्र वींधना चाहिए। यत्नसे सेवनीम् अर्थात् जोडको छोडकर व्यत्यय से शिराको बिंधन करने से अंत्रवृद्धि निवृत्ति होजाती है। उक्त भिषगाचार्य पं. ईश्वरदत्तजी का कथन है कि "बंगालमें कर्ण बिंधन द्वारा वैद्यलोग विशेष इलाज करते हैं, अंडवृद्धि तथा अंत्र वृद्धिका। बालकों को बाल्यपनमें अंत्रवृद्धि रोग रहता है। कई बच्चों के अंडकोष कई महीनों तक दृष्टि नहीं पडते कभी एक अंडकोष नीचे उतरता है, कभी दूसरा इन सब आपत्तिओं को निवारण करने के लिए कर्ण वेध संस्कार बडाही उपयोगी है। श्री. आयुर्वेदाचार्य कविराज ताराचरणजी चक्रवर्ती व्याकरण तीर्थ आयुर्वेद

शास्त्री, कलकत्ता यह शंख के वो ही अर्थ करते हैं जो ऊपर हमने कहे। प्रत्येक कर्ण में तीन दैव छिद्र हैं और उनका बींधना कर्ण वेध संस्कार के अंदर वे जरूरी बतलाते हैं। उनका दृढ मत है कर्णवेध न होने से अंत्र वृद्धि और कर्णकंडु (खाज आदि) रोग होते हैं।"

"शारंगधर में जो वैद्यक का एक प्रसिद्ध ग्रंथ है, कर्ण रोगमें शिरावेध इलाज बताया गया है।" प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक कानमें तीन दैव छिद्र अनुभव कर सकता है। जब वह कान को कुछ मिनिट सूर्यप्रकाश में रख कर देखे। सूर्य रश्मियां जहांसे गुजरें वह स्थल दैव छिद्र है।

'रक्षा' शब्द के अर्थ अनेक रोगों से रक्षा के प्रत्येक सत्यप्रिय सज्जन समझ सकता है जब कि इस शब्द का प्रयोग आयुर्वेद के किसी ग्रन्थ में हो। उन अनेक रोगों के अन्दर राक्षसनिवृत्ति वा 'जर्म्स' के दूर करने का भी समावेश हो सकता है।

सूर्य की किरणें जर्म्स को जिसको सुश्रुत की परिभाषा में 'राक्षस' कहा गया है दूर करती हैं। उस वेद मंत्र में जो संस्कार चंद्रिका के नवीन संस्करण के अन्त में हमने ऋषि दयानन्दजी के भाष्य सहित दिया है, उस में पहिले सूर्य की किरणों का वर्णन करते हुए फिर सोने को दोनों कानों में धारण करने का विधान है। सूर्य किरणों के दो प्रतिनिधि आग और सोना हैं। आयुर्वेदने इसी लिये सोनेको अग्निप्रधान पदार्थ माना है अतः हम अनुमान कर सकते हैं कि सोने के आभूषण जिस स्थल वा अंग पर धारण किये जावेंगे वहां जर्म्स वा रोग जन्तु वा राक्षस नहीं ठहर सकेंगे।

आयुष्यं वर्चस्यंरायस्पोषमौद्भिदम्। इदं हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम्॥

यजु० अ० ३४ मं० ५०। **यह मंत्र सुवर्ण धारण करने का बोधक है।**

इस मंत्र का देवता (विषय) "हिरण्यन्तेजो" दिया गया है। इस हिरण्यतेज के अर्थ महर्षि दयानन्दजीने अपने उत्तम वेदभाष्य में "(हिरण्यम्) **तेजोमयं सुवर्णादिकम्**" के किए हैं। अतः इसके अर्थ उस भाष्य अनुसार यह होते है। जो (औद्भिदम्) दुःखनाशक (आयुष्यम्) जविन हितकारी (वर्चस्यम्) वर्चस उपयोगी (रायः पोषम) धन पोषक (वर्च स्वत्) अन्नोंका हेतु (हिरण्यम्) तेज स्वरूप सुवर्ण (जैत्राय) जय प्राप्तिके लिये (माम्) (आ, विशतात्) आवेश करे वा मेरे निकट स्थिर रहे।

सुश्रुतकारने **"विध्येदन्त्र वृद्धि निवृत्तये"** यह शब्द लिखे हैं जिसके अर्थ जरा सी भी संस्कृत जानने वाला सिवाय इसके दूसरे नहीं कर सकता, जो हमने राजवैद्य पं० मुरलीधर के शब्दों में संस्कारचन्द्रिका में लिखे है और जिसको प्रत्येक पाठक जान सकता है। अर्थ साफ हैं और वह यह हैं:-**कर्णवेध करे अन्त्र वृद्धि निवृत्तिके लिये**—वादी की यह शंका कि कर्णवेध संस्कार से अन्त्र वृद्धिका भ्रम है, सर्वथा निर्मूल इन अर्थों के आगे होगई। जब स्वयं सुश्रुतकार कह रहे हैं कि कर्णवेध से अन्त्र वृद्धि की निवृत्ति होती है, तो हम नहीं जानते पृथिवी पर कौन ऐसा मनुष्य है जो यह कहने का साहस करे कि कर्णवेध संस्कार से अन्त्र वृद्धि निवृत्ति भ्रम है।

महर्षि-सुश्रुतकार ने एक स्थल पर " रक्षा " शब्द जैसा कि ऊपर उद्धृत कर चुके हैं, कर्णवेध का प्रयोजन दिखाने के लिये लिखा और दूसरे स्थल पर स्वयं वही महर्षि लिख रहे हैं कि अन्त्र वृद्धि की निवृत्ति कर्णवेध से होती है, तो संस्कारचन्द्रिका के टीकाकारों ने भूल नहीं की जब उन्होंने अन्त्र वृद्धि को एक रोग समझा। रक्षा के अर्थों में एक नहीं अनेक रोग आ सकते हैं उनमें से एक का पता तो सुश्रुतकार महाराज दे रहे हैं। दूसरे अपनी योग्यता अनुभव से हम जान सकते हैं। इसलिये कर्णवेध संस्कार ऋषि दयानन्द प्रदर्शित सार्थक है। राजवैद्य पं. मुरलीधर शर्मा जिनका सुश्रुत हिन्दी अनुवाद वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बइ में छपा है जिसको सब जानते हैं सनातनधर्मी प्रेस उसमें रक्षा शब्द के अर्थ भूत प्रेत से रक्षा के नहीं किये गये जो कि हमारे पूर्व पक्षी को रोचक हैं।

संस्कारचन्द्रिका में उनके ही अर्थ उद्धृत किये हुये हैं। कैसी विचित्र बात है कि सुश्रुत के अर्थ सनातनी राजवैद्य तो रोग निवृत्ति के करें और सुधरे हुए विचार वाले हमारे पूर्वपक्षी जी विना युक्ति और प्रमाण के भूत प्रेत के करते हुए सुश्रुत जैसे वैज्ञानिक ग्रन्थ को भ्रममूलक दर्शाने की चेष्टा करें। विदित होकि मुण्डन तीसरे वर्ष के आरंभ में क्रिया जाता था। अब तक बच्चा मानों सुखमय जीवन व्यतीत करता रहा। जब दान्त और दाढ निकलने के साथ मानो सब रोग बच्चे पर धावा करने लगे हैं तब शिरको ठंडा और पांवको गर्म रखो यह तत्व ऋषि जानते थे। अनेक अंग्रेजी लेखक डा. मूअर आदि लिखते हैं कि बच्चे के शिरके बाल कटवा दिये जावें। सुश्रुत मे मुण्डन से रोग निवृत्ति चिकित्सत स्थान अ. २४ श्लोक ७२ में दर्शाई है। चरक के सूत्रस्थान अ. ५ सूत्र ९३ में मुण्डन से आयुवृद्धि दर्शाई है। ऋषियों ने रोग हटाने और आयु बढाने के लिये यह संस्कार रखा था। कोई भी दवाई वा लेप आज तक ऐसा नहीं निकला जो कई मास तक एक वार लगाने से शिर को ठंडा रख सके सिवाय मुण्डन क्रिया के। मुण्डन से कपाल की रचना विशेष जानने का भी अवसर मिलता है। गुरुकुल सूपा जिला सूरत में वहां के वैद्य मुंडे हुये छात्रों के शिर स्वयं देखते तथा कपाल शास्त्री नर्मदा शंकरजी को दिखाकर उनके स्वभाव और विद्यानुराग का पता लगाते हैं। योगी डेविस, (Davis) तथा महामुनि पण्डित गुरुदत्तजी इस कपाल विद्या के लाभ मानते थे। बम्बई आर्य समाज के एक नेता श्री गिरिधरभाई मेहता ने अथर्ववेदके आधार से इस पर उत्तम पुस्तक लिखी है। इस लिये मुण्डन से बच्चे के स्वभाव और मनुष्य की रुचि को हम जान सकते हैं। बाल-तोडफोडे (बालतोड) कोमल बालोंकी जड टूटनेसे होते हैं। दान्त निकलते समय शिर पर कच्चे बालोंके टूटनेसे उक्त फोडे न हों इस लिये भी मुण्डन किया जाता है।

मुण्डन क्रिया से बालों की जड मजबूत हो जाती है। इस लिये शिर को ठंडा रखने, शिर को फोडे आदि से बचाने कपाल विद्या का उपयोग करने शिर के छिद्रों में वायु और प्रकाश पहुंचाने, शिर में तेलकी मालिश करने और मानवीय शरीर के प्रधान अंग शिर की रक्षा से सर्व क्रिया तन्तु तथा ज्ञान तन्तुओं को बलवान् करने के उद्देशों के निमित्त मुण्डन संस्कार की जरूरत है। दो वर्ष की आयु में गर्दन से नीचे बाल पडने लग जाते हैं। उस समय सब लोग बाल कटवाना या मुण्डवाना आरम्भ करते हैं। यह मुण्डन का एक रूप है।

बरेली नगर में एक वींधक पुरुष चार आने लेकर, अण्डवृद्धि की निवृत्ति के लिये कान के मध्य मे वींध कर धागा डाल देता है। गुरुकुल सूपा के आचार्य पंडित ईश्वरदत्तजीने बरेली में एक रोगी से मिलने पर पूछा कि आप का कौनसा रोग कान के वींधने से दूर हुआ ? रोगीने कहा कि अण्डवृद्धि का। भिषगाचार्य पंडित ईश्वरदत्तजी का कथन है कि सब से ऊपर के छिद्र के वींधने से अन्त्रवृद्धि का रोग प्रायः दूर होता है और उक्त वैद्यजी कहते हैं कि उनके गुरुवर कहते थे कि जिन बालकों के ३ छिद्र किसी अनुभवी मनुष्य के द्वारा वींधे जाते है उनको इस प्रकार के रोग होते ही नहीं। वादी कहता है कि सुश्रुत ने एक स्थल पर जब बालकों के रक्त स्राव का उनकी निर्बलता के कारण वर्जन किया है तो कर्णवेध का निषेध होगया। इसके उत्तर में हम कहेंगे कि होम्योपैथी की गोली और पुडिया भर दवाई में भेद है या नहीं ? कहां सुई से वींधन और कहां भारी रक्त स्राव ? वैद्य ईश्वरदत्तजी का कथन है कि कर्णवेधन से थोडी सी बूंद रक्त की निकलनी संभव हैं। गत ४५ वर्षों में हमने भी लगभग १०० के कर्णवेध संस्कार देखे पर उन में कहीं भी रक्त की धारा छूटती नहीं पाई। अतः पूर्वपक्षवादी की चिंता व्यर्थ है। वादी रक्तमोक्षण (रक्तस्राव) और शिरावेधन का भेद नहा समझता है, ऐसा हमें जान पड़ता है। आजतक किसी भी बालक का रक्त वेधन हो ऐसा हमने नहीं सुना। सुश्रुत का परम विद्वान् रचयिता एकही स्थान पर रक्तमोक्षग का निषेध बालक के लिये कर के भी अन्यत्र कर्णवेध का विधान करे यह असंगत है।

दांत निकलते समय डाक्टर लोग बालकों के मसूडों में नश्तर देकर भी रक्तश्राव करते हैं। कुइनाइन को सुई के द्वारा भुजामें पहुंचाते हैं। शीतला का टीका ३ सुईयों से वींधा जाता है, और वे पकते भी हैं। यह सबकुछ लोग जानते हैं वादी इन सबपर चुप है केवल कर्णवेध से घबराता है। सोना सूर्य रश्मि समान सूक्ष्म रोग अणु निवारक है। सुश्रुत शरीर स्थान श्लोक २४ में सप्त सेवनी शरीर में लिखी हैं ५ शिर में, एक जिह्वा में और एक लिंगेन्द्रिय के नीचे, कान में कोई ऐसी सीवन नहीं है जो इन में गिनी गई हो, तिसपर कर्णवेध में यह सात परिभाषिक सीवन नहीं हो सकती किन्तु साधारण जोड यह निर्विवाद है। सुश्रुत शा. अ. ५ में शंख की गणना प्रत्यंगों में की है, इस लिए कर्ण परिधि प्रत्यंग के अर्थ में आ सकती है न कि मर्म स्थल के अर्थ में। बडौदा के मल्ल शिरोमणि राजरत्न प्रो. माणिकरावजी के निज उत्तम पुस्तकालय में मराठी भाषा की एक पुस्तक व्यवहारिक योग श्री पाण्डुरंग गोपालबाल कृत है इस उतम पुस्तक के पृष्ठ ५२ पर जो लेख है उसका भाषानुवाद निम्न प्रकार है—

मस्तिष्क—इसके अन्दर सहस्र दल हैं इसकी नसें अगणित हैं इसका सम्बंध गुदाद्वार तक और अण्ड कोष तक है यह पीठ के मनके में से होकर अंडकोष तक है यह पीठ के मनके में से होकर वृषवंश रज्जु ज्ञान वेणि से गुजर कर कान क मध्य भागमें संयुक्त होती है।

प्रश्नः—क्या वेदमें कोई मन्त्र स्पष्ट रूपसे कर्णवेध संस्कारका बोधक है ?

उत्तर—निम्न लिखित मन्त्र कर्णवेध का प्रत्यक्ष मूल बोधक है। गाव उपावतायतं मही यज्ञस्य रप्सुदा। उभा कर्णा हिरण्यया॥ यजु० अ. ३३ मं. १९।

(अर्थ) "जैसे (गावः) किरणों (उभा) दोनों (रप्सुदा) रूपदेनेवाली (मही) आकाश पृथिवी की रक्षा करती हैं। वैसे तुम लोग (हिरण्यया) स्वर्ण के आभूषण से युक्त (कर्ण) दोनों कानों और (यज्ञस्य) संगत यज्ञ के (अवतम्) वेदी आदि अवयवों की (उप—अवत) निकट रक्षा करो।

इस मन्त्र का देवता वा विषय इन्द्र वायु अर्थात् सूर्य रश्मि सम्पन्न बल है। मन्त्र के गो वा गावः शब्दके दूसरे अर्थ न केवल निरुक्त में ही किरणों के हैं किन्तु आप्टेकृत संस्कृत कोष में भी मिलते हैं। महर्षि दयानन्द कृत भाष्य में से मन्त्र के अर्थ दिये गए हैं। जैसे किरणें दोनों रूप देने वाली, आकाश पृथिवी की रक्षा करती हैं वैसे तुम लोग स्वर्ण के आभूषण से युक्त दोनों कानों और संगत यज्ञ के वेदी आदि अवयवों की निकट रक्षा करो।

नेत्र रोगों में तांबे का स्पर्श कराकर डाक्टर लोग रोग दूर करते हैं। जस्द धातु के सुरमचु वा लोशन के उपयोग से अनेक नेत्ररोग डाक्टर हटाते हैं। सोने की धातु जो सूर्य रश्मि तथा विद्युत् प्रवाह को ग्रहण करने की अत्युत्तम गुण रखती है उसके धारण करने से रोग दूर होते हैं जैसा कि इस संस्कार के व्याख्या भाग में पाठक सुश्रुतके प्रमाण द्वारा पायेंगे।

सुश्रुत संहिता का भाषानुवाद श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से १९ रु. मे मिलता है। फरुखनगर निवासी आरोग्य सुधारक सम्पादक राजवैद्य प. मुरलीधर शर्मा द्वारा करा कर प्रकाशित किया है। यह वेंकटेश्वर प्रेस सनातन धर्मी विचार का है। यह वादी भी जानते हैं सनातन धर्मी लोग भूत प्रेत मानते हैं यह भी वादी को विदित ही होगा अब इस सुश्रुत संहिता के पृ. ११९ पर जो लेख है वह नीचे दिया जाता है।

"रक्षा भूषण निमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येत.......

अर्थ...रक्षा और भूषण पहरने के निमित्त बालक के दोनों कान वींधने चाहिये।

विदित हो कि यह अनुवाद वादी के विदेशियों की नकल करने वाले आर्य संस्कृति के उपहास जनक, ऋषि मुनियों के विरोधी अंग्रेजी अनुवाद से हजार दर्जे ऋषिसन्तान वा मान्य है इसके भाष्यकर्त्ता स्वयं वैद्यराज हैं और संस्कृतके भारी पण्डित। उनकी भूमिका में से कुछ शब्द नीचे देते हैं। "इस लोक प्रसिद्ध आर्य ग्रंथ की ऐसी उत्तम टीका बनाने का उद्योग किया गया है तथा चरक वाग्भट्ट हारीत भावप्रकाश आदि अन्य आयुर्वेदीय प्रामाणिक पुस्तकों तथा निघण्टुओं और वाचस्पत्य बृहदभिधान शब्द स्तोम महानिधि शब्दार्थ चिंतामणि मेदिनी अमरादि कोषों से एवं अन्यान्य शास्त्र के अनेकानेक पुस्तकों से गम्भीर टिप्पणी रूप संस्कृत में व्याख्यान करते हैं" अब जनता निर्णय करले कि उक्त वैद्यराज मुरलीधर तो रक्षा शब्द के अर्थ रक्षाही करते हैं जो संस्कारचंद्रिका में किये गये हैं और ऋषियों के गौरव नाशक अंग्रेजी अनुवाद रक्षा शब्द के अर्थ भूत प्रेत की रक्षा करते हैं और

उनको मानते हैं और मानने पर सुश्रुत को प्रक्षिप्त ठहराते हैं अन्त को संस्कारविधि पर ही कुठाराघात करना है !

इसके अतिरिक्त संस्कारचंद्रिका में काशी के नामी वैद्यराज और लाहोर के आर्यसमाजी नेता तथा वैद्य काशीरामजी और अमृतसर आर्यसमाज के नेता वैद्यराज पं. शिवदत्तजी का उल्लेख किया गया है कि कर्णवेध से अंत्रवृद्धि रोग दूर होता है। आप क्यों नहीं पत्र लिखकर निश्चय करलें ! यह तो प्रसिद्ध पुरुष हैं ! इन के अतिरिक्त गत ऋषि शताब्दी उत्सव में आर्य-पंडित परिषद् के जो सभापति थे उनका नाम श्री पं. बालकृष्णजी शर्मा बंबई वाले हैं। हमने संस्कारचंद्रिका के व्याख्या भाग में उनका नाम देकर उन के सामने राजस्थान के कोटा नगर में जिस यूनानी हकीम ने कर्णवेध से अंत्रवृद्धि रोग का दूर होना कहा था उसका भी उल्लेख किया है। इतने प्रमाणों पर भी वादी अंत्रवृद्धि निवृत्ति न माने तो उसकी इच्छा।

वादीने एक बड़ी हंसी की बात यह लिखी है कि कर्णवेध इसलिये व्यर्थ है कि आजकल पुरुष आभूषण नहीं पहनते। विदित रहे कि पुरुषों के कान बींधने का नहीं किन्तु बालकों के कान बींधने का विधान है। उस बाल्यावस्था में बालक आभूषण पहिन सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि सारी उम्र आभूषण पहिने जायें। यदि कोई अंग्रेज कर्णवेध की उपयुक्तता सिद्ध कर दे तो फैशन के भक्त तुरन्त अनुकरण करने लगें। अब भी रिस्टवाच, अंगूठियां तथा जेम्स बहुतसे सभ्य पुरुष तथा कुंडल मारवाडी आदि पहनते हैं।

नए साक्षी

(१) इटोला (बडोदा) के श्री स्वामी धर्मानन्दजी का कथन है कि कच्छ प्रान्त में कान के मध्यका छिद्र हरनिया रोग निवृत्ति के लिए वैद्य लोग सफलता पूर्वक बींधा करते हैं। मरहटे लोग कान के ऊपर का छिद्र तथा नीचे का रक्त रोग शमनार्थ बींधा करते हैं।

(२) धारासभा बडौदा के सभासद श्री मूलदास भद्रदास वैश्यका कथन है:–कि उन के ग्राममें एक मुसलमान बंधु हरनिया रोग शमनार्थ कान के मध्य छिद्र को बींधा करता था।

(३) गणदेवी कन्या गुरुकुल के नामी आचार्य तथा जन्मदाता आर्य समाज महोप-देशक पं० श्री महाराणीशंकरजी शर्मा का कथन है कि जिनके कानों के तीन छिद्र बींधे गए उनको हरनिया रोग आदि कोई नहीं रहे।

(४) राजरत्न मल्लशिरोमणि प्रोफेसर श्री माणिकरावजी बडौदा ने स्वयं अनेक रोगी अंत्रवृद्धि के कान के तीनों छिद्र बींधने से अच्छे किये। प्रत्येक गृह सुधारक हिंदू तथा आर्य बंधु को महर्षि दयानन्द कृत संस्कार विधि के अनुसार षोडष संस्कारोंको अपने गृहमें प्रचार करने से वैदिक तथा अति उत्तम हिंदू वा आर्य संस्कृति का दृढ भक्त तथा उपासक बनकर दिखाना होगा। जबतक हिंदू संसार वैदिक संस्कृत, वैदिक संस्कृति तथा वैदिक संस्कारों को भारत देश तथा एशिया खंडमें पुनः प्रचार नहीं करेगा तब तक हिन्दुगृहों के अन्दर बलवान् तथा धर्मिक कर्मवीर संतान के दर्शन नहीं होंगे। इति। आत्माराम (अमृतसरी)

वैदिक संस्कारमाला

श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा पथिक सिद्धान्तशास्त्री साहित्यालंकार लिखते हैं "उपनयन संस्कार यह पुस्तक आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् परलोकगत राजमित्र राजरत्न आत्मारामजी (अमृतसरी) वैदिक फिलासफर की लिखी हुई है। इसमें महर्षि दयानन्दजीकृत "संस्कारविधि" में वर्णित उपनयनसंस्कार की विस्तृत, अत्यन्त अनुसन्धान पूर्ण तथा वैज्ञानिक व्याख्या है। यज्ञोपवीत निर्माण, संख्या ब्रह्मसूत्र नाम क्यों है? कन्याओंको पण्डिता बनाना, वेदों में यज्ञोपवीत का वर्णन आदि पर विवेचना है। प्रत्येक आर्य के लिए पठनीय पुस्तक है। पुस्तक की छपाई, सफाई चित्ताकर्षक है, टाइटल पृष्ठ रंगीन व सुन्दर है। हम इस पुस्तक का घरघर में प्रचार चाहते हैं।" मू ।||) डाक व्यय–) जयदेव ब्रदर्स बडोदा।

रुद्रग्रन्थमाला की पुस्तकें वैदिकसिद्धान्तों की पुष्टिमें नक्षत्रवत् प्रकाशित होकर भारतीय विद्वन्मण्डल गगनमें चमक रही हैं। उनकी नामावली निम्न है:–मूल्य डाकव्यय सहित

१ अथर्ववेदकी प्राचीनता ।=) –) २ भारतीय इतिहास की रूपरेखा पर एक समीक्षात्मक दृष्टि ।))॥। ३ आर्यसमाज के द्वितीय नियम की व्याख्या ॥) –) ४ भारतीय इतिहास और वेद ≋))॥। ५ महर्षिदयानन्दजी कृत वेद भाष्यानुशीलन १) –)। ६ ऋग्वेद के दशम मण्डल पर पाश्चात्यविद्वानों का कुठाराघात ।–))॥। ७ आर्यसमाज में मूर्त्तिपूजा ध्वांत निवारण ।=) –) ८ वामनावतार की कल्पना ।–))॥।

प्राप्तिस्थान:—१जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा २ दयानन्द वैदिक शोध संस्थान श्रद्धानन्द पार्क कानपुर ३ श्रीविश्वेश्वरानन्द बुक एजंसी होश्यारपुर ४ मोतीलाल बनारसीदास चौक बनारस

भूल संशोधन

विधि के प्रथम पृष्ठ पर जो मंत्र छपा है वह कुछ अशुद्ध छपगया है निम्न प्रकार सुधार कर पढना चाहिये।

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

यजु० अ० २५ मं० २१ तथा ऋ० मं० १ सू० ८९ मं० ८॥

राजरत्न राजभक्त महात्मा आत्मारामजी

(अमृतसरी) द्वारा रचित **वैदिक विज्ञान ग्रन्थमाला**

दिग्विज्ञान मनसा परिक्रमा मंत्रों का स्वाध्याय। प्रत्येक आर्य दोनों समय इन छ मंत्रों का पाठ करता है। महर्षि दयानन्दजीने इन मंत्रोंपर विस्ताररूपसे भाष्य नहीं किया पर संक्षिप्त रूपसे इन मंत्रों का सार बता दिया है जिसके अनुसार अग्नि, इन्द्र, वरुण सोमविष्णु और बृहस्पति शब्द ईश्वर बोधक हैं और यह छ मंत्र ईश्वर की सर्व व्यापकता का उत्तम उपदेश दे रहे हैं। साधारणतया लोग शब्दों के पंचभौतिक तथा कल्पित देवताओं के अर्थ लेते हुए हाथ जोड देने से ही अपना कल्याण समझ रहे थे। महर्षि दयानन्दजीने अपने वेदभाष्य में निरुक्त के त्रिविध नियम को पालन कर दिखा दिया कि वेदमंत्रों के अर्थ आध्यात्मिक, आधिदैविक (वैज्ञानिक) और आधि भौतिक (सामाजिक) होते हैं। निरुक्त तथा महर्षि दयानन्दजी कृत वेदभाष्यने हमें प्रेरणा की कि हम इन मंत्रों के वैज्ञानिक अर्थ करें। इसी प्रेरणा का मूर्तस्वरूप यह पुस्तक दिग्विज्ञान जो कि २५० पृष्ठों में पूर्ण हुई है सचित्र है। इस पुस्तक में भूगोलविज्ञान, गतिविज्ञान, सूर्य स्वरूपविज्ञान, रश्मिविज्ञान, रयि विद्युत विज्ञान, अपराह्न विज्ञान, ऋतुविज्ञान, चन्द्रविज्ञान, चन्द्रकला विज्ञान, अन्नविज्ञान, चुंबक आकर्षण विज्ञान, अशनिविज्ञान, भू–'आकर्षणताप'विज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, वायुविज्ञान, मेघविज्ञान, तथा वर्षाविज्ञान का वर्णन केवल इन छ मंत्रों में एवम् इनकी पुष्टि में अनेक उद्धरणों में मिलेगा। साथ ही नानाप्रकार के पश्चिमी तत्वविज्ञान की तुलना वैदिक विज्ञान के तत्वों के साथ वैदिक तत्वों की सत्यता का महत्व दर्शाया है। विशेष कर युरोपीय विद्वान् जो वेदों में अनेक प्रकार के विज्ञान नहीं मानते वह तथा उन जैसे अनेक भारतीय विद्वानों के लिए यह पुस्तक एक नए मार्ग का सूचन करती है। उत्तम सचित्र बढिया कागज छपाई की पुस्तक का मूल्य २) है डाक व्यय ॥–)

आजकल के अनेक सामाजिक प्रश्न और इनके उत्तर यह स्वर्गीय पुण्यात्मा महात्मा आत्मारामजी अमृतसरी की अंतिम छपी रचना है। बडी साइज़ के १०० पृष्ठों के लगभग मू. १) डाक व्यय –) यह एक रत्नों का पिटारा है और उनके यह विचार बडे समयोपयोगी एवम् आर्यों के लिए पथ प्रदर्शक हैं।

श्री **सत्यार्थी ऋषिकुंज** जालन्धर नगर "मेरा चित्त यह जान गदगद प्रसन्न हो उठा कि आपने संस्कार चन्द्रिका को वैदिक संस्कार माला रूप में छापने का प्रशंसनीय उद्योग प्रारम्भ कर दिया है। पूज्यवर महात्मा आत्मारामजी की यह सर्वोत्तमकृति अब देशसे लुप्त प्राय सी हो रही है उसको पुनः प्रकाश करना देशमें वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धार प्रयास करने के तुल्य है।"

महर्षि दयानन्द की शतसांवत्सरिक जयन्ति संस्करणः— संसार के सम्वत्

ले. जगनलाल गुप्त मुख्तार जिसमें संसार के प्रायः सब ही इतिहासोपयोगी संवतों का वर्णन, तत्तद्देशीय पञ्चांग और उन सम्वतादि को विक्रम पञ्चांग से मिलाने के नियम और सारिणियें दी गई हैं। यथा हिजरी सन की शाका और विक्रम सम्वत बनाने की रीति, विक्रम संवत को सन हिजरी बनाना, किसी भी हिजरी तारीख के वार जानना, यूनानी सम्वत से ईस्वीसन बनाना इत्यादि लगभग ९० पृष्ठ की बडी साइज की पोथी का मूल्य ||।) डाक व्यय =)

कला कौमुदी (वस्त्र सूचीकला) प्रथम भाग बढिया आर्ट पेपर पर छपी सचित्र पृ. सं. १०० के लगभग मू २। डा. व्यय ।।) विदेशीय भाषाओं में इस प्रकार की असंख्य पुस्तके हैं जिन की सहायता से सूई, क्रोशिया और सलाई द्वारा नाना प्रकार के वस्त्र, लेस फीते इत्यादि बनाये जा सकते हैं परन्तु देशी भाषा में इन कला सम्बन्धी पुस्तकों का प्रायः अभाव ही है। इस में क्रोशिये तथा सलाई द्वारा नाना प्रकार के उत्तमोत्तम विचित्र सरल और उपयोगी वस्तुएं बनाने की सरल एवम् विस्तृत विधि हैं। इस की सहायता से प्रत्येक बालिका अपनी विद्या में समुचित उन्नति कर सकता है। पुस्तक बडी उपयोगी और चित्ताकर्षक है। आज ही २।। का मनीआर्डर भेज कर पुस्तक मंगा ल।

पौरस्त्य धनुर्वेद लेखक महेन्द्रकुमार वेद शिरोमणि रिसर्चस्कालर भूमिका ले. श्री पं. नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ पृ. सं. १०० मूल्य ।।। इस मे संपूर्ण धनुर्वेद के अस्त्रांग तथा शस्त्रांग दोनो अंगों का परिचय मिल सकता है। प्राचीन समय की भारतीयों की युद्ध विद्या संबन्धी उन्नति से पता चलता है कि कैसे शस्त्रास्त्रों का अविष्कार उस समय में भी था और यह पुस्तक प्राचीन विषय पर उत्तम प्रकाश डालती है।

मेरी युरोप की यात्रा ले. गणेश नारायण सोमानी बी. ए. प्रत्येक नए हिन्दी सीखने-वाले को अपनी भाषा का ज्ञान व्यवहारिक रूप में बनाए रखने के लिए इस पुस्तक को अवश्य पढना चाहिए इसमें बडे मनोरंजक ढंगसे युरोपीय यात्रा का वृत्तान्त आप पाएंगे जल और स्थल प्रवास रूपी प्याले में से अनुभव और विज्ञान का निचोड़ इसमें आप को पीने को मिलेगा। २५० पृष्ठों की सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल आठ आना है। राजसंस्करण १) डाक व्यय ।=)

कुबेर की चाकरी आपने सैंकडो उपन्यास पढें होगें ! परन्तु आज तक ऐसा उपन्यास नही पढा होगा ? क्यों ? इस लिए कि गरीब भारत वासियों के लिए प्रेम कहानियों की जरूरत न हो तो आप इसे पढिए और देखिए कि गरीब भारत के मजदूर और अनाथ अबलाओं का करुण चित्र कैसा होता है ? पूंजी पतियों की भीतरी और बाहरी हालत क्या रहती है तथा भारत के भाग्य निर्माण में अर्थ शास्त्र की ग्रन्थियां कैसे सुलझाई जा सकती हैं। इस नवीन मनोरंजक उपन्यास को पढकर एकबार देखिए कि भारत की उन्नति में सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों का कितना गहरा संबन्ध है। पृ. सं. ३०० से अधिक मूल्य १-१२-० डा. व्यय ।।)

जयदेव ब्रदर्स बडोदा

ओ३म्

"संस्कारचन्द्रिका" से पुनर्मुद्रित वैदिक संस्कार माला सं० १०

अथ उपनयनसंस्कार

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रणीत "संस्कारविधि" के उपनयन संस्कार की विस्तृत व्याख्या

★

-: रचयिता :-

(स्व.) विद्वद्वर्य्य श्रीयुत पंडित भीमसेन शर्म्मा (आगरा निवासी)

तथा

राजमित्र राजरत्न श्रीयुत (स्व.) आत्माराम राधाकृष्ण (अमृतसरी)

-: रचयिता :-

सृष्टिविज्ञान दिगविज्ञान, ब्रह्मयज्ञ, आत्मरक्षान विज्ञान, वैदिक विवाहादर्श, बलप्राप्ति, माण्डूक्योपनिषद्, तुलनात्मक धर्म विचार, महर्षि दयानन्द की जीवनी (उर्दु) तथा सत्यार्थ-प्रकाश के सर्वप्रथमउर्दु—गुरुमुखी अनुवादक इत्यादि इत्यादि।

★

: प्रकाशक :

जयदेव ब्रदर्स आत्माराम पथ बड़ोदा

जागृति मुद्रणालय बड़ोदामें मुद्रित तथा जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा के लिए साहित्यमनीषिणी सरस्वती पंडित बी. ए. बी. टी. द्वारा प्रकाशित

पष्ठसंस्करण | सृष्टि संवत् १९७,२९,४९०५१ संवत् २००७ वि०, ई० सन् १९५१ | मूल्य ।॥)

ओ३म्

भूमिका

प्राय: सभी यह मानते हैं कि आत्मा अमर है और आत्मा पर विजय पाना मनुष्य का श्रेष्ठतम कर्तव्य है। कठिनाइयों में सफलता दिलानेवाली आत्मा प्रतिकूलता पा बलवान् हो उठती है और उसे ईश्वर के दर्शन होते हैं। यही आत्मा और परमात्मा की एकता हमें विकास की ओर लेजाती है। आत्मा की संस्कारिता उस की शिक्षा-दीक्षा पर निर्भर है। जीवनकी उच्चतम शक्तियों को संस्कारी बनाने के लिए वेद ने जिन ऋचाओं द्वारा मार्ग दर्शन किया है उन के आधार पर **संस्कार चन्द्रिका** अस्तित्व में आई। भारत के निर्जीव हिन्दू समाज में जागृति की वीणाके तारों को **महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती** ने झंकृत किया और उसमें से निकले हुए स्वरों को पकड़ कर **महात्मा आत्मारामजी** (अमृतसरी) ने संगीत छेड़ा। जीवन के अनेक विध पहलुओं के विविध स्वरों में से निकले हुए संगीत की मधुर ध्वनि ने श्रोताओं के हृदय को मिठास से भर दिया। निर्जीव हृदय आशाजल से सिक्त हो लहलहाने के लिए व्याकुल हो उठे। महर्षि के इन सचे भक्तने जनता की व्याकुलता मिटाने के लिए भक्तिभाव से वेदामृत की धारा बहाई। निष्काम कर्म के इस भावकने अपनी सारी शक्ति वैदिक संस्कृति और महर्षि के आदेश को विश्वव्यापी बनाने में लगा दी। पाश्चात्य शिक्षा लेने पर भी आर्य संस्कृति और सभ्यता को अपनाया। आरंभ काल मे ही समाज सुधार की भावना हृदय में अंकुरित हुई थी और वह पनपती ही गई वैदिक साहित्य को पढ कर। व्यक्तिगत प्रतिभा ओजस्विनी बनी और एकनिष्ठा तथा परमार्थने इनको क्रियेगोफर बनादिया। समयने इनको पंजाब से गुजरात में भेजदिया और इन का कार्य मौन रूप में बढता गया। जीवन के कार्यक्षेत्र में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जनता की अरुचि, अपमान और ईर्षा का सामना इन्हों ने उसी प्रकार किया जिस प्रकार एक सुमाता अपने कुपुत्र को सुधारने के लिए पयत्न करती है। धन के अभाव में आभूषणों को बेचा कार्यकर्ताओं के अभाव में अपनी संतानों को दिया और इन के अभावों में भाव बनकर प्रेरणादी इनकी निर्मलमना धर्मपत्नीने। जीवन भर जिस व्यक्तिने सात्विक फलाहारी भोजन किया उस का देह और मन सात्विक क्यों न बनता और उस का प्रभाव संसर्ग में आनेवाली व्यक्तियों पर क्यों न पडता।

पढना, मनन करना और लिखना प्राय: सभी ज्ञानी करते हैं परन्तु कार्य में लाना विरले ही करते हैं। इन्होंने जैसा कहा वैसा अंत तक किया। और उसी का परिणाम है कि आज हम उन की एक एक कृतियों में से प्रेरणा पाते हैं वही प्रेरणा जो व्यक्ति समाज और देश को उन्नति की ओर लेजाती है। उन की प्रेरणा का एक तत्व '**संस्कार चन्द्रिका**' को समयने अपनाया और आज उसी संस्कारदायिनी संस्कारचन्द्रिका का एक अंग आप के सामने है। जिन पितामह की पवित्र छत्र छाया में पलकर जिन के अगाध वात्सल्य सागर में अवगाहन कर जीवन की संस्कारिता और पवित्रता के मर्म को समझा है उन्हीं प्रात: स्मरणीय पूज्य पितामह के चरणों में यह पुष्प समर्पित करती हुई परम देव परमात्मा से प्रार्थना करती हूं कि वह ऐसी शक्ति और बुद्धि प्रदान करे कि जिसके द्वारा हम मन, वचन और कर्म से पवित्र रहते हुए उन के अधूरे कार्य को पूरा कर सकें। अतएव आज पाठकों के सन्मुख संस्कार चन्द्रिका इस नए रूप में रख कर हम अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं। आशा है आर्य विद्वान् एवम् पाठक इस का स्वागत करेंगे और हमें सक्रिय रूप से इसके प्रचारमें योग देकर अनुगृहीत करेंगे। यह दशम **उपनयन संस्कार** सन १९२४ में छपी संस्कारचंद्रिका तथा संस्कार विधिके आधारसेही पुन: छपी है।

फाल्गुन शुक्ला सप्तमी २००७ }
आत्माराम पथ बडोदा. }

सरस्वतीकुमारी

ओ३म्

आर्य समाजस्य प्रवर्तकः



श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती

श्री राजमित्र राजरत्न स्व० महात्मा आत्मारामजी (अमृतसरी)



" संस्कारचन्द्रिका " के व्याख्याता

जन्म ६ जून १८६६ ★ मृ. २५ जुलाई १९३८

श्रीमती यशोदा देवीजी



कुलमात आ कन्या म विद्यालय ' बडोदा

ओ३म्

उपनयनसंस्कार

****

अथोपनयनसंस्कारविधिः

विधि :—जिस दिन उपनयन करना हो उस दिन प्रातःकाल बालक * का क्षौर स्नानादि कराके पुनः यज्ञमण्डप में पिता वा आचार्य्य बालक को मिष्टान्नादि का भोजन कराके वेदि के पश्चिम भाग में सुन्दर आसन पर पूर्वाभिमुख बैठावे और बालक का पिता और ऋत्विज् लोग भी पूर्वोक्त प्रकार अपने अपने आसन पर बैठ यथावत् आचमनादि क्रिया करें।

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता बालक के मुख से :—

ब्रह्मचर्यमागाम्, ब्रह्मचार्यसानि ॥ पार गृ० सू० का० २ । क०२। सू० ६ ॥

अर्थ :—(ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य व्रत-वेद पढ़ने के लिए जो नियम विशेष किया जाय, उसको मैं (आगाम्) प्राप्त होऊं; और (ब्रह्मचारी, असानि) ब्रह्मचारी होऊं।

ये वचन बुलवाकर † आचार्य—

ओं येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम्। तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० २ । सू० ७ ॥

अर्थ :—हे बालक ! (येन) जिस विधि से (बृहस्पतिः) गुरु-आचार्य ने (इन्द्राय) अपने शिष्य के लिए (अमृतं, वासः) जो जला, फटा, कम चलने वाला न हो ऐसे वस्त्र को (पर्यदधात् ‡) धारण कराया है (तेन) उस विधि से हो (त्वा) तुझे (परिदधामि) मैं सुन्दर वस्त्र पहनाता हूं (आयुषे) स्वास्थ्य के लिए और (दीर्घायुत्वाय *) दीर्घ जीवन के लिए (बलाय) देह में शक्ति आने के लिए (वर्चसे) इन्द्रियों के तेज के लिये वा ऐश्वर्य के लिए।

---

* विवरणः—बालक के अर्थ लड़का लड़की दोनों के हैं। (अनुवादक)

† आचार्य उसको कहते हैं कि जो सांगोपांग वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्ध और क्रिया का जाननेहारा छल कपट रहित, अतिप्रेम से विद्या का दाता, परोपकारी तन, मन, धन से सब को सुख बढ़ाने में जो तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेष्टा सबका हितैषी धर्मात्मा जितेन्द्रिय होवे।

‡ यहां अन्तर्भूत णिच्।

* आयुशब्द उकारान्त भी है।

इस मन्त्र को बोल के बालक को सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र पहिनावे तत्पश्चात् बालक आचार्य्य के सन्मुख बैठे और यज्ञोपवीत हाथ में लेके—

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं यज्ञोप्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥१॥ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥२॥ पार० गृ० सू० का० २। क० २। सू० ११ ॥

अर्थः—हे बालक (यज्ञोपवीतम्) "यज्ञाय यज्ञकर्मणे–वेदोक्तकर्माधिकारायेति वा उपवीतम्–उपरिवीतम्–परिहितम्" वेदोक्तकर्म में अधिकारी बनने के लिये जो कन्धे के ऊपर रक्खा जाय इस "ब्रह्मसूत्र" को और जो (परमम्) परः आत्मा, प्रीयते–ज्ञायते अनेन परमात्मा के ज्ञानप्राप्ति का सूचक है (पवित्रम्) शुद्धि के ज्ञान की सूचना करने वाला (यत् प्रजापतेः, सहजम्) जो ईश्वर से स्वभावसिद्ध उपदिष्ट है। पुरस्तात्) पूर्व काल से चला आता है (आयुष्यम्) आयु के लिये हितकारी (अग्रयम्) मुख्य है, ऐसे इस "ब्रह्मसूत्र" को मैं आज (प्रति मुञ्च) बांधता हूं (पुरुषव्यत्ययश्छान्दसः) (शुभ्रम् यज्ञोपवीतम्) यह निर्मलता का बोधक यज्ञोपवीत (बलम्) बल देने वाला और (तेजः) तेज देने वाला ईश्वर करे कि (अस्तु) होवे। हे ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीतम्) तू यज्ञोपवीत है (त्वा) तुझे (यज्ञस्य) यज्ञकार्य के लिए ही (ग्रहण करता हूं) और मैं स्वयम् आज (यज्ञोपवीतेन) यज्ञोपवीत से (उपनह्यामि) बंधता हूं।

इन मन्त्रों को बोल के आचार्य्य बाएं कन्धे के ऊपर कण्ठ के पास से शिर बीच में निकाल दाहिने हाथ के नीचे बगल में निकाल कटि तक धारण करावे तत्पश्चात् बालक को अपने दाहिने ओर साथ बैठा के ईश्वर की स्तुति आदि करके समिदाधान अग्न्याधानादि कर आज्याहुति करने का आरम्भ करे।

आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार तथा "त्वन्नो अग्ने०" इत्यादि से आज्याहुति आठ तीनों मिल के सोलह घृत की आहुति देके पश्चात् बालक के हाथ से इन मन्त्रों से फिर (ओं भूभुर्वः, अग्न आयूंषि.) चार आहुति देवे, तत्पश्चात्—

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥ मं० ब्रा० १।६।९॥

अर्थः—हे (व्रतपते) उपनयनादि व्रतों के अधीश्वर अग्ने पूजनीय परमात्मन्! मैं (व्रतं चरिष्यामि) ब्रह्मचर्य्यव्रत का अनुष्ठान करूंगा (तत्ते) इससे आपके प्रति (प्रब्रवीमि) निवेदन करता हूं–प्रार्थना करता हूं कि आपकी कृपा से (तत्) व्रत का पालन करने के लिए (शकेयम्) मैं समर्थ होऊं। (तेन) उस व्रत के फल से मैं (ऋध्यासम्) समृद्धि–सम्पत्तियुक्त होऊं और (अहम्) मैं (अनृतात्) झूठे कार्यों को छोड़ कर (इदं, सत्यम्) इस हृदयस्थ सत्य ब्रह्म को (उपैमि) प्राप्त होऊं ॥१॥

ओं वायो व्रतपते०* स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥२॥ मं.ब्रा.१।६।१०॥

अर्थः—हे (वायो) ज्ञानस्वरूप ! मैं ब्रह्मचर्य्य का पालन करूंगा। यह मेरा निवेदन है कि आपकी कृपासे उस व्रत को पालसकूं ताकि मैं समृद्धिवाला और कपटरहित होकर हृदयस्थ काम को प्राप्त होऊं ॥२॥

ओं सूर्य व्रतपते०* स्वाहा ॥ इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥३॥ मं. ब्रा. १।६।११॥

अर्थः—(सूर्य) सूर्यवत् प्रकाशमान ! शेष पूर्ववत् ॥३॥

ओं चन्द्र व्रतपते०* स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥४॥ मं. ब्रा.१।६।१२॥

अर्थः—(चन्द्र) चन्द्रवत् आह्लादक ! शेष पूर्ववत् ॥४॥

ओं व्रतानां व्रतपते.* स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय व्रतपतये—इदन्न मम ॥४॥ मं. ब्रा. १।६।१३॥

अर्थः—(व्रतानां व्रतपते) व्रतों में सब व्रतों के अध्यक्ष ! शेष पूर्ववत् ॥५॥

इन पाच मन्त्रो से पाच आज्याहुति दिलानी उसके पीछे व्याहृति आहुति चार और स्विष्टकृत् आहुति एक ओर प्राजापत्याहुति एक, ये सब मिल के छः घृत की आहुति देनी, सब मिलके पंद्रह आहुति बालक के हाथ से दिलानी उसके पश्चात् आचार्य्य यज्ञकुण्ड के उत्तर की ओर पूर्वाभिमुख बैठे और बालक आचार्य के सन्मुख पश्चिम में मुख करके बैठे तत्पश्चात् आचार्य बालक की ओर देखके:—

ओं आगन्त्रा समगन्महि प्र सु मर्त्यं युयोतन। अरिष्टाः सञ्चरेमहि स्वस्ति चरतादयम् ॥१॥ मं. ब्रा. १।६।१४॥

अर्थ—हे अग्ने परमात्मन्! (आगन्त्रा) ब्रह्मचर्यव्रत में आने वाले इस वटु के साथ हम सब (समगन्महि) मेल कर चुके हैं। आप कृपा कर इस बालक को (सुमर्त्यम्) अच्छे मनुष्यों से युक्त (प्र, युयोतन) अच्छे प्रकार कीजिए (अरिष्टाः) इस बालक के विघ्नो को हम सब (सञ्चरेमहि) अपने ऊपर लेत हैं, आप की कृपा से (अयम्) यह बालक (स्वस्ति, चरतात्) कल्याणपूर्वक विचरे। इस मन्त्र का जप करे—

बालक बोले—" **ओं ब्रह्मचर्यमागामुपमानयस्व** " मं. ब्रा. १।६।१६॥

अर्थः—हे गुरो ! मै (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य व्रत को (आगाम्) स्वीकार कर चुका हूं। अब (मा) मुझे (उप, नयस्व) अपने समीप विधि से प्राप्त कीजिए, रखिए।

आचार्योक्तिः आचार्य बोले—" **को नामासि** " ॥ तेरा नाम क्या है ?

बालकोक्तिः बालक बोले—" **एतन्नामास्मि** " ॥ मं० ब्रा० १।६।१॥ मेरा अमुक नाम है ॥ तत्पश्चात्—

---

* इसके आगे " व्रतं चरिष्यामि " इत्यादि सम्पूर्ण मन्त्र बोलना चाहिये।

ओं आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥१॥

ऋ० म० १०। सू० ९। मं० १॥

अर्थः—हे (आपः) जलो! (हि) जिससे कि तुम (मयोभुवः) सुख देनेवाले (ष्ठा) होते हो, अतः (ताः) वैसे तुम (नः) हमको (ऊर्जे) अन्न के लिए (दधातन) धारण करो और (महे, रणाय) बड़े रमणीय (चक्षसे) दर्शन के लिए हमें धारण करो ॥१॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥२॥

ऋ० म० १०। सू० ९। मं० २॥

अर्थः—हे जलो! (वः) तुम्हारा (यः) जो (शिवतमः, रसः) अत्यन्त कल्याणकारी रस है (तस्य) उसे (नः) हमें (इह) इस लोक में (भाजयत) उपयुक्त कराओ। (उशतीः, मातरः, इव) पुत्रसमृद्धि को चाहने वाली माताएं जैसे अपने स्तन के रस को सेवन कराती हैं वैसे ही ॥२॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥३॥ यजु० अ० ११। मं० ५०—५२॥

अर्थः—हे (आपः) जलो! (यस्य, क्षयाय) जिस अन्न के निवास के लिये तुम औषधियों को (जिन्वथ) तृप्त करते हो (तस्मै) उसी अन्न के लिये हम (अरम्) पर्याप्तरूप से (वः) तुम्हें (गमाम) प्राप्त करते हैं (च) और तुम (नः) हमको (जनयथ) पुत्र पौत्रादि के उत्पादन में प्रयुक्त करो। इन तीनों मन्त्रों का तात्पर्यार्थ यह है कि मनुष्यों को अनेक गुण विशिष्ट जलों से यथावदुपयोग लेना चाहिये।

इन तीनों मन्त्रों को पढ़के बटुक की दक्षिण* हस्ताञ्जलि शुद्धोदक से भरनी तत्पश्चात् आचार्य अपनी हस्ताञ्जलि भरके:—

ओं तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्। श्रेष्ठं सर्वधातमम् तुरं भगस्य धीमहि ॥१॥ ऋ० मं० ५। अ० ६। सू० ८२। मं० १॥

अर्थः—(वयम्) हम सब (सवितुः, देवस्य) सर्वोत्पादक परमात्मा की (तत्, श्रेष्ठम्, भोजनम्) उस प्रसिद्ध, प्रशंसनीय नियमनादिरूप भोग्य वस्तु को (वृणीमहे) चाहते हैं, प्रार्थना करते हैं और उसी (भगस्य) भजनीय सेवनीय परमात्मा के (सर्वधातमम्) सब भोग्य पदार्थों को देने वाले (तुरम्) शत्रुओं को मारने वाले नियमरूप भोग्य को ईश्वर करे कि (धीमहि) धारण करें, उपभोग करें।

इस मन्त्र को पढ़के आचार्य अपनी अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में छोड़ के बालक की हस्ताञ्जलि अंगुष्ठ सहित पकड़ के:—

* पार. गृ. सू. २। कं. २। सू. १४॥

ओं देवस्य त्वा * सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ ¶ ॥१॥ अश्वा० गृ० सू० अ० १ । कं० २० । सू० ४ । य० अ० ५ । मं० २६ ॥

अर्थ :—हे (असौ) अमुक नाम के बालक ! (सवितुः, देवस्य) जगदुत्पादक परमात्मा के (प्रसवे) ऐश्वर्य के लिए (त्वा) मुझे, ग्रहण करता हूं । (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के जैसे (हस्ताभ्याम्) परोपकारार्थ बल और पुरुषार्थ के लिए तथा (पूष्णः) प्राणवायु के (हस्ताभ्याम्) ग्रहण और त्याग के लिए, तेरे (हस्तम्) हाथ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥

इस मन्त्र को पढ़के बालक की हस्ताञ्जलि का जल नीचे पात्र में छुड़ा देना, इसी प्रकार दूसरी वार अर्थात् प्रथम आचार्य अपनी अञ्जलि भर बालक की अञ्जलि में अपनी अञ्जलि का जल भर के अङ्गुष्ठ सहित हाथ पकड़ के :—

ओं सविता ते हस्तमग्रभीत्, असौ ‡ ॥ १ ॥ मानवगृ० सू० पुरुष १ । ख० २२ । स० ५ ॥

अर्थ :—हे बालक ! (ते, हस्तम्) तेरे हाथ को (सविता) परमात्मा ने(अग्रभीत्) ग्रहण कर लिया है ।

इस मन्त्र से पात्र में छुड़वा दे, पुनः इसी प्रकार तीसरी बार आचार्य अपने हाथ में जल भर पुनः बालक की अञ्जलि में भर अङ्गुष्ठ सहित हाथ पकड़ :—

ओं अग्निराचार्यस्तव, असौ § ॥ सा० म० प्र० १ । खं. ३ । मं. १५ ॥

अर्थ :—हे बालक ! (तव) तेरा (अग्निः, आचार्यः) ईश्वर ही आचरण शोधक है।

तीसरी बालक की अञ्जलि का जल छुड़वा के बाहर निकल सूर्य के सामने खड़े रह देख के आचार्यः—

ओं देव † सवितरेष ते ब्रह्मचारी त्वं गोपाय समावृतत् ॥१ ॥

अर्थ :—हे (सवितः, देव) सर्वोत्पादक परमेश्वर देव ! (एषः, ते, ब्रह्मचारी) यह तेरा ब्रह्मचारी (त्वम्, गोपाय) तू रक्षा कर, जिससे कि(सः) वह यह (मा, वृतत्) मेरे प्रति सुन्दर बर्ताव करे ।

इस एक और "तच्चक्षुर्देवहितम्" इस दूसरे मन्त्र को पढ़ के बालक को सूर्यावलोकन करा, बालक सहित आचार्य सभामण्डप में आ, यज्ञकुण्ड की उत्तर बाजू की ओर बैठ के:—

* सामदेव मन्त्र ब्राह्मण में " देवस्य ते " ऐसा पाठ है ।

¶ असौ इस पद के स्थान में बालक का सम्बोधनान्त नामोच्चारण सर्वत्र करना चाहिये ।

‡ असौ इस पद के स्थान में सर्वत्र बालक का नामोच्चारण करना चाहिये ।

§ मानव गृ० सू० ख० २२। सू० ५। यहां आश्व० गृ० सू० अ० १। क० २०। सू० ६ में......"तं गोपाय समामृत" वह पाठ है ।

† पार० गृ० सू० का० २ । सू० १५ ॥

ओं युवा* सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। ऋ० मं० ३। अ० १। सू० ८। मं० ४॥

अर्थ :—(युवा) दृढ़ शरीर वाला (सुवाशाः) स्वच्छ वस्त्रों को धारण करने वाला (परिवीतः) यज्ञोपवीतः) मेखलादि से परिवेष्टित जो ब्रह्मचारी (आ, अगात्) संमुख प्राप्त होता है (सः, उ, जायमानः) वैसी ही स्थिति करता हुआ वह (श्रेयान्, भवति) लोगों का कल्याण करने वाला होता है॥

ओं सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्तस्व असौ† ॥ १ ॥ सा० मं० ब्रा० प्र० २। ख० ६। मं० ॥ १९ ॥

अर्थ –हे बालक! (सूर्यस्य) सूर्यवत् प्रकाशमान इस आचार्य की (आ, वृतम्) प्रदक्षिणा को (अनु, आ, वर्तस्व) अनुकूल होकर अच्छे प्रकार कर ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़े और बालक आचार्य की प्रदक्षिणा करके आचार्य के सन्मुख बैठे। पश्चात् आचार्य बालक के दक्षिण स्कन्ध पर अपने दक्षिण ‡ हाथ से स्पर्श और पश्चात् अपने हाथ को वस्त्र से आच्छादित करके:—

ओं प्राणानां ग्रन्थिरासि मा विस्रसोऽन्तक इदं ते परिददामि; अमुम्॥१॥ मं० ब्रा० १। ६। २०॥

अर्थ —हे नाभि ! तू (प्राणानाम्) प्राण आदि वायुओं की (ग्रन्थिः, असि) गूंथने वाली—गांठ है। हे (अन्तक) परमात्मन् ! इस नाभि को (मा, विस्रसः) मत अपने स्थान से च्युत करो—अपनी जगह से मत डिगाओ और (इदम्) इस बालक के शरीर को (तेरे) ही (परिददामि) अधीन बनाता हूं अर्थात् इसके शरीर के आप ही रक्षक होवें। (अमुम्) इस नाम के बालक को उद्दिष्ट करके मैं यह कहता हूं ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोलने के पश्चात् स्पर्श करे।

ओं अहुर इदं ते परिददामि, अमुम्॥ २ ॥ मं० ब्रा० १। ६। २१॥

अर्थः—हे (अहुर) वायु के प्रेरक परमात्मन्! शेष पूर्ववत् ॥ २ ॥

---

* युवा सुवासा० इत्यर्धर्चेन प्रदक्षिणामावर्तयेत् ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १। क० २०। सू० ८॥

† "असौ और अमु" इन दोनों पदों के स्थान में सर्वत्र बालक का नामोच्चारण करना चाहिये।

‡ दक्षिणेन पाणिना दक्षिणमंसमन्ववमृश्यानन्तर्हितां नाभिमभिमृशेत प्राणानां ग्रन्थिरसीति॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० १०। सू० २८॥ स्पर्श करने की यह सब विधि यहां गोभिलीय गृह्यसूत्र में लिखी है।

इस मन्त्र से उदर पर और:—

ओं कृशन इदं ते परिददामि, असुम् ॥ ३ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । २२ ॥

अर्थ:—हे (कृशन) अग्नि के प्रयोजक ईश्वर ! शेष पूर्ववत् ॥३॥ इस मन्त्र से हृदय:—

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि, असौ ॥ ४ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । २३ ॥

अर्थः—(असौ) हे अमुक नाम के बालक । (त्वा) तुझे (प्रजापतये) ईश्वर की आज्ञा पालन के निमित्त (परिददामि) ईश्वर को ही समर्पित करता हूं । ४ ।

इस मन्त्र को बोल के दक्षिण स्कन्ध और:—

ओं देवाय त्वा सवित्रे परिददामि, असौ ॥ ५ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । २४ ॥

अर्थ:—(देवाय, सवित्रे) सर्वोत्पादक, दिव्यगुणयुक्त परमात्मा के लिये, शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥ इस मन्त्र को बोल के वाम हाथ से बाएं स्कन्ध पर स्पर्श कर के बालक के हृदय पर हाथ धर के:-

*** ओं तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥ ६ ॥ ऋ० मं० ३ । अ० १ सू० ८ । मं० ४ ॥**

अर्थ:—(धीरासः) धीर—अपनी बुद्धि से विचारपूर्वक काम करने वाले (कवयः) पूर्वापरदर्शी (स्वाध्यः) अच्छे ध्यान से युक्त (मनसा, देवयन्तः) मन से देहभाव की कामना करने वाले विद्वान् लोग (तम्) उस दृढ़ाङ्ग ब्रह्मचारी को ही (पूर्व मन्त्रार्द्ध में आया हुआ तच्छब्द से ब्रह्मचारी ही गृहीत होता है) (उन्नयति) उन्नत सद्गुणाधान से ऊंचा करते हैं ॥६॥

इस मन्त्र को बोल के आचार्य, संमुख रह कर बालक के दक्षिण स्कन्ध के ऊपर अपना हाथ धर के फिर हृदय पर अपना हाथ रख के:—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं तेऽस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० २ । कं० २ सू० ॥ १६ ॥

इस प्रतिज्ञामन्त्र को बोले अर्थात् हे शिष्य बालक ! तेरे हृदय को मैं अपने आधीन करता हूं तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल सदा रहे और तू मेरी वाणी को एकाग्रमन हो प्रीति से सुनकर उसके अर्थ का सेवन किया कर और आज से तेरी प्रतिज्ञा अनुकूल बृहस्पति—परमात्मा तुझ को मुझ से युक्त करे, यह प्रतिज्ञा करावे, इसी प्रकार शिष्य भी आचार्य से प्रतिज्ञा करावे कि हे आचार्य ! आपके हृदय को मैं अपनी उत्तम् शिक्षा और विद्या की उन्नति में धारण करता हूं मेरे चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहे आप मेरी वाणी को एकाग्र होके सुनिए और परमात्मा मेरे लिए आपको सदा नियुक्त रक्खे, इस प्रकार दोनों प्रतिज्ञा करें, फिर आचार्योक्ति आचार्य बोले:—

* हृदय देशमालभेत्तोत्तरेण ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १। कं० २० । सू० ९॥

को नामाऽसि* ॥ तेरा नाम क्या है ?

असावहम्भोः ३ ॥ मेरा अमुक नाम है ऐसा उत्तर देवे ॥

आचार्यः—कस्य ब्रह्मचार्य्यसि ॥ तू किसका ब्रह्मचारी है ?

बालक—भवतः ॥ आपका । आचार्य बालक की रक्षाके लिए:—

इन्द्रस्य ब्रह्मचार्य्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तवासौ § ॥

अर्थः—(असौ) हे बालक ! तू (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (ब्रह्मचारी, असि) ब्रह्मचारी है (तव) तेरा (अग्निः, आचार्यः) पूजनीय ईश्वर ही आचार्य है—शुद्ध आचरणों का सम्पादक है और उसके पीछे (अहम्) मै भी (तव) तेरा (आचार्यः) आचार्य हूं ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात्—

ओं कस्य ब्रह्मचार्य्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि कस्त्वा कमुपनयते काय त्वा परिददामि ॥ १ ॥ मानव गृ० सू० पु० १ खं० २२ । सू० ५ ॥

अर्थः—हे बालक ! तू (कस्य, ब्रह्मचारी, असि) किस निमित्त ब्रह्मचारी है । (प्राणस्य, ब्रह्मचारी असि) प्राणविद्या के लिए ब्रह्मचारी हुआ है (त्वा) तुझे (कः) कौन (कम्) सुख (उपनयते) पहुंचाता है । केवल, कर्मानुकूल फलदाता ईश्वर । अतः (काय) ईश्वर के लिये ईश्वरानुकूल चलने के लिये (त्वा) तुझे (परिददामि) समर्पित करता हूं ॥ १ ॥

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि । देवाय त्वा सवित्रे परिददामि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि । द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि । सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्यै ॥२॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० २ ॥

१-(प्रजापतये) ईश्वर की आज्ञा-पालन के लिए (त्वा) तुझे (परिददामि) समर्पित करता हूं ॥ २- सवित्रे) (देवाय) सर्वोत्पादक ईश्वर का स्वरूप जानने के लिये (त्वा) तुझे (परिददामि) समर्पित करता हूं ॥ ३-(अद्भ्यः, त्वा, ओषधीभ्यः) जलविद्या के लिए तथा ओषधियों के ज्ञान के लिए (त्वा) तुझे (परिददामि) समर्पित करता हूं ॥ ४-(द्यावापृथिवीभ्याम्) अन्तरिक्ष और पृथिवीस्थ पदार्थों के ज्ञान के लिए (त्वा) (तुझे) (परिदादमि) समर्पित करता हूं ॥ ५-(विश्वेभ्यः, देवेभ्यः) सब अग्नि आदि देवताओंके

---

* " को नामाऽसि " से लेकर इस संस्कार के अंत तक की सब विधि " कस्य ब्रह्मचार्यसि " इस एक मन्त्र को छोड़ कर पार० गृ० सू० क० २ । का० २ के अनुसार है । " को नामाऽसि " इस से पूर्व ' ब्रह्मचारी के दाहिने हाथ को पकड़ कर ' इतना पारस्कर में विशेष है ।

§ असौ इस पद के स्थान में बालक का नामोच्चारण करना चाहिये ।

आनने के लिए (त्वा) तुझे (परिददामि) समर्पित करता हूं। ६-(सर्वेभ्यः भूतेभ्यः, अरिष्ट्यै) सब प्राणियों को निरुपद्रव—शान्ति के लिए (त्वा) तुझे (परिददामि) समर्पित करता हूं॥

इनमन्त्रों को बोल, बालक को शिक्षा करे कि प्राण आदि की विद्या के लिये यत्नवान् हो।

फिर महावामदेव्यगान करके संस्कार मे आई हुई स्त्रियों को बालक की माता और पुरुषों को बालक का पिता सत्कार करके विदा करे और माता, पिता, आचार्य, सम्बन्धी, इष्ट मित्र सब मिलके:—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमानः। आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वी भूयाः॥

अर्थ—हे बालक! आयुष्मान, विद्यावान्, धर्मात्मा, परोपकारी, श्रीमान् हो और वर्ष तक बढ़ता हुआ तू जीता रहे।

इस प्रकार अशीर्वाद देके अपने अपने घर को सिधारें।

इत्युपनयनसंस्कारविधिः।

—:o:—

उपनयन संस्कार *

(प्रमाण भाग)

अत्र प्रमाणानि

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्॥१॥ गर्भाष्टमे वा॥२॥ एकादशे क्षत्रियम्॥३॥ द्वादश वैश्यम्॥४॥ आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालः॥५॥ आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति॥६॥

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र अ० १। क० १९। सू० १—६ का प्रमाण है, इसी प्रकार पारस्करादि ‡ गृह्यसूत्रों का भी प्रमाण है।

अर्थः—जिस दिन जन्म हुआ हो अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो उससे आठवें वर्ष मे ब्राह्मणपदाधिकारी† बालक का जन्म वा गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय-पदाधिकारी और जन्म वा गर्भ से बारहवे वर्ष में वैश्यपदाधिकारी बालक का यज्ञोपवीत करें, तथा ब्राह्मण-पदाधिकारी के सोलह, क्षत्रिय-पदाधिकारी के बाईस और वैश्य पदाधिकारी बालक का चौबीस से पूर्व पूर्व

---

* उप नाम—समीप, नयन—प्राप्त करना अर्थात् विधि से आचार्य के वा अग्नि के समीप प्राप्त करना।

‡ पार० गृ० सू० का० २। सूत्र १—२॥

† स्वर्गस्थ स्वामी दर्शनानन्द सरवस्ती के ग्रन्थसंग्रह के आधार पर ब्राह्मणादि के शब्द के साथ "पदाधिकारी" शब्द लगाये गये हैं, जो कि युक्त हैं।

यज्ञोपवीत होना चाहिये, यदि पूर्वोक्त काल में इनका यज्ञोपवीत न हो तो पतित माने जावें ॥

ब्रह्मवर्चस कामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे । मनु० २-३७ ॥

यज्ञोपवीत का समय—उत्तरायण सूर्य और:—

वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत् । ग्रीष्मे राजन्यम् । शरदि वैश्यम् । सर्वकालमेके ॥

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है ।

अर्थः—ब्राह्मण-पदाधिकारी बालक का वसन्त, क्षत्रिय-पदाधिकारी बालक का ग्रीष्म और वैश्य-पदाधिकारी बालक का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत करे अथवा सब ऋतुओं में उपनयन होसकता है और इसका प्रातःकाल ही समय है ॥

पयोव्रता ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः ॥

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है:—

जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो उससे तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालक को कराना चाहिये, उन व्रतों में ब्राह्मणपदाधिकारी बालक एक वार वा अनेक वार दुग्धपान, क्षत्रियपदाधिकारी बालक (यवागू) अर्थात् यव को मोटा दल के गुड़ के साथ पतली जैसी कढ़ी होती है वैसा बनाकर पिलावें और (आमिक्षा) अर्थात् जिसको श्रीखण्ड वा सिखण्ड कहते है जो दही चौगुना दूध एकगुना तथा यथायोग्य खांड केशर डाल के कपड़े से छानकर बनाया जाता है उसको वैश्य-पदाधिकारी बालक पी के व्रत करे अर्थात् जब जब बालकों को भूख लगे तब तब तीनो वर्णों के पदाधिकारी बालक इन तीनों पदार्थों ही का सेवन करें अन्य पदार्थ कुछ न खावें पीयें ।

उपनयनसंस्कारसंबंधी व्याख्याभाग

आजकल जब लड़की वा लड़का पढ़ने के लिये स्कूल में पहिली वार जाता है तो उसको दाखिल वा प्रवेश होना कहते हैं । लड़के का नाम जबतक हैडमास्टर रजिस्टर में न लिखले तबतक दाखिला मुकम्मिल (पूर्ण) नहीं होता । जिस दिन लड़का स्कूल में जाता है उसी समय उसका नाम स्कूल-रजिस्टर (पत्रक) में लिख लिया जाता है । आजकल पढ़ने का स्थान (स्कूल) पृथक् वा दूर होता है और रहने का दूर । लड़का घर में मां बाप के यहां

---

§ यह मनुस्मृति का वचन है कि जिसको शीघ्र विद्या बल और व्यवहार करनेकी इच्छा हो और बालक भी पढ़ने में समर्थ हुए हों तो ब्राह्मण के लड़के का जन्म वा गर्भ से पांचवें, क्षत्रिय के लड़के का जन्म वा गर्भ से छठे और वैश्य के लड़के का जन्म वा गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करें, परन्तु यह बात तब संभव है कि जब बालक की माता और पिता का विवाह पूर्ण ब्रह्मचर्य के पश्चात् हुआ होवे, उन्हीं के ऐसे उत्तम बालक श्रेष्ठ बुद्धि और शीघ्र समर्थ बने वाले होते हैं जब बालक का शरीर और बुद्धि ऐसी हो कि अब पढ़ने से योग्य हुआ, तभी यज्ञोपवीत करा देवें । (देखो संस्कारविधि)

रहता और कुछ काल के लिये स्कूल में आचार्य्य (हैडमास्टर वा प्रिन्सिपल) के यहां दिन में चला आता है।

पुराने समय में विद्यालय में जाने के स्थान में "बालक का विद्यालय के मुख्याध्यापक वा आचार्य के पास जाना", यह कहने की शैली थी। आजकल भी बालक विद्यालय में जाकर दाखिले के लिये हैडमास्टर वा प्रिन्सिपल के पास ही जाता है, पर कहने में यही आता है कि वह स्कूल (विद्यालय) में गया।

पुराने समय में स्कूल में गया, इसके स्थान में यह कहते थे कि बालक का "उपनयन" हुआ, अर्थात् वह आचार्य्य के पास गया। प्रयोजन दोनों बातों का एक ही है पुरानी शैली कहने की अधिक भावपूर्ण है। जो अभिप्राय आज स्कूल में जाने से समझा जाता है, पुराने समय में वही "उपनयन" से समझा जाता था।

आजकल दाखिले के लिये ज़रूरी है कि हैडमास्टर स्वयं उससे पूछकर उसका नाम एक रजिस्टर (पत्रक) में लिखले। पुराने समय के भी इसी प्रकार की रीति थी पर उस समय में कागज़ (पत्र) के बने हुए रजिस्टर (पत्रक) में नाम लिखने के स्थान में आचार्य्य अपने मन में पूछकर धारण करता था और साथ ही बालक को कहता था कि वह भी आचार्य्य का नाम अपने मनरूपी पत्रक में धारण कर ले। पुराने समय में यह कार्यवाही इस प्रकार होती थी—

(आचार्य्य)–तेरा नाम क्या है ? (बालक)–देवदत्त।

(आचार्य्य)–तू किसका ब्रह्मचारी है ? (बालक)–आपका।

पत्रक के पत्र फटजाते हैं, गुम होजाते हैं। मनरूपी पत्रक मरणपर्यन्त कहां जासक्ते हैं ! आजकल बालक का घर पृथक् दूर और विद्यालय घर से दूर और पृथक् होता है।

पुराने समय में अपने ही ग्राम के बाहिर जहां विद्यालय होता था उस विद्यालय के समीप ही बालक के रहने का स्थान भी होता था, जैसे कि आजकल यूरोप के बोर्डिङ्ग–स्कूल होते हैं। उस पुराने समय में ग्राम ग्राम में बोर्डिङ्ग–स्कूल (गुरुकुल) होते थे जैसा कि मनुस्मृति से विदित होता है और जिस प्रकार ब्रह्मा देश में आजतक भी ग्राम ग्राम में गुरुकुल हैं। आज भारतवर्ष में प्रायः बालक स्कूल मे जाते समय ऐसे घबड़ाते हैं जैसे पशु बाड़े में जाते हुए; कारण यह कि बच्चों के मन में माता पिता यह संस्कार डालते ही नहीं और न उनको अनुभव करा सकते हैं कि जिस प्रकार खेल कूद और रोटी खाना तेरे लिये स्वाभाविक है उसी प्रकार विद्याप्राप्ति करना भी स्वाभाविक है। खेल कूद की जगह में बच्चे रुचिपूर्वक जाते हैं पर स्कूलों में नहीं। यूरोप से सभ्य देशों में अनेक विद्वानों के प्रयत्न से अब वह दिन आगया है कि बच्चों को स्कूल रोचक प्रतीत होने लगे हैं। भारतवर्ष में बच्चे आजकल गुरु से भय खाते हैं, यूरोप, अमेरिका में गुरु आज मित्रवत् व्यवहार बच्चों से करते हैं जिससे बालकों को डर वहां नहीं रहा। पुराने समय में उपनयन अर्थात् गुरु के पास जाने की रुचि दृढ़ करने के लिये बाजे आदि बजाये जाते थे ताकि बच्चा इसको आनन्द की बात समझे।

यद्यपि यूरोप में और तो बहुत कुछ सुधार किया जा चुका है, परन्तु यदि वह उस दिन जब कि बच्चे को गुरु के पास भेजते हैं बाजे भी बजायें और मिठाई आदि बांटने से उत्सव करें तो वे स्वयं प्रतीत करेंगे कि इससे बालक के हृदय में पूर्ण आनन्द उपलब्ध हो सकेगा, अस्तु। पुराने समय में तो यह बात उद्देश्य को समझ की जाती थी। आज भारत में आर्यसन्तान बाजे बजाने और लड्डू बांटने में मर्यादा से इतनी बढ़ गई है कि काश्मीरी पण्डितों में विवाह के समान इस संस्कार का खर्च होता है।

जब सात वर्ष के बालक को पता लगता था कि मेरा यह संस्कार बाजों गाजों के साथ होने वाला है तो इन बातों से उसके मन पर विद्या पढ़ने के लिये, गुरु के यहां जाना, एक बहुत उत्तम और रोचक बात मालूम होती थी। वह बालक तो पुराने समय में उपनयन-संस्कार से दो तीन दिन पहिले ही रात को स्वप्न में सहर्ष गुरु के पास पहुंच जाता होगा। विद्याप्राप्ति के लिये उसकी रुचि कितनी प्रबल की जाती थी और इसका उत्तम फल यह होता था कि बालक सदैव के लिये विद्याप्रिय होजाते थे। यूरोप के जितने भी महान् पण्डित हुये हैं उन सबके जीवनचरित्र बतला रहे हैं कि विद्या-प्राप्ति के लिये एकमात्र साधन उनके पास यही था कि उनके मन में तीव्र इच्छा विद्याप्राप्ति की विद्यमान रहती थी। यह तीव्र इच्छा ही पुराने समय में इस देश के अनेक ऋषि, मुनि बनाया करती थी।

पुराने समय में प्रवेश के दिन ही बालक प्रत्यक्ष अनुभव कर लेता था कि गुरु तो मेरा पिता समान स्नेही है क्योंकि गुरु उसको प्रेम से सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहिनाता था। फिर यज्ञोपवीत बालक धारण करता था और जिस प्रकार बच्चे चांद (मेडल) फीता आदि धारण करने से प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार न केवल वह प्रसन्न ही होता था किन्तु उसे विद्याचिह्न समझता हुआ आदरपूर्वक धारण करता था जिससे मन में न केवल विद्याप्राप्ति की ही रुचि उत्पन्न होती थी प्रत्युत बलप्राप्ति और सदाचार की भी, क्योंकि यज्ञोपवीत इन तीनों नियमों का सूचक है। पुराने समय में इस संस्कार के अवसर पर एक अति उपयोगिनी शिक्षा दी जाती थी जिसकी महिमा का गीत गाते हुए यूरोप के समस्त महाविद्वान् थकते नहीं और जिस नियम का शिक्षण यूरोप में बाल्यपन से लेकर बी० ए० क्लास तक रूपान्तरों में देना वहां के महानुभाव अपना कर्तव्य समझते हैं, वह आधारभूत नियम क्या है? वह "सेल्फरिलायंस" वा स्वाश्रय होने का नियम है। इसकी व्याख्या करते हुये यूरोप के पण्डित बतलाते हैं कि वही विद्यार्थी उन्नति कर सकता है जो मन में जान ले कि मैं सब बड़े और उत्तम काम कर सकता हूं वा कर सकूंगा अथवा उत्तम विद्या प्राप्त करने की मुझ में शक्ति है। जिस विद्यार्थी को अपने कर सकने की शक्ति वा धृति का पता नहीं वह उन्नति कर ही नहीं सकता। पुराने ऋषि इस गूढ़ मन्त्र का पाठ सात वर्ष के बच्चे से एक वार नहीं, किन्तु पांच वार इसी दिन करवाते थे और बच्चे के हृदय में उन्नति करने का बीज जमता हुआ चला जाता था जिस समय वह 'तत् शकेयम्' पांचवार कहता हुआ आहुति देता था। वह ऋषियों का समय भारत में अब नहीं रहा, वह उद्देश जो पुराने समय पूर्ण होता था आज उसे भूले हुये हैं।

ईश्वर वह दिन शीघ्र लावे जब कि समस्त भारतसन्तान इस संस्कार को पुनः सार्थक कर सके। संस्कारविधि में जो आयुसम्बन्धी लेख है उससे यह सिद्ध होता है कि उपनयनवालों की आयु इनमें से कोई हो सकती है।

वर्णाधिकारी	गर्भ से वा जन्म से वर्ष	पतित होने की अवधि
ब्राह्मणपदाधिकारी	५, ८	१६
क्षत्रियपदाधिकारी	६, ११	२२
वैश्यपदाधिकारी	८, १२	२४

इस पर कोई आशङ्का कर सकता है कि ब्राह्मणपदाधिकारी बालक के लिये यदि पांच वर्ष का समय नियत किया है तो क्षत्रियपदाधिकारी के लिये छः वर्ष और वैश्य-पदाधिकारी के लिये आठ का क्यों? उसके उत्तर मे हम कहेंगे कि जिन बच्चे के संस्कार चारों वर्ण के बालकों में उत्तम होंगे वह अतितीव्र बुद्धि वाला होने से छः वर्ष में ब्राह्मण-पदाधिकारी बालक समझा जायगा, इत्यादि जान लेना चाहिये। इसीलिये मनु वा सूत्रकारों ने जो न्यूनाधिक मर्यादा आयु की रक्खी है वह उचित है। कई कारणों से बच्चे पढ़ने से रहजाते हैं, राजदण्ड के अतिरिक्त समाज दण्ड का होना कि "अमुक" अवस्था तक जिसने कुछ भी अभ्यास नहीं किया उसको पतित समझना चाहिये, यह भी अनुचित नहीं। परन्तु ऐसे पतितों की सन्तान पतित नहीं होसकती अर्थात् उनको उपनयन का अधिकार होगा।

यज्ञोपवीत का समय उत्तरायण काल मे होना इसलिये है कि यह बुद्धि की उन्नति करने वाला कर्म है और उत्तरायण काल में शारीरिक बल की अपेक्षा मानसिक बल की वृद्धि होती है यह सुश्रुत के उस लेख से पाया जाता है जो हम निष्क्रमण-संस्कार * में दे चुके हैं

ब्राह्मण-पदाधिकारी का वसन्त ऋतु मे, क्षत्रिय-पदाधिकारी का ग्रीष्म में, और वैश्य-पदाधिकारी का शरद् ऋतु मे यज्ञोपवीत करने का जो विधान है वह नियम टेकनिकल स्कूल अर्थात् विशेष कर्म का शिक्षण देने वाले विद्यालयों की दशा में हो सकता है। तथा ऋतुओं मे वसन्त ब्राह्मण समान, ग्रीष्म सहनशील क्षत्रियसमान, और शरद् वैश्य समान रसवृद्धिकारक हैं और उस उस अंश में उस उस स्वभाव को जागृत करने में सहायक हैं।

जिस मनुष्य मे शांति आदि गुण हैं क्रोध नहीं, वह वसन्त ऋतु से उपमा रखता है, जब कि सर्दी गर्मी समदशा में होती है। इसलिये वसन्त में ब्राह्मण-पदाधिकारी को यह संस्कार करना शारीरिक तौर पर अधिक अनुकूल है। यह ऋतु सबको कुछ कुछ ब्राह्मण बना देती है।

ग्रीष्म ऋतु में ताप प्रधान होता है क्षत्रिय-पदाधिकारी मनुष्य में ताप वा तेज स्वाभाविक होता है इसलिये उसके भी अनुकूल जो यह ऋतु है उसमें उसका संस्कार करना अधिक अनुकूल है। शरद् ऋतु में चांद का राज्य होने से धान्य तथा ईख आदि रसयुक्त पदार्थ अधिक उगते हैं। इसलिये इस ऋतु में जो रसप्रधान है संस्कार करना उसके अधिक अनुकूल

* सुश्रुत संहिता सूत्रस्थान अ० ६ वाक्य १९.

हो सकता है, जो वैश्यस्वभाव हो तथा वैश्य-पदाधिकारी है, वह विदित रहे कि शरद् ऋतु उत्तरायण में नहीं।

यह प्रभाव बहुत थोड़े पड़ते हैं, इसी लिये दूसरा मत यह भी है कि सब ऋतुओं में सब का संस्कार हो सकता है। इसलिये जो साधारण शिक्षण देने के लिये विद्यालय हैं उनमें यह नियम उपयोगी है। फिर लिखा है कि ब्राह्मणपदाधिकारी लड़का इस संस्कार से तीन वा एक दिन पूर्व दूध का भोजन करे और क्षत्रियपदाधिकारी गुड़ वाले दलिये का और वैश्य-पदाधिकारी श्रीखण्ड का जो कि चार भाग दही, एक भाग दूध, यथाप्रमाण खांड और केशर डाल छान कर बनाया जाता है, भिन्न भिन्न स्वभाव रखने के कारण तीन प्रकार के भोजनों का विधान ठीक है। जो मननस्वभाव और तीव्र बुद्धि के बालक होते हैं उनको दूध का सेवन अधिक अनुकूल है, जो शूरवीर बच्चे होते हैं उनको गुड़ वाला दलिया और जो हिसाब मे बुद्धि लगाने वाले तथा धनोपार्जन मे अधिक रुचि रखते हैं उनके लिये श्रीखण्ड अधिक अनुकूल होता है। इन पदार्थों के गुण हम नीचे लिखते हैं—

(१) गाय का दूध—विशेष करके रस और पाक मे मधुर है, शीतल है, स्तनों मे दूध बढ़ाने वाला, स्निग्ध, वात पित्त और दुष्ट रुधिर का नाशक (रक्तपित्तनाशक) दोष, धातु, मल और छिद्रो मे किञ्चिन्मात्र क्लेदकारी भारी, जो प्राणी दूध को सदैव पिया करता है उसके बुढ़ापे को तथा यावन्मात्र रोगों को गोदुग्ध शांत करता है।

(२) (क) जौ—मेधावर्द्धक, बलकारी, मूत्र निकालने वाला।

(ख) गुड़—वृष्य, भारी, वातनाशक, कफकर्त्ता।

(३) (क) गोदुग्ध का दही—रुचिकारक, खट्टा, पवित्र, दीपन, हृदयहितकारी, पुष्टिकारक, वातनाशक।

(ख) खांड–वृष्य, नेत्रहितकारी, बृंहण, शीतल, वातपित्तनाशक बलकारक वमननिवारक।

(ग) केशर–वर्ण उज्ज्वलकर्त्ता, वमननाशक, व्रण तथा कृमिनाशक।

इस व्रत का यह लाभ होगा कि उनका पेट हलका होजावेगा और दिमाग में जो तमोगुण वा तन्द्रा होगी वह नष्ट होगी।

संस्कार से एक दिन पहिले बालक को भोजन के स्थान में दूध, जौ का दलिया व श्रीखण्ड खिलावें, पानी पीना हो तो इस भोजन के साथ न दिया जावे कुछ समय ठहर कर पीवे। यह भोजन अनेक वार यथारुचि कर सकते हैं।

दूसरे दिन स्नानादि के पश्चात् जब हवनकुण्ड पर बैठे तब मोहनभोग (हलवा) वा और कोई मिठाई खाकर बैठे। यह इसलिये लिखा है कि बालकों को स्नान करते ही विशेष भूख लग आती है कारण यह कि न्हाने से रुधिर की गति बलवान् होने से जठराग्नि को प्रदीप्त करती है।

आजकल स्कूल में प्रविष्ट करते समय बालक का पिता हेडमास्टर से बच्चे का नाम दाखिल करने को निवेदन करता है। पुराने समय में यह निवेदन बालक से ही कराया जाता था, यतः उसके मन में विद्याभ्यास की रुचि बढ़े। इस संस्कार की वास्तविक क्रिया बालक के इस वचन से आरम्भ होती है कि:—

ब्रह्मचर्यमागाम्—वेदाभ्यास के नियम को मैं प्राप्त होऊं॥ ब्रह्मचार्यसानि-ब्रह्मचारी होऊं।

ब्रह्म वेद का नाम है और वेद सत्यविद्या को कहते हैं। यूरोप आदि देशों में सत्यविद्य पढने के लिये ही प्रायः सब बालक सरकारी स्कूलों में प्रविष्ट होते हैं।

जब वेद के अर्थ सत्यविद्या के हैं तो मानना पड़ेगा कि वह भी वेदार्थ प्राप्त कर रहे हैं कि वह वेद को स्वाभाविक रूप में नहीं पढते किन्तु रूपांतर में। संस्कृत शब्दों में वा वेदमन्त्रों द्वारा जो ज्ञान मिलता है वह अपने प्रथम और स्वाभाविक रूप में समझना चाहिये।

अंग्रेजी आदि शब्दों द्वारा जो सत्यविद्या मिलती है उसके अर्थस्वरूप में तो कुछ अन्तर नहीं किन्तु शब्दरूप में अन्तर है। यह सत्य है कि वेद की अनेक विद्याओं में से कई विद्यायें यूरोप में प्रचलित हैं, परन्तु पूर्णरूप से सब विद्यायें नहीं ब्रह्मविद्या अभीतक वहां नहीं है।

बालक इसके कहने पर कि मैं ब्रह्मचारी बनूं, गुरु उसको ब्रह्मचारियों के वेश (वरदी) पहिरने को देता है और साथ ही उसका प्रेम बालक से प्रकट होता है, क्योंकि बच्चे को जो मिठाई वा वस्त्रादि प्रेम से दें उनसे मन से प्यार करने लग जाते हैं। ब्रह्मचारियों के वस्त्र किन किन गुणोंवाले हों उसका वर्णन यहां पर उस मन्त्र में किया गया है जिसको बोलकर आचार्य बालक को सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र पहिनाता है, जो कि वस्त्र स्वास्थ्य, दीर्घजीवन, देहबल और इन्द्रियों के तेज में सहायक हों।

इसके पश्चात् बालक आचार्य्य के सम्मुख बैठे और आचार्य्य यज्ञोपवीत (सर्टिफिकेट दाखिला) वायें स्कन्ध के ऊपर दाहिने हाथ के नीचे कटि तक धारण करावे। और यह वचन बोले कि "ओं यज्ञोपवीतम्" इत्यादि।

बालक ने विद्यालय में दाखिला (प्रवेश) चाहा था उसको स्वीकार करते हुए आचार्य्य ने पहिले ब्रह्मचारी को वस्त्र धारण कराये, फिर दाखिले का सर्टिफिकेट तागे के रूप में उसके गले में वस्त्रों के ऊपर डाल दिया। जहां एक तरफ यह दाखिले के सर्टिफिकेट (प्रवेशप्रमाण-पत्र) का काम देवे वहां ब्रह्मचारी को प्रथम सर्वहितकारी काम, दूसरे बल (शारीरिक), तीसरे तेज (विद्या), इन तीन बातों की उन्नति करने की सूचना देता रहे। यह तीन उद्देश्य पूर्वकाल से चले आते हैं और ईश्वर से स्वभावसिद्ध उपदिष्ट है ऐसा जानना चाहिये।

पश्चात् आचार्य्य बालक को अपनी दाहिनी ओर साथ बैठाकर ईश्वरोपासना तथा साधारण होम करे। बच्चे का कितना बड़ा मान आचार्य्य की ओर से किया जाता था जब कि वह उसको अपने दाहिने हाथ बराबर बिठलाकर होम करता था, यह कर्म आचार्य्य के पितावत् प्रेम को बोधन कर रहा है। फ्रोबेल और मोन्टेसोरी से शिक्षणशास्त्री ही इस मान की

महिमा दर्शा सकते हैं। साधारण होम के पश्चात् पंद्रह आहुति बालक के हाथ से दिलाने का विधान है। इनमें से पूर्वलिखित पांच मन्त्रों द्वारा आहुतियों को संस्कारसम्बन्धी विशेष आहुतियां समझनी चाहियें।

बालक कहरहा है कि हे परमपूज्य ईश्वर! मैं ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करूंगा यह आप से प्रार्थना करता हूं। आपकी कृपा से "तत् शकेयम्" उस व्रत (नियम) के पालन में समर्थ होऊं। उस व्रत का फल सम्पत्ति रूप से मुझे मिले। मैं असत्य कार्य्यों को छोड़ कर सत्य के आधार ईश्वर को प्राप्त होऊं। इस मंत्र में प्रथम ईश्वर को व्रतपति कहा गया है। सचमुच ईश्वर सत्य हृदय से प्रार्थना करने वाले प्रार्थी को अपूर्व मानसिक तथा बुद्धिबल प्रदान करते हैं और उसके मिथ्याभिमानरूपी मानसिक रोग आदि को भी दूर करके अन्तःकरण शुद्ध करते हैं।

दूसरे:—व्रतपालन की प्रतिज्ञा बालक करता है, ऐसा करना उसको अपने ऊपर विश्वास करने वाला और उन्नति करने वाला तथा उन्नति करने का अभिलाषी बनाता है।

तीसरे:—वह व्रत अशक्य नहीं, इस बात को वह कह रहा है कि ईश्वरकृपा से कर सकूंगा, स्वात्माश्रयी होने का अद्भुत शिक्षण है।

चौथे:—व्रत का फल धन सम्पत्ति की प्राप्ति है जिससे सर्व व्यवहार तथा कार्य सिद्ध होते हैं। आजकल भी लोग विद्याप्राप्ति का एक उद्देश्य धन प्राप्ति मानते हैं और विद्या सर्व सम्पत्ति की दात्री है यह बात उस समय में भी समझी और मानी जाती थी।

पांचवें:—असत्य त्याग की प्रतिज्ञा है। सत्य के आचरण से अनेक सुख मिलते हैं। सत्य ज्ञान से मानसिक शक्ति और निर्भयता बढ़ती, हिताहित का यथार्थ ज्ञान होने से हित को स्वीकार कर सक्ता है। सत्यभाषण से जनसमाज में विश्वास और मान बढ़ता तथा मन निर्भय रहने से बलवान् होता चला जाता है। सत्य की सदैव जय होती है। सत्य-व्यवहार वा छल कपट से रहित व्यवहार करने वाला यज्ञस्वरूप अर्थात् सर्वहित को साधता है। जिसके मन, वचन और कर्म में सत्य है वह ईश्वर-प्राप्ति का अधिकारी है। वह विद्या नहीं जो सत्य का दर्शन नहीं कराती। विद्यार्थी को एक मात्र सत्य का प्रेमी होना चाहिये।

अन्य चार मन्त्रों में भी यही उद्देश दर्शाया गया है। फिर आचार्य पूर्वाभिमुख और बालक पश्चिमाभिमुख एक दूसरे के सामने बैठें। पश्चात् आचार्य बालक की ओर देखकर मन्त्र का जप करे।

व्याख्या—इसमेंआचार्य यह अनुभव करके कि उसने शिर पर भारी जोखम का काम लिया है, ईश्वर से उसकी सिद्धि के लिये प्रार्थना करता है। आजकल यदि लड़का दाखिल होगया तो उसकी कुछ चिन्ता पीछे नहीं होती। अमुक दिन तक न आवे वा मासिक शुल्क न भेजे तो नाम काट दिया, चिन्ता दूर हुई। परन्तु पुराने समय में जब बालक ने व्रतधारण किया है कि मैं ब्रह्मचर्य पालन करूंगा तो उसके व्रत-पालन में सहायक होना आचार्य का धर्म होता था।

आचार्य का प्रसन्नतापूर्वक सङ्कल्प

जब आचार्य बालक के कल्याण की प्रार्थना जपरूप से करचुका तो बालक कहता है कि हे गुरो ! मैं ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार कर चुका अब आप अपने समीप मुझे रखिये, इस पर आचार्य्य उसका नाम पूछता है और वह नाम बतलाता है फिर आचार्य्य मानो मन में विचार करता है कि यह बालक मेरे पास रहेगा परन्तु मेरे और इसके निर्वाहार्थ भोजन तो चाहिये। आजकल फीस देने की शैली है उस समय भिक्षा देने की रीति थी। पुराने समय में आचार्य्य जानता था कि भोजन की मुझे वा इसको क्या चिंता है जब कि ग्राम निवासी विद्यमान हैं उनका धर्म भिक्षादान करने का है, वे सदैव इस बालक को भिक्षा और विद्यालय को दान आदि देते रहेंगे जिससे हम सब का निर्वाह होता रहेगा।

बड़े बड़े महानुभाव राजा अथवा गवर्नर (शासक) आजकल वर्षा की ही चिन्ता करते हैं। जब वर्षा अपनी ऋतु पर होजाती है तो महाराजे समझते हैं कि अब हमारे कोष खाली नहीं रहेंगे क्योंकि वर्षा से प्रजा सुखी होकर, कर द्वारा हमारे कोष भर ही देगी। उसी प्रकार पुराने समय में आचार्य राजाओं के समान चिन्ता करते थे तो वर्षा की, क्योंकि वे जानते थे कि यदि वर्षा बराबर होगई तो धर्मात्मा आर्य लोग गुरुकुलों को अन्नदान से अतृप्त नहीं रख सकते। आजकल परस्पर विश्वास नहीं है। मास्टर समझते हैं कि मां बाप फीस नहीं देंगे। पुराने समय मे प्रजा पर यह अविश्वास करना मानों व्यर्थ कल्पना करना था। केवल विचार यही होता था कि दुष्काल न पड़ जावे और प्रजा दुखी न हो, इसीलिये उस समय जब कि बालक उसके पास रहने की प्रार्थना करता है तो उसका नाम पूछने के पीछे तीन मंत्रो को, जो जल की महिमा के बोधक है, जिनमें जल को अन्नोत्पादक और फल आदि रसों का कारण कहा गया है, उनका उच्चारण करता हुआ आचार्य्य कह रहा है कि "हे जल ! हमको अन्न द्वारा धारण करो.........हे जल ! तेरे रसयुक्त प्रभाव को हम धारण करें.......हे जल ! तू अन्न की वृद्धि करने वाला है......हम तुम को प्राप्त करें।"

अहो ! क्या उत्तम वचन है यह वचन कहते ही आचार्य बालक की अञ्जलि पानी से भर देता था मानो यह भाव प्रकट कर रहा है कि हे बालक ! जिस प्रकार इस समय मै तेरा हाथ रसों क मूल जल से भरता हूं, परमात्मा करे कि कभी तेरी अञ्जलि भिक्षान्न से खाली न आवे। फिर आचार्य अञ्जलि जल से भरता था, जिसका अभिप्राय यह था कि जिस प्रकार मेरा हाथ अन्न के कारण जल से भर रहा हे उसी प्रकार उत्तम अन्न सदैव मुझे प्राप्त हो। इसके पीछे आचार्य अपनी अंजलि का जल बालक की अंजलि में "ओ३म् तत् सवितुः...." इस मन्त्र द्वारा यह कहता हुआ कि "हम सब मिलकर भोजन चाहते हैं" छोड़ता था। अंजलि का जल बालक की अंजलि में छोड़ने से यह दर्शाना अभीष्ट था कि आचार्य अपने हाथ में आये हुए अन्न को बालक के हाथ में प्रसन्नतापूर्वक देगा आजकल हम देखते है कि किसी पुरोहित को किसी ने गोदान करके देनी है तो पुरोहित यजमान को कहता है कि अंजलि

भर मेरी अंजलि में छोड़ो और साथ ही मुख से प्रतिज्ञा करो। इसका प्रयोजन यह है कि गाय अपनी इच्छा (सङ्कल्प) से दान की जाती है जबर वा दबाव से नहीं जैसा कि यह हाथ का पानी प्रसन्नता से अर्थात् अपने स्वभाव से आप नीचे जाता है, इसी प्रकार मैं अपनी इच्छा से यह काम कर रहा हूं। आजकल भारी दान देते वक्त रजिष्ट्री का कागज़ लिखा जाता है जिसमें रजामन्दी (सङ्कल्प) सूचक शब्द लिखे जाते हैं। इसी भाव को बोधन करने के लिये जल अञ्जलि में भरकर दूसरे की अञ्जलि में छोड़ा जाता है और इसको सङ्कल्प (मरजी से दान) छोड़ना कहते हैं। गुरु भी अपनी अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में छोड़ने से यह प्रकट कर रहा है कि मैं अपने संकल्प से इसकी सहायता अन्न द्वारा करूंगा। जैसे पानी अपना धर्म समझ कर नीचे गिरता है इसी प्रकार मैं अपना धर्म समझ कर इस कर्त्तव्य को पूर्ण करूंगा।

फिर आचार्य बालक की अंजलि को अंगुष्ठसहित पकड़ता है। यदि अंगुष्ठसहित न पकड़े और बालक का अंगुष्ठ ढीला होजाय तो अञ्जलि का पानी उस मार्ग से कहीं गिर जावे, परन्तु आचार्य उस मार्ग से रोक कर बच्चे से उसकी अञ्जलि का पानी किसी पात्र में छोड़ता है, ऐसा करने से मानो वह दर्शा रहा है कि जिस प्रकार यह पात्र तेरे अञ्जलि के जल को, जिस में मेरी अञ्जलि का जल भी मिला हुआ है, सुरक्षित धारण करनेवाला है, इसी प्रकार परमात्मा हम दोनों के संकल्पों की रक्षा करने वाला है। पात्र में जल छोड़ते समय जो जो मन्त्र बोले जाते हैं वे परमात्मा की धारणशक्ति के ही बोधक हैं जिससे भी अन्तिम इस बाह्यक्रिया का अन्तरीय उद्देश विदित होता है।

आजकल जब किसी से कोई प्रतिज्ञा की जाती है तो प्रायः हाथ पर हाथ रखते हैं और ऐसे कर्म को वचन देना (प्रतिज्ञा करना) कहते हैं। वह प्रतिज्ञा प्रसन्नतापूर्वक है, इस भाव को प्रकट करने के लिये यजमान लोग पुरोहितों के हाथ में अपने हाथ का पानी छोड़ते और कहते हैं कि हमने "संकल्प किया"। पानी का हाथ में लेकर छोड़ना तो संकल्प के प्रसन्नतापूर्वक होने को प्रकट करता है और मुख से जो बोला जाता है वह उस व्यवहार को।

आचार्य जिस समय अपनी अञ्जलि का जल शिष्य की अञ्जलि में छोड़ता है उस समय जो मन्त्र बोला जाता है उसका अर्थ यह है कि "हम सब उस श्रेष्ठ भोजन को चाहते हैं, और उसी सेवनीय परमात्मा के सब योग्य पदार्थों को देने वाले नियमरूप भोग्य का उपभोग करें"। इससे स्पष्ट विदित होगया कि गुरु भोजन की ज़रूरत अनुभव करके साथ ही प्रार्थना करता है कि ईश्वर उस भोग को हम सबको प्राप्त करावे और स्वयं प्रसन्नतापूर्वक उस भोग को शिष्य के लिये देने की उसकी अञ्जलि में जल छोड़ने से प्रतिज्ञा कर रहा है।

अतः शिष्य ने जो कहा था कि मैं आपके पास रहना चाहता हूं, उसको मंजूर करते हुए पहिले गुरु ने उसका नाम पूछा, पीछे तीनवार उसकी अञ्जलि में जल भर अपनी में लेकर उसमें से उसकी में छोड़ और फिर उस जल को पात्र में छुड़ाते हुए दृढ़ प्रतिज्ञा की कि मैं तेरे पालन पोषण का भार प्रसन्नतापूर्वक अपने ऊपर लेता हूं। तीन वार

ऐसा करना प्रतिज्ञा की दृढता को प्रकट करता है। क्या हम रोज नहीं देखते कि सरकारी नीलाम (बोली) में तीन वार कहकर नीलाम समाप्त करादी जाती है। फौजी लोग तीन वार की सूचना पाने से कार्य्य आरम्भ कर देते हैं। ऋषियों ने तीन वार की प्रथा इसलिये चलाई मालूम होती है कि प्रत्येक कार्य्य तीन रूप में रहता है अर्थात् मानसिक, वाचिक और कायिक। जब एक वार कहा तो उसका अर्थ यह हुआ कि हम मनसे उसको करने के लिए तैयार हैं, दूसरी वार कहने से यह पाया गया कि वाणी से भी हम तैयार हैं, तीसरी वार कहने के यह अर्थ हैं कि काया द्वारा भी करने को तैयार हैं। कार्य्य का पूर्णरूप तीन वार के कहने से होता है। कोई कहे कि चार या पांच वेर कहने से क्या अधिक दृढता प्रकट न होगी? इसका उत्तर यही है कि कर्म मानसिक संकल्प के रूप में बीजवत् होता है, फिर शाखारूप तब होता जब वाणी से दूसरे को अपना सङ्कल्प दर्शाते हैं फलरूप वा पूर्ण वा अन्तिम रूप मे तब होता है जब काया द्वारा उसको किया जावे। चौथा उसका रूप ही नहीं। पूर्ण वा अन्तिम दशा के पश्चात् फिर उसकी कोई अवस्था क्या होसकती है, इसलिये तीन वार ही प्रतिज्ञा करना पूर्ण प्रतिज्ञा है।

सूर्य्य-दर्शन

फिर मकान के अन्दर से उठकर बाहर आकर गुरु बालक को सूर्य के सामने खड़ा करके स्वयं खड़ा होकर प्रार्थना करता है कि हे ईश्वर! यह तेरा ही ब्रह्मचारी है इसकी मैं रक्षा क्या कर सकता हूं तू ही करेगा और तुझसे सुरक्षित रहकर यह ब्रह्मचारी मेरे प्रति सूर्यसमान विद्यातेज से युक्त होकर कल्याणकारी वा सुन्दर वर्ताव करे।

गुरु, ब्रह्मचारी को अलङ्कार रूप से आदर्श आदित्य बतलाता है। इसीलिये पुराने समय मे उत्तम प्रकार के ब्रह्मचारी "आदित्य" संज्ञक होते थे, शिष्य को सूर्य्य का दर्शन कराने से दो बातो का उपदेश देना अभीष्ट है। प्रथम यह कि जिस प्रकार सूर्य्य तेज से परिपूर्ण है उसी प्रकार तुझे भी विद्या तेज से परिपूर्ण होना है। दूसरे जिस प्रकार इतना बडा महान् तेजस्वी सूर्य्य अपने तेज के पुञ्ज को अपने में ही रख नहीं छोड़ता किन्तु अन्धकारयुक्त पृथिवी को उसका दान देता है, उसी प्रकार तुझे भी विद्यादान से परोपकार करत रहना है।

"तच्चक्षुर्देवहितम्" इस मन्त्र के पाठ से बालक को सौ वर्ष तक जीने और दृढ इन्द्रिय आदि से युक्त रहने का अतीव उपयोगी आयुर्वैदिक आदर्श दर्शाया गया है।

आचार्य की प्रदक्षिणा

सूर्य-दर्शन कराकर आचार्य यज्ञकुण्ड के सन्मुख बैठकर पहिले यह मन्त्र बोले,- "ओं युवा......." जिसका भाव यह है कि दृढ शरीर वाला, स्वच्छ वस्त्रधारी, यज्ञोपवीतधारी जो ब्रह्मचारी सन्मुख है वैसा ब्रह्मचारी ही लोगों का कल्याण करने वाला होता है। इससे ब्रह्मचारी को परोपकारी होने का आदर्श बतलाया गया है, फिर आचार्य बालक का नाम लेकर उसको कहता है कि तू आचार्य की जो विद्या और परोपकार के गुणों में

सूर्य—समान है प्रदक्षिणा को भली प्रकार कर इसको सुनते ही बालक आचार्य की प्रदाक्षिणा कर के उसके सन्मुख आकर बैठ जाता है पुराने समय में गुण स्वीकृति के भाव को प्रगट करने तथा नियम में बंध जाने के लिये प्रदाक्षिणा की जाती थी इसी बात की व्याख्या हम आगे चलकर करेंगे।

पैत्रिक प्रेमबोधक अंगस्पर्श

आजकाल " मेसमेरिज्म " की पुस्तकों में बतलाया जाता है कि शरीर के किसी अंग को यदि दूसरा बलवान् किसी संकल्प से छूएगा तो शारीरिक विजुली हाथ द्वारा छूने वाले के शरीर में प्रवेश करके तद्वत् प्रभाव पहुंचाएगी। हम प्रतिदिन देखते हैं कि यदि बालक ऊंघ रहा हो वा सोना चाहता हो तो उसको थपक कर वैसी ही लोरी गा वा सुना कर सुला देते हैं। रक्षा के भाव को लेकर गुरु विद्यार्थी के नाना अंगों का अपने हाथ से इस अवसर पर स्पर्श करता हुआ ईश्वर से उनके स्वास्थ्य की प्रार्थना करता है वह पहिले उसके दक्षिण स्कन्ध को, जो बल का मूल है, स्पर्श करके, फिर उसकी नाभि, उदर, हृदय, वामस्कन्ध का स्पर्श करता हुआ पुनः हृदय पर हाथ रखकर कहता है कि तेरा हृदय मेरे अनुकूल रहे, तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल रहे और तू मेरी वाणी एकाग्र होकर सुना कर और बृहस्पति ईश्वर ने तुझको मुझ से युक्त किया है। विवाहसंस्कार में इसी मन्त्र से पत्नी का हृदय स्पर्श किया जाता है जिसका भाव यह होता है कि हम दोनों प्रेमपूर्वक व्यवहार करें, यूरोप के शिक्षणशास्त्री भी इस आदर्श की स्तुति करेंगे।

यह गुरु की की आज्ञा-पालन की उत्तम शिक्षा थी जिसके विना कोई विद्यार्थी कभी उन्नति नहीं कर सकता और किसी विद्यालय की व्यवस्था गुरु-आज्ञा पालन के बिना रह नहीं सकती। इसी प्रकार बालक प्रतिज्ञा करता और आचार्य से उसके अनुकूल रहने की आशा रखता है, जैसा कि संस्कारविधि के इन शब्दों से प्रकट होता है कि " इसी प्रकार शिष्य भी आचार्य से प्रतिज्ञा करावे। "

इस प्रकार जब प्रतिज्ञा होचुकी तब आचार्य बालक से पूछता है कि तेरा नाम क्या है और तू किसका ब्रह्मचारी है। बालक जब उत्तर दे चुके तो फिर आचार्य बालक की रक्षा के लिए उसका नाम लेकर यह कहता है " इन्द्रस्य " जिसका भाव यह है कि तू परमेश्वर का ब्रह्मचारी है और वही तेरा आचार्य है और उसके पीछे मैं भी तेरा आचार्य हूं।

नाना विद्याएं

इस मन्त्र में (१) बतलाया गया है कि प्राणविद्या की प्राप्ति के निमित्त बालक को यत्नवान् होना चाहिए। (२) दूसरी बात यह दर्शाई गई है कि केवल कर्मानुकूल फल प्रदाता ईश्वर ही सुख देने वाला है। (३) तीसरी बात यह है कि ईश्वराज्ञानुकूल ही चलना चाहिये।

प्राणरक्षा के महत्व को आज शिक्षणप्रणाली के अन्वेषणकर्त्ता मुक्तकण्ठ से कह रहे हैं कि स्कूलों के पढने वाले विद्यार्थी प्रायः उन नियमों को बहुत कम जानते हैं जिनसे प्राणरक्षा होती है। भोजन, शयन आदि अनेक उपयोगी विषयों का (जो प्राणरक्षा के साधन हैं) जिनसे

वे अनभिज्ञ होते हैं उनका "सेनेटरी प्राइमर" आदि आरोग्य शास्त्र की लघु पुस्तकें कुछ कुछ बोध कराती हैं।

पुराने समय में प्राणविद्या को, जिसका दूसरा नाम 'आयुर्वेद' है, बहुत महत्व की विद्या समझते थे और विद्यार्थी अनेक विद्याओं में इसका स्थान मुख्य मानते थे। शारीरिक उन्नति का एकमात्र साधन यही विद्या है।

दूसरी बात जो बतलाई गई कि "ईश्वर कर्मानुकूल फलप्रदाता है" उनको धर्मात्मा तथा पुरुषार्थी बनाने वाली है। तीसरी बात कि ईश्वर-आज्ञानुकूल चलना चाहिये, वह बड़ी ही उपयोगी और सर्व प्रकार की उन्नति की साधिका है। उन्नति करना क्या है? केवल ईश्वर की आज्ञानुकूल चलना ही। इस भाव को यूरोप के पण्डित और प्रकार से कहते हैं। वे कहते हैं कि "सृष्टिक्रम के अनुकूल चलो"। पर सृष्टि क्या है? ईश्वर का कार्य और सृष्टिक्रम, ईश्वर इच्छा का रूप। वे ऋषि जिन्होंने कहा था कि ईश्वर-आज्ञानुकूल चलो, वे वर्तमान यूरोप के पण्डितों से एक दर्जा आगे बढे हुए थे। यह अभी सृष्टिनियमों के अनुकूल चलने में उन्नति बतला रहे हैं, वे इन नियमों को सृष्टि के नियन्ता ईश्वर की आज्ञाएं हैं, ऐसा अनुभव कर चुके थे, और वेद चूंकि सृष्टिनियमों के बोधक हैं, इसीलिये वे उपनयन-संस्कार का एक महान् उद्देश्य वेद का पढना भी समझते थे।

(२) (क) इस मन्त्र में बतलाया है कि ब्रह्मचारी इस बात का अनुसन्धान करे कि ईश्वर क्यों प्रजापति है? इस अनुसन्धान से वह पूर्ण आस्तिक बन सकेगा और अर्थशास्त्र व 'पोलिटिकल इकोनौमी' विद्या का भी मर्म जान सकेगा।

(ख) ईश्वर क्यों सर्व का उत्पादक है, इसको भी वह समझता जावे ताकि उसकी निष्ठा ईश्वर में स्थिर हो और "एवोल्यूशन" सृष्टि-उत्पत्ति वा ब्रह्माण्ड रचना के गूढ सिद्धान्त को समझ कर, जहां मानसिक तुष्टि प्राप्त करे वहां ईश्वरसत्ता का ज्ञान अनुभव करे*।

(ग) जलीय शास्त्र में प्रवीण होने के लिये यत्न करे। जल का स्वरूप, उसका उपयोग जलों के भेद, वर्षा, बादल, कोहरा, ओस, बरफ इत्यादि सब बातें जाने। नदी, नद, समुद्र का ज्ञान प्राप्त करे। कूप, तालाव, बावली, झरना, नल, इत्यादि सब का ज्ञान प्राप्त करता हुआ इनके उपयोग को भी पूर्ण रीति से जाने। शुक्रनीति ग्रन्थ पढे।

(घ) वनस्पति शास्त्र का ज्ञानी होवे। अन्न, घास, वृक्ष, फूल, फल, लता ओषधि आदि की उत्पत्ति, रक्षण तथा वृद्धि के लिये कृषिविद्या, कृषिकर्म और अनेक विद्याओं तथा साधनों का उपयोग करे।

(ङ) द्युविद्या का ज्ञानी होवे। द्युविद्या में आकाशस्थ सूर्य चांद तारे आदि चमकने वाले ग्रह आदि का समावेश होता है। ज्योतिःशास्त्र का पण्डित बने।

---

* सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिये "सृष्टिविज्ञान" पुस्तक पाठकों को अवश्य पढ़नी चाहिए। लेखक

(च) पार्थिवविद्या–पृथिवी, उसके भेद, शक्ति भेद, चांदी, सोना, पत्थर, कोइला, रत्न तथा अनेक आकरज पदार्थों के गुण और उपयोग को जाने।

(छ) देवविद्या–अग्नि, विद्युत्, वायु, वाष्प आदि अनेक दिव्य गुण युक्त भौतिक पदार्थ सम्बन्धी पदार्थविद्या तथा रसायनशास्त्र का ज्ञानी बने। देव विद्वान् लोगों की उन्नति के साधनसम्बन्धी विद्या को, जिसे "समाजशास्त्र" वा "सोशियालोजी" कहते हैं, जाने तथा इतिहास (हिस्ट्री) आदि का भी पण्डित हो और इन्द्रियों तथा मन का समावेश भी देव शब्द में होता है। इसलिये तत्सम्बन्धी विद्या को जाने।

(ज) मानवधर्म अर्थात् मनुष्य का कर्तव्य क्या है, देश, काल, अवस्था, वर्ण आदि भेद से सर्व कर्तव्यों और सामान्य विशेष सर्व प्रकार के धर्मों (कर्तव्यों) को जाने। धर्मशास्त्र का पण्डित बने और धर्माचरण से प्राणियों के लिये शांति फैलावे। अपने को ओर सब को परम सुख देने वाला धर्माचरण है ऐसा जाने और मनन आदि द्वारा निश्चय करे। शांति फैलाने वाला एकमात्र धर्मशास्त्र वा धर्म की विद्या ही है। धर्मात्मा बनकर मनुष्य-जन्म को सफल करे।

यज्ञोपवीत सम्बन्धी विवरण

यज्ञोपवीतसंस्कार में गुरु पहिले बालक को वस्त्र पहिनाता है फिर यज्ञोपवीत उसके ऊपर डालता है। यज्ञोपवीत विद्याचिह्न है इसलिये पुराने समय में ब्रह्मचारी अङ्गरखादि के ऊपर धारण करके रखते होंगे। पारसी लोग व रोमनकैथलिक पादरी लोग भी अपना अपना यज्ञोपवीत वस्त्र के ऊपर ही धारण करते हैं। महाभारत में एक स्थल पर लिखा है कि—

ततः शुक्लांवरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान्।
शुक्लकेशः सितश्मश्रुः शुक्लमाल्यानुलेपनः॥

इस में वृद्ध द्रोणाचार्यजी के श्वेत वस्त्रों पर श्वेत यज्ञोपवीत का वर्णन है। आजकल जो रीति चलगई है कि यज्ञोपवीत को कभी कुर्ते आदि किसी वस्त्र के ऊपर नहीं पहनना, यह रीति पहिले न थी, इतना ही हमारा जानने का अभिप्राय है। यज्ञोपवीत के विषय में छन्दोगपरिशिष्टसंग्रह, स्मृत्यर्थ-सार आदि ग्रन्थों में यही लिखा है कि :—

कार्पासो निर्मलः प्रोक्तः शुचिक्षेत्रसमुद्भवः।
आवेष्ट्यषण्णवत्या तत् त्रिगुणीकृत्य यत्नतः॥
स्तनादूर्ध्वमधोनाभ्यां तन्न धार्यं कदाचन।
तद्धार्यमुपवीतंस्यान्नातिलम्बं न चोच्छ्रितम्॥ इत्यादि।

अर्थ :—शुद्ध खेत में पैदा हुए कपास का बना हुआ हो (स्मृत्यर्थसार का मत है कि शण, वल्कल तृणादि का भी यथासंभव उपवीत धारण किया जासकता है)। ९६ (छियानवे) चौओं का लिपटा हुआ और तिगुणा "आवेष्ट्य षण्णवत्या तत् त्रिगुणीकृत्य यत्नतः"। इन शब्दों से सिद्ध है स्तनों से ऊंचा और नाभि से नीच नहीं धारण करना चाहिये, जो उपवीत

धारण किया जाय वह बहुत लम्बा और ऊंचा नहीं होना चाहिये ! जो टूट गया हो वा साफ धुला हुआ न हो ऐसे उपवीत को छोड़ देना चाहिये इत्यादि संक्षेपः ।

बौधायन स्मृति के इस वचन से कि " सदोपवीतिना भाव्यं सदाबद्धशिखेन च " सर्वदा यज्ञोपवीत धारण किये तथा सदा शिखा बांधे रहना चाहिये। मीमांसादर्शन के प्रथमाध्याय के तृतीयपाद के पहले सूत्र के ऊपर शबरस्वामी के शबरभाष्य में शिखाबन्धन, गुरुसेवन, तड़ाग खोदने आदि को भी प्रमाणभूत माना है। और भी—

छन्दोग परिशिष्टे कात्यायनः बौधायनस्मृतिश्च—

सदोपवीतिना भाव्यं सदाबद्धशिखेन च ।
विशिखो व्युपवीतिश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥

मनुष्य को आवश्यक है कि वह सर्वदा यज्ञोपवीत को धारण करे तथा शिखा को बांधे रक्खे। शिखा और यज्ञोपवीत से शून्य पुरुष जो कुछ भी करता है वह सब न करने के समान अर्थात् विफल हो जाता है ।

अनेन हि दधिखदिरादिवदुपवीतित्वस्य बद्धशिखित्वस्य च क्रतुपुरुषोभयार्थत्वमवगम्येत तेन विशिखेन व्युपवीतिना च कर्मणि क्रियमाणे कर्म्मणोऽपि वैगुण्यम्भवति ॥

इस उपर्लिखित कात्यायन वचन से, दधि (दही) खदिर (खैर) आदि पदार्थों के सदृश उपवीतित्व (यज्ञोपवीतधारण) और बद्धशिखित्व (शिखाबन्धन) भी यज्ञ के अङ्ग प्रतीत होते हैं, अतः शिखा तथा यज्ञोपवीत से रहित पुरुष यदि कोई काम्य कर्म आरम्भ करता है तो वह फल नहीं पाता, उसका वह कर्म निष्फल होजाता है ।

यज्ञोपवीतधारणसंख्योक्ता स्मृत्यर्थसारे हरिहरभाष्ये च—

ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य द्वे बहूनि वा ।
तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते ॥ इति ॥

ब्रह्मचारी को एक तथा स्नातक को दो अथवा उससे अधिक भी यज्ञोपवीत धारण कर लेने चाहियें। स्नातक का तृतीय यज्ञोपवीत वस्त्र के अभाव में उत्तरीय के स्थान में समझा जाता है ।

एतच्चोत्तरीयवस्त्राभावे तृतीयोपवीतधारणं कर्माङ्गम् बहूनि वेति तु काम्यम् । बहूनि चायुः कामस्येति देवलोक्तेः ।

तृतीय यज्ञोपवीत उत्तरीय वस्त्र के न होने पर यज्ञ कर्म का अंग माना जाता है। और जो कि श्लोक में ' बहूनि ' वा इस वचन से बहुत यज्ञोपवीतों को धारण करना लिखा है वह आयु की कामना करने वाले पुरुष के लिये है। जैसा देवल ने लिखा है कि आयु की कामना

करने वाले पुरुष के लिये है। जैसा देवलने लिखा है कि आयु की कामना करने वाले स्नातक को बहुत यज्ञोपवीत धारण करने चाहियें। विश्वामित्रोऽपि—

इसी विषय में विश्वामित्र भी लिखते है कि "यज्ञोपवीते द्वे धार्येश्रौते स्मार्ते च कर्माणि तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते। इति श्रौत (श्रुतिविहित) तथा स्मार्त (स्मृतिबोध्य) कर्म में दो यज्ञोपवीत धारण करने चाहियें। उत्तरीय के योग्य वस्त्र प्राप्त न हो तो कर्म वैगुण्य न होजाय इसलिये तृतीय यज्ञोपवीत का धारण करना भी आवश्यक है।

यज्ञोपवीत रचने की विधि में प्रमाण

मदनपारिजात नामक ग्रन्थ में देवलमुनि का वचन है कि—

कार्पासक्षौमगोवालशणवल्वतृणादिकम्।
यथा सम्भवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः॥

भावार्थः—कपास, कोमल रुई गाय के पूंछ के बाल, सन, ऊन और दर्भ आदि से यथासंभव यज्ञोपवीत बनाकर द्विज धारण करें। कई धर्ममीमांसा करने वालों का ऐसा मत है कि कपास का यज्ञोपवीत सब द्विजों को पहनना चाहिये और उसके अभाव में सन का।

शुचौ देशे शुचि. सूत्रं संहिताङ्गुलिमूलके।
आवर्त्य षण्णवत्या तत् त्रिगुणीकृत्य यत्नतः॥

भावार्थ—शुद्ध स्थान में, शुद्ध सूत्र को लेकर हाथ की चारों अङ्गुलियां इकट्ठी कर उनके मूल पर छियानवें बार पूरी लपेट लगाकर उसको यत्न से त्रिगुण करे।*

अब्लिङ्गकैश्चमंत्रैस्तत्प्रक्षाल्योर्ध्ववृतंत्रिवृत्।
अप्रदक्षिणमावर्त्य सावित्र्या त्रिगुणीकृतम्॥

भावार्थ:—अप् शब्द जिसमें आया हुआ है (आपोहिष्ठा इत्यादि) मन्त्रसमूह का उच्चारण कर, उसको जल से धोकर ऊर्ध्वगति से लपेट कर गायत्री मन्त्र पढ़कर तेवड़ा करे॥

तत प्रदक्षिणावर्त्तं समस्यान्नवसूत्रकम्।
त्रिरावेष्ठ्यदृढं बद्ध्वा ब्रह्मविष्णवीश्वरान्नमेत्॥

भावार्थ:—फिर उस सूत्र को बटकर एक तार समान नौ मंत्रो का बनाना तीन भाग लपेट कर दृढ़ बांधकर (ग्रन्थी लगाकर) ब्रह्म को नमस्कार करे।

मदन-पारिजात में यह भी लिखा है कि:—

उपवीतं वटोरेकं द्वे तथे तरयोः स्मृते।

भावार्थ:—ब्रह्मचारी के लिये एक यज्ञोपवीत हो और गृहस्थ तथा वानप्रस्थ लोगों के दो हों*। मालूम होता है कि इसी वचन के आधार से सर्व भारतवर्ष देश में गृहस्थ आर्य लोग दो यज्ञोपवीत पहिनते हैं।

---

* औदीच्य मासिकपत्र से उद्धृत।

यज्ञोपवीत रचने की विधि का वर्णन

यज्ञोपवीत जो तैयार किया हुआ सब पहिनते हैं उसकी बनावट पर पहिनने वाले प्रायः कम दृष्टि देते हैं। साधारण तौर पर यदि किसी यज्ञोपवीतधारी से पूछें कि आपके यज्ञोपवीत में कितने तार हैं तो वह कहेगा कि तीन। फिर पूंछा जावे कि प्रत्येक तार में कितने तार हैं तो प्रायः बहुतसे यही कहेंगे कि उसमें भी तीन हैं पर जिन्होंने यज्ञोपवीत बनते देखा है व जो उस तार को पृथक् पृथक् करते जावें उनको मालूम होगा कि उन तीन तारों में भी प्रत्येक तार में तीन धागे हैं अर्थात् जो तीन तार का यज्ञोपवीत हम पहिनते हैं उसके प्रत्येक तार में ९ (नौ)-तार होते हैं और एक तीन तारों के यज्ञोपवीत में कुल सत्ताईस तार हैं, यह बात ध्यान में रखनी चाहिये।

यज्ञोपवीत तैयार करने के लिये, दाएं हाथ की चार अंगुलियों के मूल के ऊपर जो कुछ ढीली* रखकर चप्पा बनाने के लिये खड़ी रक्खी जाती हैं सूत का एक चक्कर वा आंटी ऊपर की उस उंगली से, जो अंगूठे के पास होती है, आरम्भ कर उसी उंगली के उसी स्थल पर पूर्ण की जाती और इसको चप्पे की एक आंट वा पूरी लपेट भी कहते हैं। इस प्रकार छियानवे वार धागा चार उंगलियों पर लपेट लिया जाता है। जब छियानवे चप्पे पूर्ण होगये तो फिर इस छियानवे चप्पे के धागे को सहज से हाथ के चप्पे पर से उतार कर किसी कड़े कागज़ वा काष्ठ के टुकड़े पर वह रह सके रख देते हैं और धागे का सिरा काटते नहीं। फिर धागे के शेष पिण्ड से दूसरी वार छियानवे चप्पे धागा लेने के लिये यत्न प्रारम्भ होता है। धागे के शेष पिण्ड से नया धागा और साथही उस बांस के टुकड़े पर से उतारा हुआ धागा दोनों को इकट्ठा छियानवे वार हाथ पर लपेटना प्रारम्भ करते हैं। ऐसा करने से छियानवें चप्पों का धागा दुलड़ा वा दुहरा हो जाता है। फिर इस दुलड़े (दुहरे) धागे को एक धागा समझ किसी कड़े कागज़ वा बांस के टुकड़े पर रख देते हैं पर सिरा इसका भी नहीं काटते उसी सिरे को हाथ में ले तीसरी वार नए छियानवे चप्पे भरने के लिये उस धागे के शेष पिण्ड से यत्न करते हैं जो कि पास ही होता है। इस तीसरी वार दुलड़े धागे के साथ नया इकेहरा धागा छियानवे वार भर लिया जाता है और जब भर लिया तब शेष धागे के पिण्डसे चप्पे पर लिपटे हुए धागे का सिरा तोड़ लेते हैं। अब हमारे पास एक ऐसा धागा तयार होगया कि जिसकी लम्बाई छियानवे चप्पे है और जिसमें तीन धागे संयुक्त वा शामिल हैं वा यह कहो कि छियानवे चप्पों की लम्बाई के तीन धागों से मिल कर एक "तिलड़ा" धागा तैयार होगया है, अब इस लम्बे धागे को दो पुरुष पकड़लें अथवा एक पुरुष एक तरफ़ से सहज गांठ लगाकर (यदि आवश्यकता हो तो) पकड़ें और दूसरी तरफ़ सामने

---

* विवरण—ढीली इसलिये रक्खी जाती है कि उंगलियों का खून बन्द न हो जावे, यदि ज़ोर से धागा जुड़ी हुई उंगलियों पर लपेटा जायगा तो छियानवे वार लपेटने के साथही हाथ में लहू की गति मन्द पड़ जावेगी।

किसी खूंटी से बांध दें। जिस पुरुष ने इस तिलड़ी को पकड़ा है वह जिस प्रकार रस्सा बटते हैं इसको बटे, जब बट कर एकमयी होजावे, तब अन्दाज से वा निशान लगा कर इस कुल धागे के तीसरे भाग को दो बने पकड़ लें और इस तीसरे भाग के ऊपर एक और तीसरा भाग जोड़ने के लिये रक्खें, फिर शेष का तीसरा भाग इसी भाग पर बिठादें ऐसा करने से हमारे हाथों में ऐसा धागा होगा कि जिसमें तीन भाग एकत्रित हैं और प्रत्येक भाग का धागा पूर्व से ही तिलड़ी है। अब इन तीनों भागों के धागों को खूब उत्तमता से रस्से के समान बट कर एक धागा बनालो। जब बट कर बनगया तो यह धागा नोहरा होगा अर्थात् नौ तार वाला। अब इस लंबे नोहरे धागे को तीन तारों वाले यज्ञोपवीत के रूप में जो पहिना जाता है, बनाना है। इसके लिये अन्दाज से एक तीसरा भाग स्थिर रखकर शेष दो भाग उसके साथ जोड़े जाते हैं और जोड़ते समय ही ब्रह्मग्रन्थि लगा दी जाती है ताकि तीनो तार पृथक् पृथक् न रहें। उपरोक्त नोहरे धागे को यज्ञोपवीत के अन्तिम रूप में लाने के लिये जिनके पास कुछ यन्त्र वा साधन नहीं होता तो वह अपने गोडे में सूत की एक तार अन्दाज से डालकर दो और तारे ब्रह्मग्रंथि लगा उस में डाल देते हैं। इस तैयार किये हुये यज्ञोपवीत को यदि गले में डालकर उसका दूसरा सिरा दाएं हाथ के अंगूठे में डालें और अपनी दाई भुजा को फैलाएं तो मालूम होगा कि यज्ञोपवीत ऐसा तैयार हुआ जिसकी लम्बाई एक गजके लगभग होगई। वा शिरकी शिखा पर से नाभि तक इसकी लम्बाई होगी। जब यह पहिना जाता है तो नाभि से नीचे आधा हाथ लटकता है। जिसको नाभि तक ही पहिनना इष्ट होता है वह शेष लटकते हार को लपेट देकर उसके साथही बट देते हैं जिसको उत्तराहिन्द में "चात्री" लगाना कहते हैं। जिनकी रुचि नाभि से नीचे धारण करने की होती है वे शौचादि की छींटों से सुरक्षित रखने के लिए शौच जाते समय उसके एक दो वा तीन लपेट कान पर लगा लेते हैं।

प्रश्न यह है कि सूत के ९६×३=२८८ चौए (चप्पे) ही क्यों लिए जाएं? इसका उत्तर यह है कि हमने अपने सामने बड़ौदा में अपने एक मित्र श्रीयुत पण्डित लक्ष्मणदत्तजी पंत अलमोडानिवासी छात्र कलाभवन से उक्त विधि के अनुसार यज्ञोपवीत आदि क्रिया से लेकर अन्त तक, तैयार कराया और जब तैयार होकर गले मे धारण किया तो उसका नाप लिया गया। वह नाप इस प्रकार निकला लंबाई नौ चौए। चूंकि यज्ञोपवीत मे २७ सूत्र प्रविष्ट हुए हैं इसलिये कुल लंबाई ९×२७=२४३ चौए हुई। वा यह कहो कि दोसै तेतालीस चौए कुल नाप हुआ। यह हमें याद है कि बनाते समय ९९×३ अर्थात् चौए धागा लिया गया था। यदि २८८ में से २४३ चौए निकालदें तो शेष २५ चौए ऐंठ लगने से कम हुए। जो कि बारहवां भाग समझना चाहिये। सो यह बड़ी बुद्धिमानी तथा अनुभव की बात है कि ९६×३=२८८ चौए सूत मे ऐसा यज्ञोपवीत तैयार किया जाता है जो पर्याप्त लंबाई वाला होने के अतिरिक्त खूब ही गठकर बटा है।

कोई कह सकता है कि यज्ञोपवीत इतनी लंबाई का ही क्यों पहिना जावे? इसके उत्तर मे हम कहेंगे कि जो कम पहिनना चाहता है वह नाभि तक वा जहां तक लंबा पहिनना चाहे

पहिने और शेष को " चाबी " के रूप में बांट देदे । नाभि से नीचे आधा, पौन वा अधिक से अधिक एक हाथ तैयार किया जाता है । यह अन्तिम सीमा है । कोई कह सकता है कि जो लंबा पुरूष होगा उसको वह छोटा पडेगा । इसका उत्तर यह है कि लंबे पुरूष को अपना यज्ञोपवीत तैयार करते समय अपने ही हाथ के ९६×३=२८८ चौए सूत लेना चाहिये । इसी प्रकार १२ वर्ष के बालक के लिये उसके अपने ही चौओं के माप से सूत लेकर तैयार करना चाहिये । फिर कभी किसी को छोटा वा बड़ा नहीं प्रतीत होगा । कोई यह कह सकता है कि इससे भी अधिक लंबा यज्ञोपवीत क्यों न पहना जावे, हम कहेंगे कि जब मनुष्य खड़ा हो और अपना हाथ टांग की तरफ लटकाए तो उसके अंगुष्ठमूल तक कुर्ता, कमीज पहिनाना ठीक होता है और वहांतक ही यज्ञोपवीत पहिनना चाहिये । राजगात्रा, चपड़ास, राजे महाराजों के गात्रे प्रायः अंगुष्ठमूल तक ही पहुंचते हैं यदि राजगात्रे वा चपड़ास तथा यज्ञोपवीत इससे अधिक लंबे पहिने जावेंगे तो निःसंदेह टांगों में उलझ कर कष्ट देंगे । इसलिये अधिक से आधिक यज्ञोपवीत राजगात्रा चपड़ास आदि की जो सीमा होती है वहांतक ही पहुंचने के लिये जितना सूत लेना चाहिये वह प्रत्येक मनुष्य को अपने ९६×३=२८८ चौए ही के नाप से होना चाहिये, और इसीलिये आर्य्य लोग इतना उपयोग में लाते हैं ।

प्रश्नकर्त्ता कह सकता है कि यह तो ठीक पर नाभि से हम ऊंचा पहिनें तो डर क्या है ? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि हमने नाभिसे भी ऊपर पहिनकर इस का अनुभव किया है इस दशा में यज्ञोपवीत ऐसा श्रम करने पर जैसा कि क्रिकेट खेलना वा हाथ फैलाना वा गोला वा कोई बोझ ऊपर को फैंकना वा निशाना लगाना आदि अनेक क्रिया करते समय यह यज्ञोपवीत जो यकृत् (जिगर) के पास होता है, पसली तथा पेटके पट्ठों की स्वतंत्र गति को रोकता है और जब तक ढीला कर के नाभि तक उसको न पहुंचाया जावे तो ऐसा श्रम जिस में पसली पेट तथा पीठ के पट्ठों को विशेष गति करनी हो सहज से नहीं होती, इसलिये किसी दशा में भी नाभि से ऊपर जिगर तक नहीं पहिनना चाहिये और यदि पहिना जावे तो निःसन्देह वह टूटेगा, और गरमी के दिनों में नाभि से ऊपर का यज्ञोपवीत पसीने के कारण शरीर को अधिक चमट जाने से वृत्ति को खंडित करता रहेगा । बदायूं निवासी स्वर्गस्थ आर्य पण्डित रामप्रसादजी शर्म्मा ने हमारे एक पत्र के उत्तर में नीचे का श्लोक लिखकर भेजा था जो कि वह अपने गुरु जी से श्रवण करते रहे ।

"नाभेरूर्ध्वे वयोहानिः नाभ्यधो धनसंक्षयः ।
तालुतो नाभिपर्यन्तमुपवीतस्य लक्षणम् ॥ "

अर्थः—नाभि से ऊंचा हो तो आयु की हानि हो और नाभि से नीचे हो तो धन का क्षय हो, तालुसे नाभि पर्यंत होना उपवीत का लक्षण है । इसका भाव यह है कि नाभि से ऊंचा होने की दशा में वह वह शारीरिक कष्ट होंगे जिनमें से कुछ हमने ऊपर लिखे हैं जिनको यह कष्ट सदैव मिलते रहेंगे उनकी आयु धीरे धीरे कम होती जायगी यह बात

समझ में आ सकती है। नीचा रखने की दशा में धन की हानि तो प्रत्यक्ष ही है कारण कि उसके छीजने (टूटने) पर नया बदलने की ज़रूरत रहेगी और ऐसी दशा में धन की हानि अवश्य होगी साथही मितव्ययी रहने का स्वभाव न रहने से अन्य वस्तुओं में भी ऐसे अन्य व्यय का होना संभव रहेगा, जिससे भारी धन की हानि होनी भी सम्भव है। यथा–जिस बालक ने एकवार चोरी की यदि वह न रोकी जावे तो उसका स्वभाव बिगड़ेगा। हमारे विचार में श्लोककर्त्ता ने साररूप से ठीक ही कहा है। इसी श्लोक में तालु से नाभि पर्यन्त यज्ञोपवीत धारण करने का विधान पाया जाता है, जिसके सम्बन्ध में ऊपर लिख चुके हैं।

ब्रह्मसूत्र नाम क्यों है ?

सबही सूत्रग्रन्थों तथा संस्कृत कोषों में यज्ञोपवीत का दूसरा नाम ब्रह्मसूत्र है और सबही संस्कृत कोषों में ब्रह्म के अर्थ वेदके दिये गये हैं। इसलिये ब्रह्मसूत्र का भावार्थ यह हुआ कि वेद का बोधक सूत्र, वेद नाम विद्याका है। इसीलिये सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों में इसको विद्याचिह्न भी कहा गया है। वेद वा विद्या तीन प्रकार की हैं कर्म, उपासना और ज्ञान संबन्धी और यही वेदों के तीन मुख्य काण्ड हैं*। इन तीनों कांडों के ज्ञान की प्राप्ति के लिये ही ब्रह्मचर्याश्रम तथा ब्रह्म सूत्र रक्खा गया। इसीलिये ब्रह्मसूत्र की तीन तारें होता हैं। क्योंकि एक एक तार वेद (विद्या) के एक एक कांड का बोधक होना चाहिये। यही भाव ब्रह्मग्रन्थि से विदित होता है जो कि ब्रह्मसूत्र के अन्तर्गत लगी रहती है।

यह बात तो सब जानते ही हैं कि यज्ञोपवीत की तीन तारें, एक ब्रह्मग्रन्थि में जोड़ी जाती हैं, इस का तात्पर्य यह कि मनुष्य को कर्मोपासना तथा ज्ञान इन तीनों कांडों को साथ साथ प्राप्त करना चाहियें। एक तार के टूट जाने पर यज्ञोपवीत खंडित और वृक्ष पर फेंकने के योग्य हो जाता है। पक्षी घोंसलों के काम कें उसको लाते हैं। इसी प्रकार जिस मनुष्य वा जनसमाज मे पूर्ण तीन कांड नहीं रहते वह उन्नति के शिखर से खंडित हो गिर जाता है। भारतवासियों में दो कांड लुप्त हो रहे हैं उपासना कांड ही रह गया है। यूरोप अमेरिका में ज्ञान, कर्म यह दो कांड हैं, पर उपासना कांड लुप्त होने से पूर्ण सुख जो मनुष्यजीवन का परम उद्देश्य है उनको भी प्राप्त नहीं। शायद एक शताब्दि उन्नति करने पर यूरोपादि देश उपासना कांड से भी युक्त होजावें और फिर इससे भी अधिक सुख, शान्ति उनको प्राप्त हो सके। वेदों में भारी ताकीद है कि मनुष्य को विद्या और अविद्या (कर्मोपासना) दोनों को साथ साथ प्राप्त करना चाहिये। इसीलिये यज्ञोपवीत की तीन तारों को खुले न रखते हुए एक ग्रन्थि से बांध देते हैं और उस ग्रन्थि में भी तीन ही गांठ उसी विषय के बोधक लगाते हैं। रोमन कैथोलिक ईसाइयों के ऊनी यज्ञोपवीत में भी, जिसको वे कमर से बांधते हैं, तीन ही गांठ लगी रहती हैं। ब्रह्मग्रन्थि का लाभ तो प्रत्यक्ष ही है कि तीन तार मिले

---

* इस विषय को विशेष जानने के लिये 'ब्रह्मयज्ञ' पुस्तक पाठकों को अवश्य पढ़नी चाहिये।

रहें। जिस पुरुष ने किसी को ब्रह्मग्रन्थि लगाते नहीं देखा वह सहज से ब्रह्मग्रन्थि नहीं लगा सकता, अभ्यास से तथा देखने से यह ग्रन्थि लगानी आ जाती है। प्रश्न हो सकता है कि यज्ञोपवीत की एक तार में नौ तारें क्यों शामिल की जाती हैं, इसका उत्तर यह है कि उसकी अधिकतम मज़बूती के लिये। यदि नोहरे धागे के तीन भाग न किये जाव तो बहुत टिकाऊ (दृढ़) यज्ञोपवीत तैयार नहीं होगा। पुराने आर्य्य आजकल के लोगों के समान न थे कि एक कच्ची चीज़ आज बनावें और दो चार दिन में हीं वह टूट जावे। हमारी सम्मति में देशी चरखों से तैयार किया हुआ मोटा धागा लेकर यज्ञोपवीत स्वयं वा अपने पुरोहितादि से तैयार कराना चाहिये। विना इसके शुद्ध तथा दृढ़ ब्रह्मसूत्र नहीं मिल सकेगा।

(प्रश्न) तीन वर्णों के लिये भिन्न भिन्न रूप के यज्ञोपवीत का विधान मानव धर्मशास्त्र में क्या है?

(उत्तर) यदि तीन वर्णों के गुण कर्मों में हमें भेद प्रतीत होता है तब ही तो हम उनको तीन वर्णों में बांटते हैं और उस भेद का बोधन कराने के लिये यदि यज्ञोपवीत के रूप से पता लग जावे तो बहुत ही उत्तम बात है। क्षत्रिय में वीरता गुण की प्रधानता होती है वा होगी, इसलिये उसका यज्ञोपवीत सन का, जो रुई वा ऊन से अधिक मज़बूत है, बनाना उचित ही है। वैश्य में कोमलता अथवा दया का भाव अधिक रहता है इसलिये उनका यज्ञोपवीत ऊन का नियत किया गया। ऊन के गुलूबन्द कैसे कोमल होते हैं यह प्रत्यक्ष ही है, ऊन का बटा वा बुना हुआ यज्ञोपवीत सन के धागे से कोमल ही होगा। ब्राह्मण वैश्य से अधिक धैर्यवान् और क्षत्रिय से शान्ति आदि अधिक रखने वाला होना चाहिये। क्षत्रिय का भूषण धैर्य तथा मन्यु वा उचित क्रोध है तो ब्राह्मण का शान्ति। इसलिये उसका यज्ञोपवीत कपास के तागे का बनाना चाहिये जो कपास, कि सन और ऊन के मध्यवर्ती गुण रखती है।

एक सूत्रग्रन्थ में तीनों वर्णों का यज्ञोपवीत एक कपास का ही हो ऐसा भी विधान है। ऐसी दशा में एक क्षत्रिय के क्षात्रियपन को बोधन कराने वाले चिह्न उसकी फौजी वर्दी, पेटी (कटिबंध) तलवार आदि होंगे वा सिविल आफीसर होने की दशा में उसके चपड़ासी की चपड़ास ही उसके क्षात्रियपन को बोधन करेगी।

कन्याओं को पंडिता बनाना

शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम भाग में गर्भाधान का वर्णन करते हुए—

"यइच्छेत् दुहिता मे पंडिता जायेत"

ये शब्द स्पष्ट पड़ हुए हैं। इसका भाव यह है कि प्राचीन ऋषि जहां लडकों को पण्डित बनाने के लिये यत्न करते थे वहां लडकियों को भी पण्डिता बनाते थे, यह बात निर्विवाद है। श्रीयुत पण्डित महाराणीशङ्करजी शर्मा ने अपनी उत्तम पुस्तक "कन्योपनयन पद्धति" में इस भाव को युक्ति और प्रमाण से सिद्धकर दिखाया है तथा हमारे परम मित्र आगरा निवासी श्रीयुत पण्डित भीमसेनजी शर्मा का निम्नलिखित लेख इसी विषय को उत्तम रूप से समर्थन करता है।

" कादम्बरी " संस्कृत साहित्य का सुप्रसिद्ध गद्यकाव्य–नाविल है, उसका कर्त्ता महाकवि बाणभट्ट प्रसिद्ध ऐतिहासिक राजा " हर्षवर्धन " * की सभा का रत्न था, हर्षवर्धन सातवीं शताब्दी (ईस्वी) के पूर्वार्द्ध में हुआ है। इसकी राजधानी कान्यकुब्ज थी। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसङ्ग इसी के राजत्वकाल में भारत में आया था। हर्षवर्धन का विस्तृत वर्णन मि. विनसेन्ट ए. स्मिथ साहब ने अंग्रेजी में लिखा है, तथा कादम्बरी की अङ्ग्रेजी भूमिका में डा. पीटर पीटर्सन साहब ने भी लिखा है। डा. पटिर्सन द्वारा सम्पादित कादम्बरी " गवर्नमेन्ट सेट्रल बुकडिपो बंबई " में छपी है। कादम्बरी एक आख्यायिका उपन्यास है, उसका नायक चन्द्रापीड दिग्विजय करता हुआ जब कैलास की ओर पहुंचा है तो वहां एक शिकार के पीछे भटक कर " अच्छोद " नामक तालाब के समीप एक आश्रम में पहुंचा तो वहां उसने एक मन्दिर में शिवजी का पूजन करती हुई एक गन्धर्व कन्या को देखा जिसका नाम " महाश्वेता " था। महाश्वेता का वर्णन करते हुए बाणभट्ट ने लिखा है—"ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकायाम् " अर्थात् ब्रह्मसूत्र=यज्ञोपवीत से उसका (महाश्वेता का) शरीर पवित्र हो रहा था। कादम्बरी की कथा चाहे काल्पनिक हो, पर इससे इतना पता चलता है कि सातवीं शताब्दि में उत्पन्न बाणभट्ट ब्रह्मचारिणी तपस्विनी स्त्रियों को यज्ञोपवीत धारण करना उचित समझता है।

श्री स्वामी दर्शनानन्दजी का अन्वेषण

कन्याओं को लड़कों के समान वेदविद्या पढ़ने का अधिकार निर्विवाद सिद्ध होचुका है, पर संस्कारविधि में जो कुछ लेख उपनयन संस्कार सम्बन्धी गृह्यसूत्रों को देखने में आता था उससे यह शंका बनी रहती थी कि शूद्र बालक को उपनयन वा वेदारंभ का अधिकार है वा नहीं। वेद का प्रमाण तो इस विषय में स्पष्ट था पर उस प्रमाण के अनुसार सूत्रों के संगत अर्थ नहीं बैठते थे। इन सूत्रों के अर्थ संगत करने का मान आर्यसमाज के इतिहास में दार्शनिक विद्वान् स्वर्गस्थ स्वामी दर्शनानन्दजी को ही घटता है। " दर्शनानन्द ग्रन्थसंग्रह " पूर्वार्द्ध " पृष्ठ १४७ से १५४ तक इस विषय में न केवल पढने योग्य ही हैं, प्रत्युत मनन करने योग्य भी है। " अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत " इस सूत्र का अर्थ यह करते थे कि आठवें वर्ष ब्राह्मण का उपनयन होवे, परन्तु उपनयन विना किसी की द्विज संज्ञा नहीं हो सकती इसलिये इस का अर्थ " ब्रह्मवर्चसकामस्य " इस मनुवाक्य के अनुकूल स्वामी दर्शनानन्दजी ने यह किया कि ब्राह्मण पद के अधिकारी बालक का यज्ञोपवीत ८ वें वर्ष होना चाहिये और ये अर्थ जहां वेदमंत्र के अनुकूल हैं वहां युक्तिसिद्ध भी हैं; और इससे चाहे बालक शूद्र का हो परंतु मेधावी होने से यदि वह ब्राह्मण पद का अधिकारी बालक होगा तो ११ वें वर्ष में और वैश्य पद का अधिकारी होने से १२ वें वर्ष में होना चाहिये। स्वामी दर्शनानन्दजी लिखते हैं कि

---

* बड़ौदा राज्य द्वारा प्रकाशित हिन्दी " श्रीहर्ष " पुस्तक को पढ़ने से पाठकों को इसके सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

" स्मरण " रहे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पद के अधिकारी को उपनयन संस्कार की आवश्यक्ता होती है, शूद्र बनाने के लिये उपनयन की आवश्यक्ता नहीं।" अहो! कैसे उत्तम तर्कयुक्त और सत्य वचन हैं। शूद्र तथा अछूत शूद्र के लिये वेद पढ़ने का अधिकार ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश, महात्मा पण्डित गुरुदत्त के लेखों, स्वामी श्री नित्यानन्द के पुरुषार्थप्रकाश और स्वामी दर्शनानन्द के " ग्रन्थसंग्रह " से निर्विवाद सिद्ध हो रहा है। हर्ष का विषय है कि २६ दिसंबर १९१५ को " समस्त भारतवर्षीय हिन्दू महासभा " ने बंबई में मंतव्य संख्या ९ के निश्चय द्वारा दर्शा दिया कि " यह हिन्दू महासभा द्विज हिन्दुओं का ध्यान इस तरफ़ दिलाती है कि वह अपने अछूत वर्ग के भाइयो की सहायता कर और सर्व प्रकार से उनको सुशिक्षित, सुनीतिमान् तथा उच्च बनावें।"

कर्मवीर, महात्मा मोहनदास कर्मचंद गांधी ने अहमदाबाद (गुजरात) में अपने सत्याग्रही आश्रम में जहां द्विज बालक दाखिल किये हैं वहां दो परिवार अछूत शूद्रों के भी दाखिल किये है और सर्व आश्रमवासी एक दूसरे के हाथ का खाते, प्रेम से विद्या पढ़ते तथा बन्धुवत् रहते हैं। वर्ण गुण कर्म और स्वभाव से होते, हैं और मनुष्यमात्र को वेद अथवा विद्या पढ़ने का समान अधिकार है यह वैदिक सिद्धान्त अब आर्यसामाजिकों का ही नहीं रहा, किन्तु कर्मवीर महात्मा गांधी ने अपना आश्रम खोल, डंके की चोट से अपने उच्च विचारो का प्रचार कर, समस्त हिन्दूमात्र का ही बना दिया है॥

महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

(प्रश्न)-वेदों मे कहीं भी यज्ञोपवीत बोधक शब्द नहीं फिर यह संस्कार वेदोक्त कैसे?

(उत्तर) सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास मे ऋग्वेद मण्डल ३, सूक्त ८, मन्त्र ४ इस प्रकार दिया गया है वह यहां उध्दृत कियाजाता है:—

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः।

अर्थ:—जो पुरुष (परिवीतः) सब ओरसे यज्ञोपवीत ब्रह्मचर्य से युक्त...अतः यह संस्कार वेदोक्त तथा वैदिक है यह बात प्रत्येक भारतीय आर्यहिन्दू को जाननी चाहिये।

(प्रश्न)-क्या शूद्र कुलोत्पन्न बालक यज्ञोपवीत धारण कर वेद पढे?

(उत्तर)-हां जरूर इसलिए कि यथेमां वाचं....यजु० अ०२६ मं०२ से उनको भी वेद पढने का अधिकार है। यज्ञोपवीत विद्या-चिन्ह है, जब कोई चपरासी बन सकता है तो चपरास पहनने का अधिकार इसके अन्तर्गत हो गया। कुर्वन्नेह कर्माणि यजु० अ० ४० मं० २। इसके द्वारा सर्व वेदोक्त कर्मयज्ञ करने का अधिकार उसको है। षोडशसंस्कार यज्ञ का रूपांतर हैं।

विद्यांच...यजु० अ० ४० मं० १४ के अनुसार प्रत्येक मनुष्य और उसके पुत्र पुत्रीको वेद विद्या के साथ साथ यज्ञादि सर्व उत्तम कर्म्म करने की ताकीद है युवासुवासाः ऋ० म० ३ सू० ८ मं० ४ का भाव यह है कि बालक यज्ञोपवीत धारण कर गुरुकुलसे आवे। इससे

यह सिद्ध होता है कि शूद्र बालक भी प्रवेश समय यज्ञोपवीत धारण कर आते थे और अयोग्य बालक लौटते हुए बिना यज्ञोपवीत के निकलते थे ।

इति उपनयनसंस्कारव्याख्या

—:०:—

अपने ढंग की अमरकृति

संस्कारचन्द्रिका के अबतक पांच भिन्न भिन्न संस्करण छप चुके हैं । अब यह **वैदिक संस्कारमाला** " के रूप में प्रकाशित की जा रही है । जिस में सर्व प्रथम यह संस्कार छपा है । वेद प्रचार के अधिष्ठाता श्रीयशपालजीने एक पत्र में लिखा था " आपके पूज्य पिता श्री आत्मारामजी द्वारा रचित " **संस्कार चन्द्रिका** " आर्यसमाज के साहित्य में एक अमूल्य ग्रन्थ है । जनता की इच्छा है कि इस ग्रन्थ का पुनः प्रकाशन किया जाए । यदि प्रत्येक संस्कार पृथक् पृथक् छपवाया जावे तो अधिक उपयुक्त होगा । श्री सत्यार्थीजीने मुझे बतलाया है कि आप इस प्रकार से पृथक् छपवाने के लिए उद्यत हैं । मेरी अपनी सम्मति भी यह है कि इस प्रकार की पुस्तक आर्य जनतामें सर्व प्रिय होगी । "

संस्कार चन्द्रिका के संबंधमें ' हितैषी पीलीभीत ' किताबें बहुतसी शाया होती हैं लेकिन ऐसी किताबें बहुत कम शाया होती हैं जिनको तसनीफ व तालीफ की दुनियां में उच्च स्थान दिया जा सके । हम यह कहने की जुर्रत करते हैं कि **संस्कारचन्द्रिका** तसनीफ व तालीफ के आलम में आला जगह पानेकी मुस्तहक है । "

प्रकाश लाहोर " यह किताब आर्य पुरुषों के लिए किस कदर मुफीद साबित होगी इसके बतलाने की जरूरत नहीं आर्य पुरुष खुदही महसूस करेंगे । "

मुसाफिर आगरा "हमारी राए में यह किताब इस काबिल है कि हर एक आर्यभाई के पास इसकी एक कापी मौजूद हो । आर्यनलिटरेचरमें यह एक काबिल कदर इज़ाफा है । "

आर्य गज़ट लाहोर "एक ऐसी पुस्तक है जो हर एक आर्य के हाथ में होनी चाहिए । "

प्रेमवृन्दावन " यह ग्रन्थ प्रत्येक गृहस्थ को अपने पास रखने और पढने योग्य है। "

आलमगीर के पत्र ले. शान्तिप्रिय-आत्मारामजी (अमृतसरी) हिन्दी भाषा में ऐसी पुस्तकों की संख्या अधिक नहीं है। यह पुस्तक एक प्रकारके अलभ्य पुस्तक भण्डार का अनुपम रत्न है। इस प्रकार के पत्रों का संग्रह हिन्दी संसार के लिए नई चीज़ है। यह श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड़ के विशेष अनुरोधसे तैयार की गई थी और विशेषाज्ञासे ही प्रकाशित कीगई थी। पुस्तक के आरंभ में अकबर और औरंगजेब के संबध में बड़ा ही मार्मिक निबंध लिखा है। पुस्तक प्रत्येक इतिहास के विद्यार्थी के लिए उपयोगी है। मू० ॥।) डाक व्यय =)

धर्म की उत्पत्ति और विकास (BIRTH & GROWTH OF RELIGION) ले. श्रीरामचन्द्र वर्म्मा पृ. सं. २७० मुल्य १॥) डाकव्यय ॥) श्री महाराजा सयाजीराव गायकवाड कहा करते थे कि धर्म एक ऐसा कृत्य है जिस की कई प्रकार से व्याख्या की जासकती है। यह एक प्रकार के व्यक्तिगत भाव हैं जिसकी व्याख्या सुगमतया तथा सरलता से इस प्रकार की जानी चाहिए कि वह सब को हृदयंगम हो सके। इसी उद्देश्य को लेकर इस पुस्तक की रचना की गई है। इस में आठ प्रकरण हैं जिन में पूर्ववर्ती बातें और सूत्रपात, आत्माएं और भूतप्रेत देवताओं का आविर्भाव, नैतिक आचरण और धर्म, उच्चतर सभ्यताओं के धर्म, परलोक, मोक्ष के मार्ग, मोक्ष-धर्म और दर्शन देकर धर्म का विकास किस प्रकार हुआ है दर्शाया गया है। बढिया छपी सुन्दर चित्ताकर्षक पुस्तक है जो कि धर्म के तुलनात्मक अभ्यासी के लिए अतीव उपयोगी सिद्ध होगी।

कुङ्गमुनिज्ञानामृत (TEACHINGS OF CONFUCIUS) ले. श्रीहरिप्रसाद शास्त्री शान्तिसदन लन्दन। कन्फ्यूशिअस चीन का एक महान् विद्वान् था उस के संबंधमें उस की महत्ता का प्रदर्शन इस प्रकार चीन में कियाजाता है। कनफ्यूशिअस पूर्ण मनुष्य था। संसार में इस के बराबर दूसरा पुरुष नहीं। यह सब चीनी साधुओं का आदि गुरु है। यह १० हजार पीढियों से चीनियों का आदि गुरु है। कनफ्यूशियस के उपदेशकी तुलना संसार के किसी अर्थात् स्वर्ग के पदार्थ से नहीं की जा सकती कनफ्यूशिअस की विद्या की गहराई समुद्र की गहराई जैसे है। ऐसे गुणज्ञ महापुरुष के वचन "कुङ्गमुनि ज्ञानामृत" में आपको मिलेंगे पृ. सं. २०० से अधिक मू० १॥) डाय व्यय ॥)

चीन की संस्कृति (CIVILISATION IN CHINA) में चीन में प्रचलित नियम चीन का प्राचीन समय चीन का राज्य प्रबंध वहां का धर्म और रहन सहन, चीन का साहित्य मंगोल राजाओं का वृत्तान्त तथा उन का तत्वज्ञान के साथ साथ चीनियों का परदेशिओं से सम्बन्ध चीन का भविष्य दर्शानेवाली अपने ढग की प्रामाणिक पुस्तक है जो आजकल के युग में चीन के साथ भारत का राजकीय संबंध स्थिर करने में अपूर्व रूप से मार्गदर्शन करा सकेगी पृ. सं. २५० से ऊपर मू० १।) डाक व्यय ॥) यह सब पुस्तकें और इन के अतिरिक्त जोर नवीन प्रकाशित होती हैं उन के लिए हिन्दी भाषा का त्रैमासिक पुस्तकालय जिस का वार्षिक मूल्य केवल आठ आने है मंगाइए और श्रेष्ठमित्रों की प्राप्ति के पश्चात् उत्तम-साहित्य एवम् श्रेष्ठ पुस्तकों की उपलब्धि का ही स्थान है।

पता :—पत्रव्यवहार का   पण्डित एण्ड कम्पनी पो० बा० ४६ बडोदा.

राजरत्न राजर्षि महात्मा आत्मारामजी

(अमृतसरी) कृत ग्रन्थ संस्कार चन्द्रिका के संबंध में अलंकार जुलाई १९२५

"पंडित आत्मारामजी के नाम का परिचय पाठकों से कराने की आवश्यकता नहीं। आप वर्तमान समय में आर्यसमाज के इने गिने विद्वानों में से हैं। वैदिक सिद्धान्तों को वैज्ञानिक सम्पादन करना आपका ही काम है। ऋषि दयानन्द की संस्कारविधि की वैज्ञानिक व्याख्या कर के आपने "संस्कार चन्द्रिका" नाम से प्रकाशित की है। इस पुस्तक की कई आवृत्तिएं निकल चुकी हैं। तीसरी आवृत्ति हमारे सन्मुख है। यह पुस्तक अन्धकारावृत्त गृहस्थों के घर का दीपक है आंखें खोल देने वाली है। गृहस्थजीवन की उन्नतर गंभीरता तथा पवित्रता को समझने के लिए ग्रन्थ का अध्ययन करना प्रत्येक गृहस्थी के लिए उपयोगी है।"

वैदिक-विज्ञान ग्रन्थमाला : अपने ढंग का अनूठा प्रकाशन दिग् विज्ञान मनसा परिक्रमा के छ मन्त्र हिन्दु व आर्य संध्या समय पढते हैं पर इन छ मंत्रों में क्या क्या वैज्ञानिक तत्व भरे हैं यह दिखानेवाली एक मात्र पुस्तक यदि भारत वर्ष भर में क्या दुनया में प्रकाशित हुई है वह तो यही दिग विज्ञान है। सब ही उच्च कोटि के आर्य विद्वानों ने इस पुस्तक को हिन्दी एवम् वैदिक साहित्य का ग्रन्थरत्न कहा है। पुस्तक सचित्र एवम् उत्तम छपी ढाई सौ पृष्ठों के लगभग है। "महर्षि दयानन्द का दावा था कि वेद मन्त्रों के अर्थ तीन तरह के होते हैं। मास्टर आत्मारामजी अमृतसरीने इस किताब में मनसा परिक्रमा के छ मंत्रों के वैज्ञानिक (Scientific) अर्थ किए हैं। किताब निहायत दिलचस्प और साथही साथ सरल है। इसमें दिखाया गया है कि किस तरह संध्या के छ मन्त्रों के अन्दर सायंस कूट कूट कर भरी हुई है। इस किताब को देखकर सचमुच इन्सान समझने लगता है कि दरिया कूजे में बन्द है। हम बडी खुशी से इस किताब के स्वाध्याय की सिफारिश अपने नाजरीन से करते हैं। स्वाध्याय के लिए यह किताब निहायतही उपयोगी साबित होगी ? किताब लगभग २५० सफा पर मुस्तमल है। छपाई कागज़ अच्छा है।" प्रकाश (उरदु) १९२५. मू. २) डाक व्यय ।।=)

आजकल के अनेक सामाजिक प्रश्न और इनके उत्तर यह स्वर्गीय पुण्यात्मा महात्मा आत्मारामजी अमृतसरी की अंतिम कृति है यह पुस्तक भी मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी के विचारों का एक कोष है ... उसके एक एक विचार अपने वास्तविक रूपमें ही रत्नसे कम नहीं जैसे वे स्वयं राजरत्न थे वैसे ही इनके विचार भी रत्नही हैं। मू० १) डाक व्यय -)

जो पुस्तक प्रकाशक उच्चकोटिके वैदिक साहित्य का विज्ञापन वैदिक संस्कार माला के किसी भी प्रकाशन में छपवाना चाहें वे एक पृष्ठ के लिए मू० पचास रुपए आधे पृष्ठ के लिए २५) एक तिहाई पृष्ठ के लिए २०) चौथाई पृष्ठ के लिए १५) मय विज्ञापन सहित भेजदें उनका विज्ञापन स्थायी होगा और विशेष रूप से फलप्रद होगा। आगामी प्रकाशन कर्णवेध संस्कार छप रहा है। इस के बाद इसी प्रकार एक एक संस्कार छपता जाएगा।

पता :—व्यवस्थापक, वैदिक संस्कारमाला, आत्माराम पथ पो० बा. ४६ बडोदा.

ओ३म्

"संस्कारचन्द्रिका" से पुनर्मुद्रित वैदिक संस्कार माला-सं० ११

अथ वेदारम्भ संस्कार

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रणीत "संस्कारविधि" के वेदारम्भ संस्कार की विस्तृत व्याख्या

★

-: रचयिता :-

विद्वद्वर्य्य श्रीयुत (स्व.) पंडित भीमसेन शर्म्मा आगरा (निवासी)

तथा

राजमित्र राजरत्न श्रीयुत (स्व.) आत्माराम राधाकृष्ण (अमृतसरी)

-: रचयिता :-

सृष्टिविज्ञान दिगविज्ञान, शरीरविज्ञान, आत्मस्थान विज्ञान, ब्रह्मज्ञान, वैदिक विवाहादर्श, बलप्राप्ति, माण्डूक्योपनिषद्, तुलनात्मक धर्म विचार, गीतासार, ऋषि पूजाकी वैदिकविधि, सामान्य धर्म। महर्षि दयानन्द की जीवनी (उर्दु) तथा सत्यार्थ-प्रकाश के सर्व प्रथम उर्दु-गुरुमुखी अनुवादक इत्यादि इत्यादि।

★

: प्रकाशक :

जयदेव ब्रदर्स आत्माराम पथ बड़ोदा

अ. भ. पाळेकर द्वारा जागृति मुद्रणालय बड़ोदामें मुद्रित तथा जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा द्वारा प्रकाशित

षष्ठसंस्करण | सृष्टि संवत् १९७,२९, ४९०५१ संवत् २००८ वि०, ई० सन् १९५१ | मूल्य १॥)

वैदिक संस्कार माला

राजमित्र राजरत्न महात्मा आत्मारामजी (अमृतसरी) की अमर कृति संस्कारचन्द्रिका अब नए रूप में उपर्लिखित संस्कारमाला के पुष्पों में प्रकाशित हो रही है। निम्न संस्कार छपचुके हैं:—

नामकरण संस्कार =)॥ बालभानु रतलाम जून १९५१ "नामकरण संस्कार आर्यजगत् के प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय पं. आत्मारामजी कृत संस्कारचन्द्रिका से उद्धृत वैज्ञानिक आधार पर नामकरण का महत्व शास्त्रीय प्रमाणोंद्वारा सरल व रोचक भाषा में लिखी गई है। समाज में नामकरण के महत्वके प्रचार की दृष्टि से मूल्य केवल =)॥ ही रखा गया है। जिस के लिए प्रकाशक जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा धन्यवाद के पात्र हैं।"

आर्यजगत ३ आषाढ २००८ "जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा से प्रकाशित **नामकरण संस्कार**" वैदिक संस्कारमाला का पंचम पुष्प प्राप्त हुआ है। यह संस्कारविधि के नामकरण संस्कार की विस्तृत व्याख्या ही है और व्याख्याता श्री भीमसेनजी तथा राजरत्न आत्मारामजी अमृतसरी हैं। दोनों महानुभावोंने नामकरण संस्कार पर पर्याप्त प्रकाश डाला है तथा उसका महत्व दर्शाया है। प्रत्येक शंका का समाधान युक्तियुक्त किया गया है। पुस्तक का अमूल्य =)॥ है प्रत्येक संस्कार प्रेमीके लिये यह अत्यन्त उपादेय है।"—रामकृष्ण

कर्णवेध संस्कार ।=) "आर्य जाति में प्रचलित सोलह संस्कारों में से कर्णवेध संस्कार भी अपना एक विशेष स्थान रखता है। उक्त संस्कार के विषय व उद्देश्य का स्पष्ट प्रतिपादन विधि, विधान के साथ इस में कियागया है। इस के मूल लेखक राजमित्र स्व० मा० आत्मारामजी (अमृतसरी) संस्कारचन्द्रिका वाले हैं उसी महाग्रन्थ में से इसे निकाल कर यह छोटी सी पुस्तिका प्रत्येक सर्व साधारण आर्य के उपयोगार्थ प्रकाशित की गई है। अन्त में कर्णवेध महिमा पर युक्तियुक्त लेख भी दिया गया है जिससे उसकी उपयोगिता और भी बढ़गई है। पुस्तक प्रचार योग्य एवं अत्युपयोगी है।"—आर्य अम्बाला

उपनयन संस्कार ।॥) आर्य "२६ चैत्र २००७" व्यवस्थापक वैदिक संस्कार माला आत्माराम पथ बडोदा "आर्य साहित्य के प्रसिद्ध प्रकाशक श्री जयदेव ब्रदर्स बडोदा ने स्व० श्री पं० भीमसेनजी आगरा निवासी व राजरत्न स्व० आत्मारामजी अमृतसरी रचित लोक प्रसिद्ध पुस्तक '**संस्कार चन्द्रिका**' से उद्धृत कर 'उपनयनसंस्कार' नामक एक अंग प्रकाशित कर सर्व साधारण पर अनुपम उपकार किया है। इस नूतन प्रकाशन से जहां उपनयन संस्कार मंत्र विषयक अनेक भ्रांतियां मिटाई गई वहां प्रत्येक संस्कारान्तर्गत व्याख्या सरल व रोचक होने के कारण अल्प स्वाध्यायी भी इस से बराबर लाभ उठा सकते हैं। आकार प्रकार व छपाई अति सुन्दर है।"

"पुस्तक अत्युत्तम है......उपनयन पर पर्याप्त प्रकाश डालागया है। "आर्यजगत्"

अंत्येष्टि संस्कार पृ० सं० १३७ मू० ॥) डाकव्यय ।) भी आगरा से छप गई है।

ओ३म्

वेदारम्भसंस्कार

****

वेदारम्भसंस्कार* विधि

विधिः—जो वेदारम्भ का दिन ठहराया हो उस दिन प्रातःकाल शुद्धोदक से स्नान कराके शुद्ध वस्त्र पहिना पश्चात् कार्यकर्त्ता अर्थात् पिता, यदि पिता न हो तो आचार्य बालक को लेके उत्तमासन पर वेदि के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् सामान्य प्रकरणोक्त विधि करके व्याहृति आहुति चार और स्विष्टकृत् आहुति एक, प्राजापत्याहुति एक मिलकर छः आज्याहुति भी बालक के हाथसे दिलानी। तत्पश्चात्ः—

ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु। ओं यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि। ओं एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। ओं यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि। ओं एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥१॥ पार० गृ० सू० का० २। क० ४। सू० १-२॥

अर्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर! तू (सुश्रवः) बड़ा यशस्वी है, इसलिये (मा) मुझे भी (सुश्रवसम्) बडा यशस्वी (कुरु) कर, हे (सुश्रवः, अग्ने) अच्छे यश वाले ईश्वर (यथा, त्वम्) जैसे तू (सुश्रवाः) अच्छे यश वाला (असि) है। हे (सुश्रवः) शोभन यशस्वी! (एवम्) ऐसे ही (माम्) मुझे (सौश्रवसम्) सुन्दर यश वाला (कुरु) कर। हे (अग्ने) भौतिक अग्ने! (देवानाम्) जल आदि देवताओं के बीच में (त्वम्) तू (यज्ञस्य) यज्ञ हवनादि क्रिया और शिल्प विद्या आदि के (निधिपा) कोष का रक्षक (असि) है (एवम्, अहम्) ऐसेही मैं (मनुष्याणाम्) मनुष्यों के बीच में (वेदस्य) वेदविद्या—ज्ञानसम्बन्धी सब विद्या के (निधिपा) कोश का स्वामी, ईश्वर करे कि (भूयासम्) होऊं। इस मन्त्र से वेदि के अग्नि को इकठ्ठा करना तत्पश्चात् बालक कुण्ड की प्रदक्षिणा करके "अदितेनुमन्यस्व०" इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसिञ्चन करके बालक कुण्ड के दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख खड़ा रहकर, घृत में भिजो के एक समिधा हाथ में लेः—

ओं अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसऽएवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्व्यन्नादो भूयासँ स्वाहा ॥१॥ पार० गृ०सू० का०२। क०। ४ सू०३॥

अर्थः—(बृहते) बड़े (जातवेदसे) ज्ञान देने वाले ईश्वर (अग्नये) अग्नि के लिये, मैं ब्रह्मचारी (समिधम्) समिधा-हवनार्थ लकड़ी को (आहार्षम्) लाया हूं। हे (अग्ने)

---

* वेदारम्भ उसको कहते है जो गायत्री मन्त्र से लेके साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों के अध्ययन करने के लिए नियम धारण करना।

भौतिक अग्ने ! (यथा, त्वम्) जैसे तू (समिधा, समिध्यसे) लकड़ी से प्रदीप्त होती है—बढ़ती है (एवम्) ऐसे ही (अहम्) मैं (आयुषा) आयु से (मेधया) धारणावती बुद्धि से (वर्चसा) तेज से (पशुभिः) पशुओं से (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मोपासना संबन्धी तेज से (समिन्धे) प्रदीप्त होऊं बढ़ूं । (मम) मेरा (आचार्यः जीवपुत्रः) आचार्य, जीता रहे पुत्र जिसका ऐसा और (अहम्) मैं (मेधावी) स्वच्छबुद्धि वाला (असानि) होऊं और (अनिराकरिष्णुः) किसी का तिरस्कार न करने वाला (यशस्वी) यशवाला (तेजस्वी) तेजवाला (ब्रह्मवर्चस्वी) ब्रह्मसंबन्धी तेजवाला अर्थात् आत्मिक बल वाला (अन्नादः) अन्नादि पदार्थों का उपभोग करनेवाला ईश्वर करे कि (भूयासम्) होऊं । इस मन्त्र को बोलकर समिधा अग्नि के मध्य में छोड़ देवे, इसी प्रकार * दूसरी और तीसरी समिधा छोड़े । पुनः "अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं०" इस मन्त्र से वेदिस्थ अग्नि को इकट्ठा करके "ओं अदितेनुमन्यस्व" इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसेचन करके बालक, वेदि के अग्नि पर‡ दोनों हाथों को थोड़ा सा तपाके हाथ में जल लगाः—

ओं तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वम्मे पाहि ॥१॥ य० अ० ३ । मं० १७ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) भौतिक अग्ने ! तू (तनूपाः, असि) शरीर का रक्षक है, अतः (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की भी (पाहि) रक्षा कर ॥१॥

ओं आयुर्दाऽअग्नेस्यायुर्मे देहि ॥ २ ॥ य० अ० ३ । मं० १७ ॥

अर्थः—(आयुर्दाः असि) आयु देने वाला है अतः (मे) मेरे लिए (आयुः) को (देहि) दे ॥ २ ॥

ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्च्चो मे देहि ॥३॥ य० अ० ३ । मं० १७॥

अर्थ—हे (अग्ने) अग्ने ! तू (वर्चोदाः, असि) तेज देने वाला है, अतः (मे) मेरे (वर्चः) तेज (देहि) दे ॥ ३ ॥

ओं अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण ॥४॥ य० अ० ३ । मं०१७॥

अर्थः—हे (अग्ने) अग्ने ! (यत्, मे) मेरा जो (तन्वाः, ऊनम्) शरीर का न्यूनांश है (मे) मेरे लिए (तत्) उसे (आपृण) पूरा कर ॥ ४ ॥

ओं मेधां मे देवः सविता आ दधातु ॥५॥

अर्थः—(सविता) सर्वोत्पादक ईश्वर (मे) मेरे लिए (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को (आ, ददातु) अच्छे प्रकार देवे ॥ ५ ॥

---

* पार० गृ० सू० का० २ । क० ४ । मं० ४ ।

‡ पार० गृ० सू० का० २ । क० ४ । सू० ७ ।

ओं मेधां मे देवी सरस्वती आ दधातु ॥ ६ ॥

अर्थः—(सरस्वती, देवी) ज्ञान वाली ईश्वर शक्ति० शेष पूर्ववत् ॥ ६ ॥

ओं मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ ७ ॥ पार० गृ० सू० का० २ । कं० ४ । सू० ८ ॥

अर्थः—(अश्विनौ, देवौ) अध्यापक और उपदेशक विद्वान् जो कि (पुष्करस्रजौ) कमल की माला से अलङ्कृत हों अर्थात् सुपूजित हों (मे) मेरे लिए लिए (मेधाम्) स्वच्छ बुद्धि को (आ, धत्ताम्) देवें ॥ ७ ॥

इन सात मन्त्रों से सात वार किञ्चित् हथेली उष्ण कर जल स्पर्श करके मुखस्पर्श करना,

ओं * वाक्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से मुख

अर्थः—हे ईश्वर ! मेरी वाणी अच्छी तरह बढ़े ।

ओं प्राणश्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से नासिका द्वार

अर्थः—हे ईश्वर मेरे प्राण अच्छी तरह बढ़े ।

ओं चक्षुश्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से दोनों नेत्र

अर्थः—हे ईश्वर मेरे नेत्र अच्छी तरह बढ़े ।

ओं श्रोत्रञ्च म आप्यायताम् ॥ इस मंत्र से दोनों कान

अर्थ—हे ईश्वर मेरी श्रवणशक्ति अच्छी तरह बढ़े

ओं यशो बलञ्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से दोनों बाहुओं को स्पर्श करे ॥

अर्थः—हे ईश्वर मेरा यश और बल अच्छी तरह बढ़े ।

ओं मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु । यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम् । यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम् । यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ । कं० २१ । सू० ४ † ॥

अर्थः—(अग्निः) परमात्मा (मयि ३) मुझ में ३ (मेधां, प्रजां, तेजांः) धारणावती बुद्धि, कुटुम्बिवर्ग और तेज को (दधातु) धारण करें । ३ जगह आए " मयि " शब्द का ३ वस्तुओं के साथ क्रियासहित संबन्ध कर लेना चाहिए । (इन्द्रः) परमैश्वर्य संपन्न परमात्मा (इन्द्रियम्) ज्ञानसाधन शक्ति० को० शेष पूर्ववत् । (सूर्यः) सूर्यवत् प्रकाशमान परमात्मा (भ्राजः) दीप्ति—चमक को० शेष पूर्ववत् । हे (अग्ने) पूज्य परमेश्वर (यत्) जो (ते) तेरा तेज है (तेन्) उस तेज से (अहम्) मैं (तेजस्वी) तेजवाला (भूयासम्) होऊं । (वर्चः) सामर्थ्य० शेष पूर्ववत् । (हरः) अपहरण करने की शक्ति वा क्रोधशक्ति०

---

* इस शिष्टाचरित, सूत्रकारांतर प्रदर्शित, अंगालम्भ को पार० गृ० सू० का० २ । कं० ४ में परिशिष्ट रूप से पारस्कराचार्य मानते हैं ।

† तैत्तिरी० आर० अ० ४४ ॥

शेष पूर्ववत् । इन मंत्रों से बालक परमेश्वर का उपस्थान करके कुण्ड की उत्तर बाजू की ओर जाके जानू को भूमि में टेक के पूर्वाभिमुख बैठे और आचार्य बालक के सन्मुख पश्चिमाभिमुख बैठे ॥

बालकोक्तिः—अधीहि भूः सावित्रीम् भो अनुब्रूहि ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ । कं० २१ । सू० ४ ॥

अर्थः—हे आचार्य ! (अधीहि) पढाइये ! इस समय अन्य कुछ नहीं किन्तु (भोः) हे आचार्य ! (सावित्रीम) गायत्री मन्त्र का (अनुब्रूहि) उपदेश कीजिए यह आश्वलायन गृ० सू० में जानू टेकने की तथा बालक के हाथ पकडने की मूल भाषोक्त सब विधि है । यह भी लिखा है कि एक एक पाद करके वा ऋचा का आधा आधा भाग करके सब गायत्री को एक वार वा (यथाशक्ति वाचयीत, आश्व० गृ० अ० १ कं० २१। सू० ६) यथाशक्ति जितना बालक बोल सके उतना ही उतना कहलवा कर उपदेश करे । ऐसा ही पारस्कर गृ० सू० प्र० २ । का० ३ सू० ५ में लिखा है । गोभि गृ० सू० प्र० २ का० १० । सू० ४० में इतना विशेष है कि महाव्याहृतियों—भूः, भुवः, स्वः इन तीनो को पृथक् पृथक् बोल कर " ओं " कार अन्त में लगा देना चाहिये । अर्थात् आचार्य से बालक कहे कि हे आचार्य ! प्रथम एक ओंकार पश्चात् तीन महाव्याहृति तत्पश्चात् सावित्री ये त्रिक अर्थात् तीनों मिलके परमात्मा के वाचक मन्त्र का मुझे उपदेश कीजिये तत्पश्चात् आचार्य एक वस्त्र अपने और बालक के कंधे पर रखके अपने हाथ से बालक के दोनों हाथ की अंगुलियों को पकड़ के नीचे लिखे प्रमाणे बालक को तीन वार करके गायत्री मन्त्रोपदेश करे । प्रथम वार—

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् ।

इतना टुकड़ा एक एक पद का शुद्ध उच्चारण बालक से करा के दूसरीवार—

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

एक एक पद का यथावत् धीरे धीरे उच्चारण के तीसरी वार—

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ य० अ० ३६ । मं० ३ ॥

धीरे धीरे इस मन्त्र को बुलवा के संक्षेप से इसका अर्थ भी नीचे लिखे प्रमाणे आचार्य सुनावे—

अर्थ :—(ओ३म्) यह मुख्य परमेश्वर का निज नाम है जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं (भूः) जो प्राण का भी प्राण (भुवः) सब दुःखों से छुड़ाने हारा (स्वः) स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुखों की प्राप्ति करानेहारा है उस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक समग्र ऐश्वर्य

के दाता (देवस्य) कामना करने योग्य सर्वत्र विजय करानेहारे परमात्मा का, जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करने हारा पवित्र शुद्ध स्वरूप है। (तत्) उसको हम लोग (धीमहि) धारण करें (यः) यह जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे इसी प्रयोजन के लिये इस जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना करना और इससे भिन्न किसी को उपास्य इष्टदेव उसके तुल्य वा उससे अधिक नहीं मानना चाहिये। इस प्रकार अर्थ सुनाये पश्चात्—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि। मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम* वाचमेकव्रतोऽजुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥ १॥
पार० का० २। कं० २॥ सू० १६॥

अर्थः—हे शिष्य तेरे हृदय को मैं अपने अनुकूल करताहूं तेरा चित्त, मेरे चित्त के अनुकूल सदा रहे और तू मेरी वाणी को एकाग्र मन हो प्रीति से सुना कर, उसके अर्थ का सेवन किया कर और आज से तेरी प्रतिज्ञा के अनुकूल बृहस्पति परमात्मा तुझ को मुझ से युक्त करे। इस मन्त्र से बालक और आचार्य पूर्ववत् ‡ दृढ़ प्रतिज्ञा करके—

ओं इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्॥ १॥
पार० गृ० सू० का० २। कं० २। सू० ८ तथा सा० मं० ब्रा० ख० ६। मन्त्र १७॥

अर्थः—इस मन्त्र में दो वार आया हुआ "इयम्" "इयम्" शब्द आदि और अन्त में वाक्यालङ्कार के लिये है, यह पारस्कर गृ० सू० के भाष्यकार गदाधराचार्य का कथन। (इयम्, मेखला) यह मेखला ब्रह्मचारी को कटि में बांधने योग्य मुञ्ज आदि की बनी हुई रस्सी (स्वसा, सुभगा) भगिनी के तुल्य सौभाग्यवती (देवी) और सुन्दर चमकने वाली है। और (दुरुक्तं † परिबाधमाना) निन्दायुक्त वचन को सब तरफ से हटाती हुई और (वर्णं, पवित्र पुनती) वर्णभाव को पवित्र करती हुई और (प्राणापानाभ्याम्) प्राण अपान वायु को ठीक रखने के कारण (बलम् आदधाना) बल को देनेवाली होकर (इयम्) यह मेखला (मे) मुझे (आअगात्) अच्छी तरह प्राप्त हुई है। यह मन्त्र कुमार को ही बोलना चाहिये ऐसा अनेक आचार्यों का मत है।

इस मन्त्र को बुलवा के आचार्य सुन्दर चिकनी प्रथम बनाके रक्खी हुई मेखला¶ को बालक की कटि में बांध के—

* मना पाठभेद भी है। 'वाचमेकमना'

‡ पूर्ववत्—अर्थात् हृदय देश में हाथ धरके।

† दुरुक्तम्—वात्यानांदुरपवादवचनमिति सत्यव्रतसामश्रमी।

¶ ब्राह्मण को मुंज वा दर्भ की, क्षत्रिय को धनुष् संज्ञक तृण वा बल्कल की और वैश्य को ऊन वा शण की मेखला होनी चाहिये। पार०गृ०सू०का० २। कं० ५। सू० २१—२४॥

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगातत्स उ श्रेयान्भवति जायमानः । तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० २ । सू० ९ ॥ ऋ० मं० ३ । अ० १ । सू० ८ । मन्त्र ४ ॥

अर्थ—दृढ़ शरीर वाला, स्वच्छ वस्त्रों को धारण करने वाला, यज्ञोपवीत, मेखलादि से परिवेष्टित जो ब्रह्मचारी संमुख प्राप्त होता है वैसे ही स्थिति करता हुआ वह लोगों का कल्याण करनेवाला होता है । बुद्धिपूर्वक कार्यकर्त्ता, पूर्वापरदर्शी, अच्छे ध्यान वाले, मनसे देवभाव की कामना करने वाले विद्वान् उस ब्रह्मचारी को सद्गुणयुक्त शिक्षाप्रदान से उन्नत करते हैं ।

इस मन्त्र को बोल के दो शुद्ध कौपीन दो अंगोछे और एक उत्तरीय वस्त्र और कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे, और उनमें से एक कौपीन एक कटिवस्त्र और एक उपना बालक को आचार्य धारण करावे तत्पश्चात् आचार्य दण्ड‡ हाथ में लेके सामने खड़ा रहे और बालक भी आचार्य के सामने हाथ जोड़—

ओं यो मे दंडः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम् । तमहं पुनराददं आयुषे ब्राह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० २ । सू० १२ ॥

अर्थः—(यः, दण्डः) जो दण्ड (मे, पराऽपतत्) मेरे ब्रह्मचारी के संमुख आया हुआ है जोकि (वैहायसः) आकाश में ऊंचा खडा हुआ है और (अधिभूम्यम्) भूमि में स्थित है (अहम्) मैं (तम्) उस दण्ड को (पुनः) विशेषरूप से (आ, ददे) ग्रहण करता हूं । किसलिए ! (आयुषे) जीवन की रक्षा के लिए (ब्रह्मणे) वेद ग्रहण के लिए (ब्रह्मवर्चसाय) वेद के प्रचार से उत्पन्न उत्कृष्ट तेज के लिए । इस मंत्र को बोल के आचार्य के हाथ से दण्ड ले लेवे तत्पश्चात् पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम का साधारण उपदेश करे—

ब्रह्मचार्यसि असौ § ॥१॥ अर्थः—तू आज से ब्रह्मचारी है ॥१॥

अपोअशान ॥२॥ नित्य सन्ध्योपासन और भोजन के पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर ॥ २ ॥ कर्म कुरु ॥ ३ ॥ दुष्ट कर्मों को छोड धर्म युक्त कर्म किया कर ॥ ३ ॥

---

‡ ब्राह्मण के बालक को खडा रख के भूमि से ललाट के केशों तक पलाश वा बिल्व वृक्ष का, क्षत्रिय को वट वा खदिर का ललाट भ्रूतक, वैश्य को पीलू अथवा गूलर वृक्षका नासिका के अग्रभाग तक दंड प्रमाण है और वे उनके दंड चिकने सूधे हों अग्नि में जले, टेढे, कीड़ों के खाये हुये न हों और एक एक मृगचर्म उनके बैठने के लिये एक एक जलपात्र एक एक उपपात्र और एक एक आचमनीय सब ब्रह्मचारियों को देना चाहिये । पार० गृ० सू० का० २ । क० ५ । सू० २५–२७ ॥ अठाईसवां सूत्र है—"सर्वे वा सर्वेषाम्" सब प्रकार के दण्ड सब के पास हो सकते हैं ।

§ असौ इस पद के स्थान में ब्रह्मचारी का नाम संबोधनान्त उच्चारण करे ।

दिवा मा स्वाप्सीः ॥४॥ दिन में शयन कभी मत कर ॥४॥ गोभि० २।१०।३३,३४

आचार्याधीनो वेदमधीष्व ॥५॥ आचार्य के आधीन रहके नित्य सांगोपांग वेद पढ़ ॥५॥

द्वादश वर्षाणि प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं ग्रहाण वा ब्रह्मचर्यं चर ॥ ६ ॥

एक एक सांगोपांग वेद के लिये बारह बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य अर्थात् ४८ वर्षतक वा जबतक सांगोपांग चारों वेद पूरे होंवे तबतक अखण्डित ब्रह्मचर्य कर ॥६॥

आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात् ॥ ७ ॥

आचार्य के आधीन धर्माचरण में रहा कर, परन्तु यदि आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करे उसको तू कभी मत मान और उसका आचरण मत कर ॥ ७ ॥

क्रोधानृते वर्जय ॥ ८ ॥ क्रोध और मिथ्याभाषण करना छोड दे ॥ ८ ॥

मैथुनं वर्जय† ॥ ९ ॥ आठ प्रकार के मैथुन को छोड दे ॥ ९ ॥

उपरि शय्यां वर्जय ॥ १० ॥ अर्थः—भूमि में शयन करना, पलंग आदि पर कभी न सोना ॥ १० ॥

कौशीलवगन्धाञ्जनानि वर्जय ॥ ११ ॥ अर्थः—कौशीलव अर्थात् गाना, बजाना तथा नृत्य आदि निन्दित कर्म, गन्ध और अञ्जन का सेवन मत कर ॥ ११ ॥

अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं लोभमोहभयशोकान् वर्जय ॥१२॥

अर्थः—अतिस्नान, अति भोजन, अधिक निद्रा, अधिक जागरण, निन्दा, लोभ मोह, भय, शोक का ग्रहण कभी मत कर ॥ १२ ॥

प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनस्नान-सन्ध्योपासनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासान्नित्यमाचर ॥ १३ ॥

अर्थः—रात्रि के चौथे पहर में जाग आवश्यक शौचादि, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर ॥ १३ ॥

क्षुरकृत्यं वर्जय ॥ १४ ॥ अर्थः—क्षौर मत करा ॥ १४ ॥

मांसरूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय ॥ १५ ॥

अर्थः—मांस, रूखा, शुष्क अन्न मत खावे और मद्यादि मत पीवे ॥ १५ ॥

गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय ॥ १६ ॥

अर्थः—बैल घोड़ा हाथी ऊंट आदि की सवारी मत कर ॥ १६ ॥

अन्तर्ग्रामनिवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय ॥ १७ ॥

अर्थः—गांव में निवास और जूता और छत्र का धारण मत कर ॥ १७ ॥

† स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिंगन, एकांतवास और समागम यह आठ प्रकार का मैथुन कहलाता है। जो इनको छोड़ देता है वही ब्रह्मचारी होता है।

अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेताः सततं भव ॥ १८ ॥ अर्थः—लघुशङ्का के विना उपस्थ इन्द्रिय के स्पर्श से वीर्य-स्खलन कभी न करके वीर्य को शरीर में रखके निरन्तर ऊर्ध्वरेता अर्थात् नीचे वीर्य को मत गिरने दे, इस प्रकार यत्न से वर्त्ता कर ॥ १८ ॥

तैलाभ्यङ्गमर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व ॥१९॥

अर्थः—तैल उबटनादि से अङ्गमर्दन, अति खट्टा अमली आदि, अति तीखा—लालमिरची आदि, कसेला—हरड़े आदि, क्षार—अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर ॥ १९ ॥

नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव ॥ २० ॥

अर्थः—नित्य युक्ति से आहार विहार करके विद्या-ग्रहण में यत्नशील हो ॥ २० ॥

सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव ॥ २१ ॥

अर्थः—सुशील, थोड़ा बोलनेवाला, सभा में बैठने योग्य गुण ग्रहण कर ॥ २१ ॥

मेखलादण्डधारणभैक्ष्यचर्यसमिदाधानोदकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरणप्रातःसायमभिवादनविद्यासञ्चयजितेन्द्रियत्वादीन्येते ते नित्यधर्माः ॥ २२ ॥

अर्थः—मेखला और दण्ड का धारण, भिक्षाचरण, अग्निहोत्र, स्नान, सन्ध्योपासन, आचार्य का प्रियाचरण, प्रातः सायं आचार्य को नमस्कार करना, विद्यासञ्चय, जितेन्द्रिय रहना आदि ये तेरे नित्य करने के और जो निषेध किये वे नित्य न करने के कर्म हैं ॥ २२ ॥

जब यह उपदेश पिता कर चुके तब बालक पिता को नमस्कार कर हाथ जोड़ के कहे कि जैसा आपने उपदेश किया वैसा ही करूंगा तत्पश्चात् ब्रह्मचारी यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में खड़ा रहके माता*, पिता, बहिन, भाई मामा, मौसी, चाची आदि से लेके भिक्षा देने में नकार न करें उन से भिक्षा† मांगे और जितनी भिक्षा मिले वह आचार्य के आगे धर देनी। तत्पश्चात् आचार्य उस में से कुछ थोड़ासा अन्न लेके वह सब भिक्षा बालक को दे देवे और वह बालक उस भिक्षा को अपने भोजन के लिये रख छोड़े तत्पश्चात् बालक को शुभासन पर बैठा वामदेव्यगान करना चाहिये तत्पश्चात् बालक पूर्व रक्खी हुई भिक्षा का भोजन करे। पश्चात् सायंकाल तक विश्रामऔर गृहाश्रमसंस्कार में लिखी विधि सन्ध्योपासना आचार्य्य बालक के हाथ से

* मूल भाषा में लिखी सब विधि गोभिलीय गृ० सू० प्र० २। का० १०। सू० ४३ आदि में लिखी है।

† ब्राह्मण का पदाधिकाकारी बालक यदि पुरुष से भिक्षा मांगे तो "भवान् भिक्षां ददातु" और जो स्त्री से मांगे तो "भवती भिक्षां ददातु" और क्षत्रिय-पदाधिकारी बालक "भिक्षां भवान् ददातु" और स्त्री से "भिक्षां भवती ददातु" वैश्यपदाधिकारी बालक "भिक्षां ददातु भवान्" और "भिक्षां ददातु भवती" ऐसा वाक्य बोले ॥ पार० गृ० सू० २। कं० ५। सू० १–४॥

करावे और पश्चात् ब्रह्मचारी सहित आचार्य कुण्ड के पश्चिम भाग में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे और स्थालीपाक भात बना उसमें घी डाल पात्र में रख समिदाधान कर पुनः समिधा प्रदीप्त कर आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार दोनों मिल के आठ आज्याहुति देनी, तत्पश्चात् ब्रह्मचारी खड़ा होके "ओं अग्ने सुश्रवः" इस मन्त्र से तीन समिधा की आहुति देवे, तत्पश्चात् बालक बैठ के यज्ञकुण्ड की अग्नि से अपना हाथ तपा पूर्ववत् मुख का स्पर्श करके अङ्गस्पर्श करना, तत्पश्चात् पूर्व लिखे प्रमाणे बनाए हुए भात § को बालक आचार्य को होम और भोजन के लिये देवे, पुनः आचार्य उस भात में से आहुति के अनुमान भात को स्थाली में लेके उसमें घी मिला:—

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषं स्वाहा॥ इदं सदसस्पतये इदन्न मम॥ १॥ य० अ० ३२। मं० १३॥

अर्थः—हे ज्ञान के पति आश्चर्यस्वरूप आनन्दरूप जीवमात्र के अभिलषणीय ईश्वर को तथा विवेचना शक्ति को देने वाली शुद्ध बुद्धि को मैं प्राप्त होऊं॥ १॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ इदं सवित्रे-इदन्न मम॥ २॥ य० अ० २२। मं० ९॥

अर्थः—हे प्रकाशस्वरूप, सब ऐश्वर्य के दाता, कामना करने योग्य परमात्मा का जो अतिश्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य सब क्लेशों को भस्म करने वाला पवित्र स्वरूप है, उसको हम लोग धारण करें जो परमात्मा हमारी बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा करे इसी प्रयोजन के लिये उस जगदीश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करें॥ २॥

ओं ऋषिभ्यः स्वाहा॥ इदं ऋषिभ्यः—इदन्न मम॥ ३॥

आश्व० गृ० अ० १। कं० २२। सू० ११-१२-१४॥

अर्थः—ऋषियों के लिये सुहुत हो।

इन तीन मन्त्रों से तीन और (ओं सदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से चौथी आहुति देवे तत्पश्चात् व्याहृति आहुति चार और (ओं त्वन्नो०) इन आठ मन्त्रों से आज्याहुति देके ब्रह्मचारी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के वामदेव्यगान आचार्य के साथ करे।

अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं भो भवन्तमभिवादये॥

---

§ ओ३म् देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः॥ गोभिल गृ० प्र० १। ख० ७। सू० २४॥ इस मंत्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्य को यथावत् शुद्ध कर लेना चाहिये अर्थात् सब को यथावत् शोध छान देखभाल सुधारकर करें, इन द्रव्यों को यथायोग्य मिला के पाक करना। जैसे कि सेरभर मिश्री के मोहन भोगमें रत्तीभर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो मासे जायफल, जावित्री, सेर भर मीठा, सब डालकर, मोहन भोग बनाना इसी प्रकार अन्य मीठा भात, खीर, खिचड़ी मोदक आदि होम के लिये बनावें। (संस्कारविधि)

अर्थः—(भोः) हे आचार्य ! (अमुकगोत्रोत्पन्नः, अहम्) अमुक गोत्र में उत्पन्न हुआ मैं (भवन्तम्) आपके प्रति (अभिवादये) प्रणाम करता हूं ॥

ऐसा वाक्य बोल के आचार्य का वन्दन करे और आचार्यः—

आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य ॥

अर्थः—हे (सौम्य) शान्तिशील ! ब्रह्मचारिन् ! तू (अयुष्मान् विद्यावान्) प्रशस्त आयु वाला और सुन्दर विद्यावाला ईश्वर करे कि (भव) हो ॥

ऐसा आशीर्वाद देके पश्चात् होम से बचे हुए हविष्य अन्न और दूसरे भी सुन्दर मिष्टान्न का भोजन आचार्य के साथ अर्थात् पृथक् पृथक् बैठ के करे तत्पश्चात् हस्तमुख प्रक्षालन करके संस्कार में निमन्त्रण से जो आये हों उनको यथायोग्य भोजन करा स्त्रियों को स्त्री और पुरुषों को पुरुष प्रीतिपूर्वक विदा करें और सब जने बालक को निम्नलिखितः—

हे बालक ! त्वमीश्वरकृपया विद्वान् शरीरात्मबलयुक्तः कुशली वीर्यवानरोगः सर्वा विद्या अधीत्याऽस्मान् दिदृक्षुः सन्नागम्याः ॥

अर्थः—हे बालक ! ब्रह्मचारिन् ! (त्वम्) तू (ईश्वरकृपया) ईश्वर की दया से (विद्वान्) पण्डित (शरीरात्मबलयुक्तः) शरीर और मानसिक बल से युक्त हुआ और (कुशली) सुखी (वीर्यवान्) पराक्रमी (अरोगः) रोग रहित होकर (सर्वा विद्या, अधीत्य) सब विद्याओं को पढ़कर (अस्मान् दिदृक्षुः, सन्) हम को देखने की इच्छा करता हुआ (आगम्याः) ईश्वर करे कि हमें प्राप्त हो—गुरुकुल से लौट कर हमें मिले ॥

ऐसा आशीर्वाद देके अपने घर को चले जावें, तत्पश्चात् ब्रह्मचारी तीन दिन तक भूमि में शयन करे, प्रातः सायं बालक को (ओमग्ने सुश्रवः०) इस मन्त्र से समिधा होम और मुख आदि अङ्ग स्पर्श आचार्य करावे तथा तीन दिन तक (सदसस्पति०) इत्यादि मन्त्र से स्थालीपाक की आहुति पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मचारी के हाथ से करावे और तीन दिन तक, क्षारलवणरहित पदार्थ का भोजन ब्रह्मचारी किया करे तत्पश्चात् पाठशाला में जाके गुरु समीप विद्याभ्यास करने के समय की प्रतिज्ञा करे तथा आचार्य भी करे। इसके आगे मूलसंस्कारविधि में लिखे अथर्ववेद के मन्त्रों का पता ऐसा होना चाहिये, अथर्व० का० ११। अनु०३। सू०५। मं० ३।४।६।१७।१८।२४॥

इति वेदारम्भसंस्कारविधिः ।

वेदारम्भसंस्कारसम्बन्धी व्याख्या

वेदारम्भ उसको कहते हैं जो गायत्री मन्त्र से लेके साङ्गोपाङ्ग* चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करना ।

---

* (अङ्ग) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष। (उपाङ्ग) पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त । (उपवेद) आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद अर्थात् शिल्पशास्त्र । (ब्राह्मण) ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ । (वेद) ऋक, यजुः, साम, और अथर्व इन सब को क्रम से पढ़ें ।

समय—जो दिन उपनयनसंस्कार का है वही वेदारम्भ का है यदि उस दिवस में न होसके अथवा करने की इच्छा न हो तो दूसरे दिन करे यदि दूसरा दिन भी अनुकूल न हो तो एक वर्ष के भीतर किसी दिन करे।

पुराने समय में माता पिता संस्कृत बोलते थे, उस समय जब वेदारम्भसंस्कार किया जाता था तो प्रथम गायत्री मन्त्र सिखाने में आता था। आजकल हिंदी बोलने वाले बच्चे को यदि कोई हिंदी का दोहा आठ वर्ष की आयु में सिखाया जावे तो वह बहुत कुछ समझ सकता है और एक वा दो वार उसके अर्थ बतलाने पर उसके मन पर उस दोहे के अर्थों का प्रभाव पड़ सकता है। आजकल हमें वेदारम्भ के समय गायत्री मंत्र सिखाना कठिन प्रतीत होता है जिस समय में देशभर में सब नर नारी संस्कृत बोलते थे उस समय कुछ भी कठिनाई बच्चे को नहीं हो सकती थी।

महर्षि दयानन्दजी ने जो शिक्षणप्रणाली लिखी है। उस में अष्टाध्यायी को पहिले लिखा है। परन्तु पढानेवालों को चाहिये कि अष्टाध्यायी पढाने से पूर्व वा उसके साथ बोल चाल की संस्कृत सचित्र पुस्तकें छात्रों को पढावें और उनसे संस्कृत में बातचीत किया करे तथा रात्रि को आध घंटे के लिये कोई बोधदायक कहानी वा वार्ता कहा करें। पुराने समय में आठ वर्ष तक घर मे बच्चा इतनी संस्कृत बोलचाल द्वारा सीख कर आता था कि आजकल एक पंडित भी उतनी संस्कृत बोलचाल द्वारा नहीं सीख सकता। इसलिये जो लोग यह शंका करते है कि गायत्री मन्त्र से संस्कार का आरम्भ नहीं करना चाहिये वा ऋषियों ने क्यों ऐसा रक्खा, वे इस बात को भूल जाते है कि यह पद्धति उस समय की थी जब कि संस्कृत लोगों की मातृभाषा हुआ करती थी। इस समय गायत्री मन्त्र का उपदेश करना मानो पुरानी प्रथा का पुनः प्रचार करना है, परन्तु यह बात तभी पूर्णरूप से सफल होसकेगी जब आजकल संस्कृत पढनेवाले बच्चों को आरम्भ से ही संस्कृतभाषाभाषी बनाने का यत्न कराया जावे। पुराने समय में गायत्री मन्त्र से आरम्भ करके अंग उपांग सहित वेदो को पढाने की मर्य्यादा थी। इस संस्कार के समयसम्बन्धी तीन विकल्प लिखे हैं—(१) जिस दिन उपनयन हो उसी दिन यह संस्कार करना। (२) उससे दूसरे दिन करना। (३) उपनयन से एक वर्ष के भीतर किसी दिन करना। यह तीनों प्रकार भिन्न रीति के सुविधासूचक हैं।

प्रातःकाल शुद्ध जल से स्नान करा कर शुद्ध वस्त्र पहिना पिता और यदि पिता न हो तो आचार्य बालक को लेकर वेदि पर बैठे और साधारण होम की सोलह आहुति देने के पश्चात् प्रधान आहुति और छः आज्याहुति भी दिलावे फिर " अग्ने सुश्रवः " इत्यादि वचन-पाठ करके बालक* वेदि की अग्नि को इकट्ठा करे, ऐसा विधान है।

" अग्ने सुश्रवः " इस मन्त्र में अग्नि शब्द पहिले ईश्वर फिर भौतिक अग्नि के अर्थों में आया है। पहिले भाग में ईश्वर को यशस्वी तथा श्रवणशक्तिमय मान कर उससे यश

* विवरणः—बालक से अभिप्राय लडका लड़की दोनो से होसकता है। यदि लड़की का यह संस्कार हो तो उसे आचार्या (आचार्य की स्त्री) होमादि करावे।

तथा श्रवणशक्ति की प्रार्थना की गई है। ईश्वर ने जो प्रत्येक मनुष्य के मन में यश की कामना रक्खी है यह इसलिये कि वह अपनी तथा पराई उन्नति कर सके। बच्चों में यश सुनने की चेष्टा बहुत देखने में आती है छोटे बच्चे ने घर में जब अच्छा कपडा पहिना है तो मा बाप से पूछते हैं कि कैसा है और यथार्थस्तुति सुनने पर प्रसन्न होते हैं। अच्छा काम करने पर अच्छा कहलाने का बच्चों को शौक होता है। यह जरूरत है कि अध्यापक लोग बच्चों को यह समझाते रहें कि जिस तरह तुम अपना यश सुनकर प्रसन्न होते हो उसी तरह पर जब तुम्हारे किसी सहपाठी को यश प्राप्त हो तो उसको सुनने पर भी प्रसन्न रहो और ईर्ष्या द्वेष से उसको बुरा न कहो। जिस प्रकार बालक खाने का अधिकारी है, उसी प्रकार मानसिक यश प्राप्ति का भी अधिकारी है जब हम दूसरे मनुष्य को खाते देख कर यह समझते हैं कि उसको भी खाने का अधिकार है, और उस पर ईर्ष्या नहीं करते तो जिस समय किसी दूसरे का यश सुनें तो हमें कहना चाहिये कि उसने अच्छा कर्म किया तो उसको यह फल मिला। हमको कोई भी अच्छे कर्म करने से रोकता नहीं। यदि हम भी यश चाहते हैं तो हमको भी अच्छा कर्म करना चाहिये। जो मनुष्य आप अच्छा कर्म न करते हुए केवल दूसरे यशस्वी मनुष्यों को बुरा कहने से अपने मन को शांत करते हैं वे मनुष्य धर्मात्मा नहीं हैं। यूरोप के वे विद्वान् जिन्होंने वधिर और मूक छात्रों के लिये पाठशालायें निकाली हैं और जो संकेत द्वारा शिक्षण देते हैं वे अनुभव से लिखते हैं कि विद्योपलब्धि का प्रथम साधन श्रोत्रेन्द्रिय है। वे लिखते हैं कि जो जन्म से पूर्ण बधिर है वह जन्म भर मूक भी रहेगा। इसलिये ब्रह्मचारी का प्रथम कर्त्तव्य है कि वह चक्षु इन्द्रिय के समान कर्णेन्द्रिय की भी रक्षा करता रहे। इसी मन्त्र के पिछले भाग में दर्शाया गया है कि भौतिक अग्नि यज्ञ का कोशरक्षक है। जो लोग समझते हैं कि आग में सामग्री डालनेसे वह नष्ट हो जाती है वे लोग सूक्ष्मदर्शी नहीं। आग में डाली हुई सामग्री सूक्ष्मरूप धारण करके सुरक्षित होजाती है नष्ट नहीं होती। उसी प्रकार शब्द सुनकर विचार वा मनन करने से जो बालक उसका सूक्ष्मरूप मन में धारण करलेता है वह जन विद्या का मनुष्यों के बीच में रक्षक है। जिसके पास बहुत पुस्तकें हैं वह विद्या का रक्षक नहीं किन्तु वह जिसने पुस्तकों का सार अदृश्यरूप से मन में धारण किया हुआ है। "विद्या कंठ और पैसा गंठ" यह जनश्रुति इसीलिये बनी है। आजकल यूरोप में पुस्तकों का बहुत भारी उपयोग किया जाता है और इसीलिये लोगों की स्मृति न्यून होगई है और यदि पुस्तकें नष्ट होजावें तो मानो विद्या ही नष्ट होगई। स्मृतिवर्द्धक भाषण (मेमोरी लेक्चर्स) नामी अनेक पश्चिमी पुस्तकों में आजकल लिखा है कि मर्य्यादा से अधिक पुस्तकों द्वारा पढ़ने से मनुष्यों की स्मृति न्यून होगई है और वे स्पष्ट लिखते हैं कि "प्राचीन ब्राह्मणों की शैली विद्या पढ़ने की बहुत उत्तम थी" उससे सार वस्तु मन में रहआती थी। ऋषियों की शिक्षण प्रणाली को "प्रवचन" कहते हैं। विशेष करके विना पुस्तकों के पढ़ाने की वह शैली थी। उसी

के प्रचारक ऋषियों नें शिक्षण पाठावली में जितने ग्रन्थ रक्खे थे उनमें प्रायः अधिक

ग्रन्थ सूत्ररूप से होते थे, ताकि बालकों को याद रखने में बहुत श्रम न हो। यह सच है कि पुराने समय में इन सूत्रों की पूरी पूरी व्याख्या उनको सुनाई जाती थी वे समझ बूझ कर सूत्र कंठ करते थे न कि तोते की न्याईं। कई यूरोप के विद्वान् ऐसी आशंका करदेते हैं कि पुराने समय में लिखना सिखाया ही नहीं जाता था और पुस्तकें होती ही न थीं, परन्तु इन आशंकाओं का उत्तर भली प्रकार उनके देशस्थ अन्य विद्वान् अब देरहे हैं और मुक्तकंठ से कह रहे हैं कि उस समय लिखने तथा पुस्तकों के उपयोग करने की भी रीति थी, नहीं तो अष्टाध्यायी से ग्रन्थ ही कैसे बनते और ब्राह्मणग्रन्थ वेद की प्रतीक देकर भाष्य कैसे करते? और व्याकरण तथा संस्कृत कोश में वे सब शब्द विद्यमान हैं जो लिखने और पुस्तकों सम्बन्धी होने चाहियें। हां यह सत्य है कि लिखने और पुस्तक पर से पढ़ने की अपेक्षा अधिक काम पहिली अवस्था में "मौखिक शिक्षण" (प्रवचन) द्वारा लिया जाता था और इस उत्तम रीति के कारण पुराने विद्वान् वेदादि सत्य शास्त्रों के शब्दार्थ को मन में धारण करते हुए उनके रक्षक बनते थे और अब यूरोप में भी इस शैली का महत्व स्वीकार होचुका है और वहां अब आये दिन नये सुधार इस क्रम को लक्ष्य में रख कर किये जा रहे हैं।

जो लघु पुस्तक अंग्रेजी में स्मृतिवर्द्धक भाषण (मेमोरी लेकचर्स†) नाम से बिकती है उसमें पुराने ब्राह्मणों की शिक्षणपद्धति की महिमा वर्णन की गई है और इस प्रकार की अनेक पुस्तकों के पढ़ने से स्मृतिवृद्धि-सम्बन्धी यह चार मुख्य नियम मिलते हैं:—

(१) एकाग्रमन से पढ़ना वा सुनना। (२) पढ़े वा सुने हुए को समझना। (३) पढ़े वा सुने हुए का अनेक वार पाठ करे, ताकि वह मन में रह जावे। गणित हो तो पाटी पर अनेक वार अभ्यास करे। (४) पढ़ने वा सुनने में सब से पहिले रुचि उत्पन्न करना। उत्तम शिक्षकों को योग्य है कि जो कुछ वे पढ़ावें वा सुनावें उसको पहिले रोचक बनावें वा कोई तत्सम्बन्धी महत्वप्रकाशिनी रोचक भूमिका बांधें। जब विद्यार्थियों में रुचि उत्पन्न होजावे तब समझलें कि उनका मन एकाग्र हो चला है जो शब्द सुनाये वा पढ़ाये जावें, उनके अर्थ अनेक प्रत्यक्ष दृष्टान्त वा चित्र वा रूप आदि दिखा दिखा कर उनकी समझ में उतारने चाहियें। गणित की भूल सुधारने के लिये शिला पाटी वा (सलेट) पर अनेक वार अभ्यास कराने की ज़रूरत है। वाचन की भूल सुधारने के लिये अनेक वार मुखपाठ वा अभ्यास अपने सामने कराने की ज़रूरत है। भूल सुधारने के लिये जो घूंसा वा डंडा उपयोग करते हैं वह अध्यापक सर्वथा अनुभवरहित हैं वह बालक की प्रकृति वा मनुष्य की मानसिक वृत्तियों को अनुभव द्वारा जानते ही नहीं। मारने से बच्चे के उत्साह, बुद्धि आदि गुण सब मारे जाते हैं वह कभी मेधावी बन नहीं सकता। पढ़ने वा न समझने की भूल को अपराध समझना ही भूल है। पढ़ने की भूल का दूसरा नाम अपूर्णता है। अपूर्णता को दूर करके "पूर्ण" बनाने का यत्न करना चाहिये और वह तीन काल में गाली वा मारने से नहीं हो सकता। जापान में घर में वा स्कूल में बच्चे को मारना बहुत बुरा माना गया है।

---

† श्रीमान् बा० तेजराम साहब सब डिवीजनल आफीसर करनाल ने यह पुस्तक मंगाई थी।

मन की एकाग्रता तथा उत्साह

इस मन्त्र से गुरु, बालक से अग्नि इकट्ठी कराता है इस से बालक तो यह समझे कि मुझे मानसिक वृत्तियां एकाग्र करनी हैं और गुरु समझता रहे कि शिक्षण देते समय रुचि वा एकाग्रता उत्पन्न करने की मुझे ज़रूरत है। फिर मन्त्र में अग्नि को निधिपा (कोशरक्षक) कहा गया है। जो अग्नि बुझ गई हो उसमें सामग्री डालने से क्या लाभ? इसी प्रकार अध्यापक को समझना चाहिये कि बालकों के मानसिक उत्साहरूपी अग्नि को हम उनको गाली द्वारा अपमान करने वा मारपीट वा क्रोधमय चेष्टा से बुझा न देवें। एकाग्र वा प्रचण्ड अग्नि "निधिपा" हो सकती है। इस प्रकार ब्रह्मचारियों के एकाग्र और न बुझे हुए अर्थात् उत्साहित मन ही विद्यारूपी सामग्री डालने की क्रिया से सूक्ष्म बना सुरक्षित धारणयोग्य किये जा सकते हैं।

बालक के हाथ से अग्नि इसलिये इकट्ठी कराई जाती है कि वह एकत्रित की हुई अग्नि शक्ति को अनुभव कर सके और जाने कि किस प्रकार एकत्रित की हुई अग्नि अधिक प्रकाश को धारण करने से निधिपा है, उसी प्रकार उसका एकाग्र तथा उत्साहित मन विद्या के प्रकाश का अधिक धारण करने वाला होने से वेद का निधिपा बने। प्रकाश दोनों हैं। एक अग्नि के एकत्रित करने से अधिक होता है दूसरा जो विद्यारूपी है वह मन के एकाग्र करने से अधिक होता है। "तत्पश्चात् बालक कुण्ड की प्रदक्षिणा करे" प्रदक्षिणा करना गुणस्वीकृति का दूसरा नाम है। परशुराम ने जब राम को वीर मान लिया तो फिर उसकी प्रदक्षिणा की। हवन के गुण स्वीकार कराने के लिये यहां ऐसा विधान है, तथा नियमबद्ध होना भी इसका भाव है। प्रदक्षिणा के अनन्तर बालक कुण्ड के चारों ओर जल सेचन कर खड़ा होकर तीन वार निम्नलिखित मन्त्र बोल घृत में डुबा एक समिधा वेदीस्थ अग्नि के मध्य में छोड़े, मन्त्र यह है—" ओं अग्नयेसमिधमाहार्षम् "

व्याख्या—आजकल लोग शिक्षण-पद्धति के रहस्य (गुर) को प्रायः भारतवर्ष में भूलगये हैं। जिस साधारण मास्टर से पूछो कि विद्यावृद्धि का गुर क्या है? तो वह कहेगा डण्डा। यूरोप के शिक्षणशास्त्रियों ने निश्चय किया है कि बालकों को डराने, धमकाने, गाली देने, डण्डे मारने से विद्यावृद्धि का कोई संबन्ध नहीं और इस विषय की अनेक पुस्तकें उन्होंने लिख डालीं। पुराने समय में आर्य ऋषि विद्यावृद्धि के रहस्य को इस उत्तमता से जानते और उपयोग में लाते थे कि यूरोप के शिक्षणशास्त्री भी उनकी मेधा पर चकित होजाते हैं। पूर्वोक्त मन्त्र कहता हुआ बालक घी में डुबोकर समिधा छोड़ता है। मन्त्र में सीधे शब्दों में कैसा उच्चभाव दर्शाया गया है—

(क) ब्रह्मचारी कहता है कि हे ईश्वर! आप बड़े ज्ञानदाता हैं, मैं भौतिक अग्नि के लिये समिधा लाया हूं और जिस प्रकार भौतिक अग्नि समिधा से बढ़ता है उसी प्रकार मैं आयु, मेधा, पशु (धन) और ब्रह्मतेज से बढूं।

(ख) मेरा आचार्य जीवित रहने वाली सन्तान से युक्त हो।

(ग) मैं उत्तमबुद्धि वाला (घ) किसी से घृणा न करने वाला (ङ) यशस्वी,

तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी और अन्न को भोगने वाला बनूं। ब्रह्मचारी के लिये जितनी बातों की आवश्यकता है उनकी वृद्धि का गुर दृष्टान्तरूप से यहां पर यह बतलाया गया है कि यह सब पदार्थ सहज से बढें जैसे अग्नि समिधा पाकर सहज में बढती है।

समिधा अग्नि को बुझाने वाली वस्तु नहीं, किन्तु उसको उत्साहित करने वाली, सहायता करने वाली और प्रदीप्त करने वाली वस्तु है। हवनकुण्ड की एकत्रित की हुई अग्नि के समान ब्रह्मचारी का मन है। गुरु इस अग्नि को अपनी विद्या आदि अनेक समिधारूपी गुणों से बढ़ा सकता है। गुरु यदि यह समझले कि मेरे गुण समिधारूप हैं और बालक का मन अग्निरूप, तो संभव नहीं कि बालक के मन की अग्नि को बुझने दे अथवा हतोत्साह होने दे §।

इङ्गलेण्ड आदि देशों में परीक्षाएं जो ली जाती हैं वह बालकों को "फेल" करने के प्रयोजन से नहीं किन्तु शिक्षकों के काम की निरीक्षा ‡ के अभिप्राय से। वहां अध्यापक पढ़ाते हैं तो विद्यार्थियों का मन वा उत्साह नित्यप्रति बढाते हुए। विद्यार्थी का वहां शङ्का करना अथवा किसी सिद्धान्त वा प्रश्न को न समझना पाप वा अपराध नहीं माना जाता। यदि कोई बालक टांगों से बहुत तेज दौड़ नहीं सकता तो क्या वह पापी है? यदि कोई बालक उत्तम स्वर न होने के कारण सुवक्ता नहीं बन सकता तो क्या उसको अपराधी समझ कर डंडे लगाना चाहिये? आग अधिक प्रकाश न देवे तो आग को डंडे लगाने वा गालियां देने की ज़रूरत नहीं, किन्तु उसमें अनुकूल घृतयुक्त समिधा डालने की ज़रूरत है। बालक के मन में विद्या की वृद्धि हो, उसके लिये उसको गालियां देने वा भय दिखाने की ज़रूरत नहीं किन्तु उसमें अनुकूल रूप से गुरु की विद्यारूपी सहायता की ज़रूरत है। यह रहस्य था जो पुराने ऋषि विद्यावृद्धि का जाने हुये थे, और यही रहस्य है जो आज यूरोप के शिक्षण-शास्त्री जान गये हैं। यूरोप के शिक्षणशास्त्री लिखते हैं कि जो लोग यह कहते हैं कि विद्या के लिये मनुष्य का स्वाभाविक प्रेम नहीं वह भूल करते हैं। जैसे भूख लगने पर भोजन करने को सब का जी चाहता है, उसी प्रकार शङ्का वा प्रश्नरूपी मानसिक भूख लगने पर मन विद्यारूपी भोजन मांगता है। स्वभाव से ही ज्ञानेन्द्रियों का काम ज्ञान की प्राप्ति कराना है। आग के लिये समिधा जैसे स्वाभाविक भोजन है, उसी प्रकार बालक के मन के लिये विद्या स्वाभाविक भोजन है।

(क) हमने देख लिया कि विद्यावृद्धि के लिए मेधावी गुरु समिधा का काम देता

§ प्लूटार्क का यही कथन है कि मन कोई पात्र नहीं जिसमें ज्ञान भरा जाय यह तो एक अग्निकुण्ड है जिसको प्रज्वलित करने की आवश्यकता है। (उपाध्याय पंडित गंगाप्रसादजी के भाषण से)

‡ विवरणः—जापान में अध्यापक बड़े विद्वान् और साथही बड़े भारी धर्मात्मा (सदाचारी) होते हैं, इसलिये वह स्वयं ही परीक्षा ले लेते हैं हमारे देश में विद्वान् मास्टर तो बहुत हैं पर उसके साथ धर्मात्मा कम हैं।

है। गुरु यदि विद्यार्थियों को नियमानुकूल चलावे और जिन जिन बातों से आयुवृद्धि हो सकती है वह वह बातें बतावें और उन पर चलने के लिये बालकों में रुचि, उत्साह वा प्रेम उत्पन्न करदे तो निस्सन्देह बालक आयु आदि से युक्त होंगे। यदि वह धन के लोभ और उसकी प्राप्ति के साधनों के लिये उनके मन में प्रेम उत्पन्न करा सकता है तो शिष्य बड़े होकर धन कमाने में प्रवीण होंगे। यदि वह उपासना वा धर्माचरण का महत्व अपनी मीठी और युक्तियुक्त वाणी तथा अपने आचरण द्वारा सिद्ध कर सकता है तो, बालकों में ब्रह्मतेज इस प्रकार बढ़ता जावेगा जैसा कि आग समिधा से स्वाभाविक बढ़ती है, और आग को कुछ कष्ट नहीं होता। विद्या, आयु, धन की रुचि, ब्रह्मतेज आदि सब ही ब्रह्मचारी में उत्तम प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होते रहें और वह सहज से इनको धारण करता हुआ चला जावे वही शिक्षण का उत्तम प्रकार है।

(ख) पुराने समय में ब्रह्मचारियों को गुरु वा अध्यापकों से प्रेम करना सच्चे तौर पर सिखाया जाता था। वह उनको अपना सच्चा हितैषी समझने लगते थे और इसीलिये बालक प्रार्थना करते थे कि हे ईश्वर हमारे अध्यापक के जीवित रहने वाली सन्तान हो। यह गुरुभक्ति के बोधक शब्द हैं। इससे यह भी पाया जाता है कि "गृहस्थी लोग भी आचार्य, अध्यापक होते थे।"

(ग) आजकल उन स्कूलों में जहां मुख्याध्यापक पक्षपाती हों लड़कों में भी दल (पार्टियां) होजाती हैं, जो एक दूसरे को परस्पर घृणा करना सिखाती हैं। पुराने समय में ब्रह्मचारी से प्रार्थना कराई जाती थी कि वह सबसे बन्धुभाव से वर्ते और स्वार्थ वा पक्षपात में न गिरे। उनके पवित्राचरणभी उनको इस पाप से बहुत बचाते थे।

(घ) पुराने समय में बालकों के मुख से यह शब्द निकलवाये जाते थे ताकि वह उन्नति करने की इच्छा से युक्त हो सकें। जिस समय हवन करता हुआ बालक कहता था कि मैं—यशस्वी (शुभ कर्म करने वाला) तेजस्वी (निर्भय वा प्रतापी) ब्रह्मवर्चस्वी (ईश्वरभक्त तथा सदाचारी) अन्नाद (पूर्ण शारीरिक बल वाला) बनूं, तो इन उच्च संस्कारों का शुभ प्रभाव उसके मन को "सेल्फ मेसमेराईज़" अर्थात् अपने आप मन को योगबल से उत्साहित करता था।

एकाग्रता की चितावनी

जहां गुरु का धर्म है कि वह बालक को सहज रीति से विद्या पढ़ावे, वहां शिष्य का भी धर्म है कि वह मन को एकाग्र करने में यत्न करता जावे। गुरु के यत्न के साथ साथ शिष्य को भी यत्न करना चाहिये और वह यह कि मानसिक रुचि वा एकाग्रता बढ़ावे। रुचि वा एकाग्रता से पढ़ने का महत्व पुनः बालक को दर्शाने के लिये चितावनी (ताकीद) रूप से यहां पर आहुतियों के पीछे फिर "ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसम्" इस मन्त्र से वेदीस्थ अग्नि को इकट्ठा करके कुण्डके चारों ओर जल-सेचन का विधान है।

इससे पहले जब "ओं समिधमाऽऽधर्षम्" इत्यादि मन्त्र से बालक ने तीन आहुतियां

दी थीं तो उस समय उत्तराभिमुख खड़े होकर समिधा दी थी। खड़ा रहना दृढता वा स्थिरता का बोधक चिह्न है, और उत्तर दिशा भी जिसमें ध्रुव है, दृढताबोधक है। विद्यावृद्धि, आचार्यभक्ति आदि में वह दृढ रहेगा, यह भी उसका अभिप्राय था।

तपस्या से तेज प्राप्ति

"जल-सेचन करके बालक वेदि के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ के वेदि के अग्नि पर दोनों हाथों को थोडासा तपाके हाथ में जल लगा "ओं तनूपा........" इन सात मन्त्रों से सात वार किंचित् हथेली उष्ण कर जल-स्पर्श करके मुख-स्पर्श करे" ऐसा संस्कारविधि में लिखा है। (१) प्रश्न हो सकता है कि वार वार चारों ओर जल-सेचन की क्या जरूरत है? इसका उत्तर यह है कि कुण्ड की गरमी के कारण पहिले सेचन किये हुए जल का सूख जाना वा कम होजाना संभव है। इसलिये उसके वार वार सेचन का विधान है ताकि और जल बना रहे और कीट आदि को कुण्ड की ओर जाने से रोके। जब ऋतु भी गरमी की हो तो उस समय तो और भी भय जल के सूखने वा कम होजाने का हो सकता है। इसलिये वार वार जल सेचन करना उचित है।

(२) प्रश्न हो सकता है कि इससे पहिले बालक को उत्तराभिमुख खड़ा किया था और अब पूर्वाभिमुख क्यों बिठाया? इसका उत्तर यह है कि इस जगह सूर्यवत् तेजस्वी होने का विशेष उपदेश देना अभीष्ट है और पूर्व दिशा तेजस्वीपन का बोधक चिह्न है।

यह तेजस्वीपन किन सात बातों में होना चाहिये, उसके बोधक सात मन्त्र हैं और तेजस्वीपन का साधन क्या है? उसका उपदेश हाथों को तपाने और जल लगाने की क्रिया से, जो तपस्याबोधक है, किया गया है। योगशास्त्र में तप का लक्षण द्वन्द्व का सहन करना बतलाया है। गरमी, शीत आदि अनेक द्वन्द्व सहन करना तप है। तप का फल तेज है। बालक का हाथों को तपा, उस पर जल लगाना, द्वन्द्वसहन वा तपस्या का उपलक्षण द्वारा पाठ सीखना है। जब तपस्वी बालक हाथ मुख पर लगाता है तो मुख पर तेजस्वीपन प्रतीत होने लगता है। इससे दर्शाया गया कि जो ब्रह्मचारी इस आश्रम में द्वन्द्व सहन कर सकते हैं वे ही तपरहित मनुष्यों में ऐसे चमकते हैं जैसे उस बालक का मुख, जो होम-अग्नि से हाथ तपा उसका पानी लगा अपने मुख पर मलता है।

इसका दूसरा फल यह है कि ऐसा करने से मुख के चर्म पर फुंसी आदि चर्मरोग नहीं होते। हवन की आग पर हाथ तपाने से सुगन्धित वाष्प हाथ में बस जाता है, और पानी में हाथ भिगोने पर वह वाष्प जलरूप हो जाती है। जब मुख पर वह मली जाती है तो उसमें हवन के सुगन्धित घी के धूम का कुछ अंश और कुछ अंश सुगन्धित सामग्री के धूम का होने से मुख के चर्म पर सुगन्धी तथा चिकनेपन का प्रभाव पहुंच कर, कान्ति उज्ज्वल वा तेजोमय होजाती है। आयुर्वेद के मतानुसार शरीर पर तैल वा घृत के मलने से कान्ति उज्ज्वल होती है। कोई प्रश्न कर सकता है कि हवन-अग्नि पर भला जरासा हाथ तपा उसमें जरासा पानी लगाकर सुगन्धी तथा घृत का अंश मुख पर क्या प्रभाव पहुंचावेगा?

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि प्रत्यक्ष प्रयोग (तजुरबा) करके देखो फिर पता लग

जावेगा कि मुख पर चमक के साथ सुगन्धी अपनी नासिका को प्रतीत होती है वा नहीं। मट्टी के तैल (केरोसीन आयल) वा पत्थर के कोयलों की आग पर हाथ तपा मुख पर लगाने से शिरपीडा होने लगती है या नहीं।

आजकल हम देखते हैं कि लोग जहां घृत का दीपक जलता हो उस पर हाथ तपा मुख पर प्राय: मला करते हैं। घृत विषनाशक है, इसलिये ऐसा करने से फुंसी आदि रुकती हैं।

(१) पहिले मन्त्र में दर्शाया गया है कि ईश्वर से तनरक्षा की प्रार्थना करो। प्रार्थना जैसा कि हम अनेक वार लिखचुके हैं "शिवसङ्कल्प" का दूसरा नाम है। अंगरेज़ी के सुप्रसिद्ध विद्वान् "डाक्टर सेमयुल स्माइल्स" महोदय अपनी पश्चिमी जगत् विख्यात पुस्तक "सेल्फ हेल्प" (स्वाश्रय) नामी में लिखते हैं कि जिसको जिस बात की दृढ़ इच्छा है वह अवश्य ही प्राप्ति वा सिद्धि का मुख देखेगा। महर्षि मनुजी ने भी 'संकल्प' को सब प्रवृत्ति का मूल और 'धृति' को जो मानसिक धारणा शक्ति का रूप है, धर्म का प्रथम लक्षण कहा है। प्रार्थना (संकल्प) का मर्म न जानने वाले लोग आक्षेप कर सकते हैं कि क्यों वार वार प्रार्थना कीजावे? परन्तु यदि यूरोप के आचार्य स्माइल्स महोदय की उक्त पुस्तक, जो यूरोप तथा अमेरिका के प्रत्येक स्कूल और घर घर में है, वह पढ़ें तो उनको पता लगेगा कि जिस काम को उत्तमता से करना हो वह तब ही किया जा सकता है जब करने वाला अपने मन से पहिले करना चाहे वा उसको करने की आवश्यकता अनुभव करे। तनरक्षा कितना उपयोगी और महान् काम है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि का आधार इसी पर है। जबतक ब्रह्मचारी शरीररक्षा के भाव को सङ्कल्प वा प्रार्थना के रूप में मन में नहीं धारण करेगा तबतक कभी सम्भव नहीं कि वह इसमें सफल होसके। शरीररक्षा का महत्व पुराने आर्य ऋषि कहां तक समझे हुए थे, वह तो इन शब्दों से स्पष्ट ही है, परन्तु इस समय भी यूरोप के एक सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् हर्बर्ट स्पेन्सर महोदय "शिक्षा" नामी पुस्तक में शिक्षण का सर्वोपरि लाभ तनरक्षा ही मानते और लोगों को वैसा उपदेश देरहे हैं *। भारतभूषण श्रीराममूर्तिजी अपने व्याख्यानों में कहा करते थे कि "इस शरीर को तुच्छ न समझो। बड़े पुण्यों से मनुष्य शरीर मिलता है इसकी रक्षा करना मनुष्य का परम धर्म (कर्त्तव्य) है"। माता पिता तथा अध्यापकों का परम धर्म है कि वह बालकों को शरीर रक्षासम्बन्धी बातें बताते रहें। प्रत्येक बालक को महर्षि धन्वतरिजी के यह शब्द सदैव याद रखने चाहियें, कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का आधार शारीरिक स्वास्थ्य है।

यूरोप, अमेरिका आदि सभ्य देशों में सर्वत्र अनेक अबोध बालक मूत्र इन्द्रिय को हाथ से मलते वा रगड़ते पाये गये हैं। भारतवर्ष के स्कूलों के बालकों में यह भयंकर हस्तमैथुन की कुचेष्टा बहुत ही पाई जाती है। इससे बालकों के शरीर नष्ट होजाते हैं। नेत्ररोग, छाती का सुकड़ना, स्मृति का नाश, उत्साहहीन होना आदि अनेक रोग इसके

---

*हर्बर्ट स्पेन्सर कहते हैं कि शिक्षण का उद्देश्य मनुष्य को पूर्ण जीवन के लिए तय्यार करना है।

करने से बालकों में देखे गये हैं। लड़कों को इस प्रकार उत्तमता से स्पष्ट शब्दों में समझाने की ज़रूरत है कि किस प्रकार यह कुचेष्टा, इन्द्रियरोगी बनाकर अनेक रोग उत्पन्न करती है।

शुद्ध वायु, शुद्ध खुले कूप का जल, शुद्ध वस्त्र, शुद्ध स्थान शुद्ध आहार आदि अनेक बातों से बच्चों को विज्ञ करते रहना चाहिये, और सब से बढ़कर यह बात है कि लड़के वा लड़कियों को रात के समय में देखरेख (निरीक्षा) रखने वाले पुरुष स्त्रियां पूर्ण सदाचारी और हस्तमैथुन आदि दुर्व्यसनों से भलेप्रकार मुक्त होने चाहियें। जबतक पूरे जितेन्द्रिय मास्टर आदि न होंगे तबतक यह संभव नहीं कि लड़के ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करसकें। प्रत्येक मास्टर व अधिष्ठाता (सुपरिण्टेण्डेण्ट) सदाचारी होना चाहिये।

(२) दूसरी प्रार्थना आयुवृद्धि की है। आयुवृद्धि का एक प्रबल कारण वीर्यरक्षा है। सुरक्षित वीर्य को ओज कहते हैं और अङ्गरेज़ विद्वान् इसी ओज को मौतिक जीवन का मूल कहते हैं। सुश्रुत के लेखानुसार ओज ही एकमात्र बलदाता है। श्रम पुरुषार्थ और व्यायाम भी दीर्घजीवन के मुख्यकारण हैं।

(३) तीसरी प्रार्थना वर्चस् के लिये है। कांति, सुन्दरता, रूप भी इसी के नाम हैं। सुश्रुत के अनुसार कांति का कारण तेज है। जहां जहां तेज है वहां वहां कांति है। लकड़ी को "पालिश" वा रोगन करते हैं, ऐसा करने से चमक वा सुन्दरता आजाती है, दीवार सजाते समय रङ्ग बरङ्गे चमकते हुए कागज़ लगाते हैं। तेज (चमक) वाले कागज़ सुन्दर होते हैं। मनुष्यों के सब रङ्गों में यदि तेज उनके साथ है तो वह सबही सुन्दर हैं तेजस्वी काला रंग भी सुन्दर होता है, इसीलिये काले बारनिश के बूट का दाम अधिक होता है। नीलवर्गी मोर तेज चमक के कारण सुन्दराताका राजा माना गया है। सुवर्ण पीला रंग रखते हुए चमक के कारण सुन्दर है। हीरा सफेद, पन्ना हरा, मानक लाल, नीलम श्याम रङ्ग रखते हुए भी तेज (चमक) के कारण सुन्दर हैं और रत्न कहलाते हैं। इसलिये ब्रह्मचारी चाहे किसी रंग के हों वह सर्व सुन्दर हो सकते हैं, यदि उनके मुख पर कांति वा तेज वा चमक है। यह कांति मन की प्रसन्नता, शारीरिक तपस्या वा आरोग्यता तथा वीर्यरक्षा से प्रत्येक को ईश्वर की ओर से मिलती है।

(४) चौथी प्रार्थना शारीरिक न्यूनता को पूर्ण करने की है। यूरोप आदि देशों में कसरत द्वारा शारीरिक न्यूनता पूर्ण की जाती है। सुश्रुत का वचन है कि व्यायाम करने से शरीर के अंग सुडौल होजाते हैं जिसका भाव यह है कि शारीरिक न्यूनता पूर्ण होजाती है। इसलिये मर्यादापूर्वक अर्थात् थकने से पूर्व वा जितना बल हो उससे आधे व्यायाम वा श्रम करने से शारीरिक न्यूनता नष्ट हो जाती है।

बनारस के महाशय कालिदास मानिक, श्रीराममूर्तिजी के प्रसिद्ध शिष्य लिखते हैं कि:— जबतक अंग प्रत्यंग दृढ न किये जावेंगे, दिमाग निर्बल रहेगा और हृदय की गति मन्द रहेगी तो शुद्ध रक्त दिमाग वा शरीर के किसी भाग में भी नहीं पहुंच सकेगा। यदि पाचनशक्ति निर्बल होगी तो रुधिर भी खराब बनेगा। कम खून वाले मूर्ख तथा क्रोधी होते

हैं। बच्चे के हाथ से कुछ छीनो तो वह नहीं छोड़ता, इससे सिद्ध होता है कि पट्ठे जन्म से ही बलवान् होते हैं। पट्ठों की मजबूती के लिये कुछ प्राणायाम भी दरकार है। टांग तथा पैर के पट्ठे बैठक करने से पुष्ट होते हैं। थकने पर बराबर कसरत करते जाना अच्छी बात नहीं ऐसा करने से नुकसान होता है (पृष्ठ ३४) फिर और लिखते हैं जिसका सार यह है कि—सादी चाल स्वास्थ्य के लिये बड़ी उपकारी है, पहिले ही दो फरलांग चलने से शरीर गरम हो जाता है और पट्ठे जरा मुलायम हो जाते हैं। एक स्थल पर लिखते हैं कि "जो लोग पैर* की कसरत बिल्कुल नहीं करते और एक जगह बहुत देर तक बैठे रहते हैं, उनको अकसर बवासीर, भगंदरादि दारुण रोग ग्रस लेते हैं, बालक और कमजोर लोगों के लिये दंड कदापि लाभदायक नहीं······गिन्ती छोड़ कर कसरत करनी चाहिये। "दम रोकने से दिल, फेफड़ों और छाती पर जोर पड़ता है"। आगे चलकर एक स्थल पर लिखा है कि कसरत करने से खुश्की, गरमी बढ़ जाती है। इसलिये उसके निवारणार्थ यह लिखते हैं कि—दश बादाम, बीस कालीमिरच, दो छोटी इलायची, तीन माशे सौंफ, तीन माशे धनिया। इन चीजों को छटांक भर पानी में रात को भिगोकर ढांक रक्खे और किसी पत्थर या मिट्टी के बरतन में भिगोवे। प्रातःकाल घोटने से पहिले बादाम का छिलका उतार ले। उचित पानी तथा खांड, ऐवतीजल (गुलाब) वा केवड़ा डाल कर पीवे‡। एक स्थल पर यह भी लिखा है कि "लंबे डंड करने से शिर में अधिक लहू चढ जाता है और कई दिमागी काम करने वालों के लिये यह हानि करता है, इसलिये इसके स्थान में दीवार के साथ खडे होकर थोड़े ही डंड करलें"।

(५) पांचवीं प्रार्थना मेधा की है—जिसका वर्णन पांचवें मंत्र में है, ईश्वरप्रार्थना से मन पवित्र होता है। योगी, ऋषि लोग इसीलिये मेधा के धनी होते हैं। मनन से भी निःसन्देह मेधा की वृद्धि होती है। जो मनन नहीं करते वा तर्क को उपयोग में नहीं लाते वे मेधावृद्धि नहीं कर सकते। विचार (मनन) तर्क और उपासना मेधावृद्धि के साधन हैं। उपासना से एकाग्रता भी बढती है और इसके द्वारा मेधा दृढ होती है।

(६) वाणीः—जितना ज्ञान प्राप्त होता है उसकी प्राप्ति और उसके प्रकाश वा प्रचार का साधन सरस्वती वा विद्यामयी वाणी है। इस बात पर मनन करने से शब्दशास्त्र में जिज्ञासु की रुचि बढकर उसको वाणी का तेज प्राप्त हो सकता है।

(७) सदाचारी विद्वानों में भक्तिः—मनुष्यों में ज्ञान देने वालों में दो भेद हैं। अध्यापक से विद्यालय में शिक्षण द्वारा और उपदेशक महात्माओं से सत्सङ्ग द्वारा विद्या की प्राप्ति होकर संशयों की निवृत्ति होती है। अध्यापक और उपदेशक मनुष्यों में दोनों ही, विद्या तेज के दाता हैं। यूरोप आदि देशों में नानाविद्यासम्बन्धी मासिकपत्र जिज्ञासा तथा

---

* चलना, तेज चलना तथा दौड़ना आदि भी पैर की कसरत हैं।

‡ हमारे विचार में जिस स्थल पर यह न मिलसकें वहां खुश्की गरमी के दूर करने के लिये दूध और इलायची से काम लेना चाहिये।

संवादवर्द्धिनी सभाएं, और विद्वान्, वृद्ध, अनुभवी वक्ताओं के व्याख्यान शिष्यलोग सुन कर विद्यावृद्धि करते रहते हैं वहां वक्ता मानो उपदेशकों का काम दे रहे हैं। अध्यापक तथा उपदेशक जिन से बालक विद्याग्रहण करें वे ऐसे होने चाहियें जो विद्या और सदाचार के कारण उनके लिये पूज्य हों। इसी भाव को प्रकट करने के लिये मन्त्र में दर्शाया गया है कि यह दोनों कमल-फूल की माला से युक्त हों, उनका माला से युक्त होना ही उनके पूज्य होने का बोधन कर रहा है। कमलफूल की माला जहां आदर वा शोभा का एक चिह्न है वहां उत्तम स्वास्थ्यदायक गुणों से युक्त है। अभिनव निघण्टु में कमल-फूल के गुण यह लिखे हैं कि :—

"शीतल, वर्णकर्ता, मधुर, कफपित्तनाशक, प्यास, दाह, रुधिरविकार, विस्फोट और विसर्परोग-नष्ट करता है।"

सुश्रवण, एकाग्रता, उत्साह, गुरुभक्ति, तपस्या के पश्चात् अब बालक को आचार के सर्वदेशीय सर्वतंत्र तत्वों का अत्यन्त संक्षेप से बोधन कराने के लिये पांच मन्त्र बोलकर अंगस्पर्श का विधान है। मन्त्रार्थः—

१ हे ईश्वर! मेरी वाणी अच्छी तरह बढ़े। २ हे ईश्वर! मेरे प्राण अच्छी तरह बढ़ें। ३ हे ईश्वर! मेरे नेत्र अच्छी तरह बढ़ें। ४ हे ईश्वर! मेरी श्रवणशक्ति अच्छी तरह बढ़े। ५ हे ईश्वर! मेरे यश और बल अच्छी तरह बढ़ें।

१ सत्य और मधुर बोलने से वाणी का बल बढ़ता है।

२ प्राणायाम करने से इन्द्रियां शुद्ध और वश में होतीं और मानसिक तथा शारीरिक बल बढ़ता है। अपनी मानसिक शक्ति को बलवान् करने के लिये श्री राममूर्तिजी नित्य प्राणायाम का अभ्यास करते और मन को एकाग्र करके केवल एकही विषय लगा देते हैं। कौतुक करते समय वह प्राण रोकते और मानसिक इच्छारूपी बल को अङ्गविशेष में इच्छा द्वारा भेजते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि शारीरिक बल मानसिक शक्ति द्वारा प्राप्त होता है उनका कथन है कि:—

"दिन में एक वा दो वार अर्द्ध घण्टा वा उससे अधिक के लिये शारीरिक बल की प्रार्थना वा इच्छा मन से करनी चाहिये। सर्व अन्य विचार विना इस इच्छा के नितान्त मन से निकाल देने चाहियें।" व्यायाम करते समय उनके कथनानुसार "मन की वृत्ति व्यायाम पर लगे और व्यायाम के लाभों का चिन्तन करे" *। इस लेख का यह अभिप्राय नहीं कि प्रत्येक बालक उतना प्राणायाम करे जितना कि मल्लशिरोमणि श्री राममूर्ति करते थे, केवल दिखाना यह है कि प्राणायाम से मानसिक और शारीरिक बल बढ़ता है ब्रह्मचारियों के लिये संध्या समय पर तीन प्राणायाम ही ठीक हैं।

३ कल्याणकारी और विषय से रहित वस्तुएं देखना नेत्र का यथार्थ उपयोग करना है।

४ मिथ्या तथा विषयवर्द्धक बातें न सुनते हुए तथा हितकारी बातें सुनना कानों का सदुपयोग है।

---

* देखो "इन्डियन रिव्यू" मास जून सन् १९१२

५ शुभकर्म करने और विषयवर्द्धक कर्म न करने से बल और यश की प्राप्ति होती है।

ईश्वर-प्रार्थना

अंगस्पर्श के पश्चात् बालक ईश्वर से प्रार्थना करे, क्योंकि वह इस प्रार्थना के अनन्तर गुरु से वेदोपदेश लेने वाला है ॥ " ओं मयि मेधां······इस मन्त्र से वह प्रार्थना करे।

भावार्थः—अग्नि परमेश्वर मुझ में मेधा प्रजा और तेज धारण करें। इन्द्र परमात्मा, ज्ञान इन्द्रियों की शक्ति, मेधा, प्रजा और तेज को धारण करें। सूर्यवत् प्रकाशमान ईश्वर, पवित्रता, मेधा, प्रजा और तेज को धारण करें। हे पूज्य ईश्वर! जो तेरा तेज है उस तेज से मैं तेजवाला होऊं। हे पूज्य ईश्वर! जो तेरा सामर्थ्य है उस सामार्थ्य से मैं सामर्थ्य वाला बनूं। हे पूज्य ईश्वर! दुष्टों पर मन्यु धारण करने की जो तेरी शक्ति है उस शक्ति से मैं युक्त होऊं।

धन्य वह आस्तिक ऋषि थे जिनका उद्देश्य सचमुच मनुष्यजन्म को सफल करने का होता था। किस प्रकार उच्च से उच्च उन्नति के नियमों का जप वह बालक से कराते हैं, मानो उसके शुद्ध हृदय में उच्चनियम बसा रहे हैं। उपनयनसंस्कार में जो यज्ञोपवीत का मन्त्र था उसमें शारीरिक सामाजिक और आत्मिक उन्नति लक्ष्यवत् दर्शाई गई थी यहां पर भी वेदाध्ययन आरंभ करने से पूर्व बालक तीन वार ईश्वर से तीन वस्तुओं की अत्यन्त प्रार्थना कर रहा है।

१ मेधा (जो विद्या का साधन है) २ प्रजा (कुटुम्ब से लेकर जनसमाज की उन्नति) ३ तेज (शारीरिक उन्नति का चिह्न कान्ति)।

इन पर दृष्टि देने से यही प्रतीत होता है कि १ आत्मिक २ सामाजिक और ३ शारीरिक उन्नति के साधनों का महत्त्व बालक के मन पर पुराने ऋषि किस उत्तमता से अङ्कित करते थे! उपनयनसंस्कार के समय यही उद्देश्य और शब्दों में था, यहां और शब्दों में, परन्तु उद्देश्य में भेद नहीं, इसके अतिरिक्त ज्ञान इन्द्रियों की शक्ति १ पवित्रता २ सामर्थ्य और ३ मन्यु की प्रार्थना भी गई है, जोकि आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक उन्नति वा रक्षण के लिये अत्यन्त उपयोगी साधन हैं।

ईश्वरप्रार्थना के पश्चात् बालक—" कुण्ड की उत्तर बाजू की ओर जाके जानु को भूमि में टेक पूर्वाभिमुख बैठे और आचार्य बालक के संमुख पाश्चिमाभिमुख बैठे "।

जानु टेक कर इस प्रकार बैठना आचार्य को मान देने और आप नम्र बनने के लिये है। ऐसे बैठ कर बालक संस्कृत में यह कहता है। " अधीहि भोः........" जिसका भाव यह है कि आप गायत्री को पढ़ाइये और केवल उसी का उपदेश कीजिये।

" तत्पश्चात् आचार्य एक वस्त्र अपने और बालक के कन्धे पर रख कर अपने और बालक के दोनों हाथ की अंगुलियों को पकड़ के नीचे प्रमाणे बालक को तीन वार गायत्री मंत्रोपदेश करे। " व्यापारी लोग प्रायः ऐसा किया करते हैं कि जब किसी वस्तु का भाव सम्बन्धी गुप्त विचार करना हो तो एक कपड़ा ऊपर डाल दो पुरुष परस्पर हाथों की अंगुलियों

से सङ्केत प्रकट करते हैं और इसका अभिप्राय यही हुआ करता है लोगों से अपने विचार गुप्त रख सकें। जिन्होंने परस्पर व्यापार करना है उनके विचार परस्पर प्रत्यक्ष हों।

यहां पर गुरु, बालक के हाथों की अंगुलियों को अपने हाथ से पकड़ता है और ऐसा करता हुआ उस पर वस्त्र डाले हुए है, जिसका अभिप्राय दृष्टांतरूप से यह बोधन करना है कि वह बालक विद्या लेने वाला और गुरु विद्या देने वाला, दोनों अपनी मानसिक वृत्तियों को अंगुलियों के समान एकाग्र करें। विद्यार्थी अपनी वृत्तियां उसके मन की ओर लगावे और गुरु भी इस उत्तमत्ता से पढ़ाते समय शिष्य की वृत्तियों को अपने मन में लगाले, और जिस समय शिष्य विद्या लेरहा और गुरु विद्या देरहा है, उस समय वे दोनों अन्य वस्तुओं से अपने मन हटालें वह मन परस्पर एकाग्रता के कारण ऐसे होजावें कि मानों औरों के लिये वह मन ढक गये हैं। यूरोप के सुप्रसिद्ध शिक्षणशास्त्री महा० पेस्टालोज़ी ने यह बात दर्शाई है कि शिक्षक शिष्यों के मन में अपने मन लीन करके शिक्षण दे। उनका कथन है कि "मैं चाहता हूं कि शिक्षण मानसिक प्रेम से दिया जावे"।

मन्त्रोपदेश

प्रथम वार—"ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्"।

दूसरी वार—"ओ३म भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्। भर्गो देवस्य धीमहि"।

तीसरी वारः—"ओ३म् भूर्भुवःस्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्। भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्"। इस प्रकार एक एक पद का शुद्ध उच्चारण बालक से करावे और अर्थ समझावे।

विद्या और आचार का बोधक गायत्री मन्त्र

यह मन्त्र दर्शा रहा है कि मनुष्य की विद्या व बुद्धि की उन्नति और सदाचार की अन्तिम सीमा क्या है? इसमें बतलाया गया है कि ईश्वर "वरेण्यम्" अर्थात् धारण करने योग्य है और प्रत्येक मनुष्य उसको धारण कर सकता है और इस भाव का बोधक "धीमहि" शब्द है ईश्वर से जो ज्ञान का सूर्य है प्रत्येक मनुष्य विद्यारूपी तेज स्वयं प्राप्त कर सकता है, यदि उसके वह योग्य बने। इस योग्यता को धारण करने के लिये योग के साधन किये जाते हैं ताकि मनुष्य समाधिस्थ बुद्धि को प्राप्त होकर अपनी मेधा में ईश्वरीय ज्ञान की प्रेरणा स्फूर्तिरूप में पासके। जो उपासना द्वारा बुद्धि में ईश्वरीय प्रेरणा धारण करता रहेगा उसके ज्ञान और आचार दोनों ही बढ़ेंगे, इसमें सन्देह क्या है? गायत्री मन्त्र का यह महत्व है कि उपासना के लिये किसी प्रतीक को नहीं लेता वा मनुष्य विशेष को मध्यवर्ती नहीं ठहराता। मनुष्यमात्र विना किसी जड़ वस्तु (प्रतीक) वा मध्यवर्ती मनुष्य के ईश्वर-उपासना अपने आप अपने मन से कर सकता और ईश्वर सर्व व्यापक होने से विना किसी मध्यवर्ती साधन के उसकी योग्यतानुसार अपने ज्ञान के प्रकाश को आप प्रदान करता है।

आजकल यूरोप में कहा जाता है कि कालेज विद्या सिखा कर चुप हो जाते हैं पर मेधावी जन अपनी बुद्धि से नये नये आविष्कार सोच कर निकालते हैं। यूरोप वाले

आविष्कार करने का साधन तो मेधा को कहते हैं और मेधा में फुरना नेचर (सृष्टि) की मानते हैं, पर वास्तव में नेचर (सृष्टि) में ईश्वर व्यापक है। पुराने ऋषि नेचर के सर्वव्यापक अधिपति ईश्वर की प्रेरणा ज्ञानोदय केसमय माना करते थे। जब यूरोप वालों को ब्रह्मज्ञान होगा तब नेचर की प्रेरणा के स्थान में ईश्वर की प्रेरणा कहेंगे जो कि गायत्री मन्त्र बतला रहा है।

यूरोप में माना जाता है कि कालेजों का काम पंडित बनाना है और उससे बढ़कर जिज्ञासा, मनन और दर्शन कराना विद्वानों के अपने हाथ में है। गवेषणा (रिसर्च) के लिये कितना भारी उत्तेजन यूरोप में दिया जाता है ! मननशील जिज्ञासु प्रयोगशाला व योगशाला में मनन और प्रयोग (तजुर्बों) द्वारा वर्षों के पश्चात् कई प्रकार के आविष्कार करते हैं और इससे भी बढ़कर सृष्टि-नियमों के रहस्य बतलाते हुए वह ऋषि पद को प्राप्त कर रहे हैं। ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १ में " पूर्व " और " नूतन " दो प्रकार के ऋषि बतलाए गये हैं एक भूतस्थ, दूसरे वर्तमान। आचार्य आदि पूर्व ऋषि होसकते हैं और ब्रह्मचारी आदि नूतन ऋषि।

गायत्री मन्त्र जहां उपासना की सीमा दर्शा रहा है वहां ब्रह्मचारी के सन्मुख उसका आदर्श बतला रहा है कि तू पंडित बनकर सदाचार और मानसिक योग के द्वारा उस अन्तिम योग्यता को धारण कर कि तेरे समाधिस्थ मन में ईश्वर की ज्ञानरूपी प्रेरणा प्राप्त होसके, अर्थात् तू तपस्या और साधनों से युक्त होने पर ऋषि बन सके। सर आशुतोष मुकरजी, वाइस चान्सलर कलकत्ता यूनीवर्सिटी ने १९१२ कनवोकेशन (समावर्तन) के समय भाषण करते हुए ऐसे वचन कहे थे जिनका सार यह है कि:—" शिक्षक के ज़बानी शिक्षण से बढ़कर उसके कर्त्तव्य और कर्म का प्रभाव विद्यार्थियों पर अधिक पड़ता है। यदि वह स्वयं मेधावी और मननशील हैं तो उसके छात्र भी वैसे ही हो सकेंगे। यूरोप में विद्या के नये नये आविष्कार किये जाते हैं। वहां विद्यालयों में मेधावी बनाए जाते हैं। हिन्दुस्थान में विद्या की पवित्र अग्नि को सुरक्षित रखते चले आये हैं, पर उसको अधिक प्रकाशमान करने के लिये यत्न नहीं किया जाता "। पुराने समय में जब कि ऋषि और मुनि आचार्य होकर गुरुकुलों में पढ़ाते थे तो उस समय सचमुच अधिक ऋषि और मुनि इस देश में उत्पन्न होते थे। बुझा हुआ दीपक दूसरे नये दीपक को कैसे जला सकता है ? आजकल जब उस योग्यता और आचार के शिक्षक ही नहीं रहे तो वर्तमान समय में देश में ऋषि मुनि कहां से आ सकें ?

ब्रह्मचारी पुराने समय में समझता था कि मैं पंडित, जिज्ञासु, मुनि और महर्षि बन सकता हूं; और यही आदर्श " ग्रेजुएट " (दीक्षित वा पंडित) जिज्ञासु, मुनि और महर्षि, आजकल यूरोप अपने ब्रह्मचारियों के सामने समावर्तन (कनवोकेशन) के समय पर प्रस्तुत करता है। पुराने समय में विद्यारम्भ करने के साथही यह आदर्श दर्शाया जाता था अब विद्या समाप्ति पर यही आदर्श यूरोप आदि में सर्वत्र दर्शाते हैं।

गायत्री मन्त्र जहां आरम्भ के पाठ का काम देता था वहां विद्या और उपासना की अन्तिम अवधि भी बतलाता था। यही तो कारण है कि गायत्री मन्त्र का महत्त्व शास्त्रों में

गाया गया है। कोई शंका कर सकता है कि यूरोप के मुनि, ऋषि आदि सात्विक पुरुष क्या होसकते हैं? इसके उत्तर में हम सत्यार्थप्रकाश समु० ९ वां पेश करेंगे जिस में " तापसा यतयो विप्राः " इत्यादि तीन मनुस्मृति के श्लोकों का भावार्थ महर्षि दयानन्दजी इस प्रकार देते हैं जिससे पायाजाता है कि सात्विक पुरुष किसी देश विशेष में नहीं किन्तु अपने कर्मों के अनुसार सब देशों में होसकते हैं। " जो तपस्वी, यति, संन्यासी, वेदपाठी, विमान के चलाने वाले, ज्योतिषी और दैत्य अर्थात् देहपोषक मनुष्य होते हैं, उनको प्रथम सत्व गुण के कर्म का फल जानो ॥ ८ ॥ जो मध्यम सत्वगुणयुक्त होकर कर्म करते हैं वे जीव यज्ञकर्त्ता वेदार्थवित्, विद्वान, वेद, विद्युत् आदि और काल विद्या के ज्ञाता, रक्षक, ज्ञानी और (साध्य) कार्यसिद्धि के लिये सेवन करने योग्य अध्यापक का जन्म पाते हैं ॥ ९ ॥ जो उत्तम सत्वगुण-युक्त हो के उत्तम कर्म करते हैं, वे ब्रह्मा सब वेदों के वेत्ता, विश्वसृज, सब सृष्टिक्रम-विद्या को जानकर विविध विमानादि यानों को बनाने हारे धार्मिक, सर्वोत्तम बुद्धियुक्त और अव्यक्त के जन्म और प्रकृतिवशित्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ९)

" **ओ३म् मम व्रते** " यह मन्त्र यज्ञोपवीत संस्कार में आचुका है। इससे दोनों दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं कि वह व्रत-पालन में एक दूसरे के सहायक और हितकारी होंगे।

" **ओं इयं दुरुक्तम्** " इस मन्त्र को बुलवाके आचार्य सुन्दर, चिकनी प्रथम बनवाकर रक्खी हुई मेखला को बालक के कटि में बांधे।

यह मेखला (१) निन्दायुक्त वचनों को हटाने वाली, (२) भगिनी के तुल्य सौभाग्यवती, (३) सुन्दर, चिकनी, कोमल, (४) वर्णभाव को पवित्र करने वाली, (५) प्राण, अपान वायु को ठीक रखने से बल देने वाली होने से मुझको प्राप्त हुई है, ऐसा ब्रह्मचारी बोले।

भारतवर्ष में माताएं नए उत्पन्न हुए बच्चों को मेखला (तगड़ी) सूत वा रेशम की प्रायः बांधती हैं। इसका कारण बूढ़ी माताएं यही बतलाती हैं कि ऐसा करनेसे आंतों के रोग नहीं होते। यूरोप में जहां जन्म से तगड़ी बांधने की प्रथा नहीं वहां (पतलून) (जांघिया) पर पेटी बांधने का रिवाज़ छोटी उमर से ही है। मुसलमान लोग कमरबन्द बांधते हैं। फौजों में सिपाही लोग पेटी (मेखला) का बांधना चुस्ती के लिये तथा थकावट से बचने के लिये ज़रूरी समझते हैं। जब यात्रा को जाना हो वा बलका काम करना हो तो कटि (कमर) को कसकर बांध लेने से आंतों को उछलने आदि से क्षति वा भय नहीं रहता और आलस्य दूर होकर बल आता हुआ अनुभव होता है। कटि पर दबाव पहुंचने से प्राण, अपान की गति ठीक होजाती है जिससे बल वा चुस्ती प्रतीत होने लगती है। मेखला के कई लाभ तो जानते ही हैं और उन लाभों को लक्ष्य में रखकर पाजामों का नाडा, कमरबन्द कहलाने लगा और पतलून की पेटी भी उपयोगी सिद्ध होरही है। स्त्रियां साड़ी, धोती, लहंगे, सूथन सब नाभि के नीचे मेखलास्थान पर ही बांधती हैं। पुरुष भी धोती कटि के स्थान पर बांधते हैं। सच तो यह है कि मेखला (पेटी) बन्धन किसी न किसी रूप में सर्व भूगोल पर मिलता

है। संस्कृत के उपर्युक्त वाक्य में मेखलाबन्धन के जो गुण बतलाये हैं वह यह हैं:—

(१) निन्दायुक्त वचन को हटाने वाली अर्थात् वायु को शमन करने से व्यर्थ काम चेष्टा को संयम करती है।

(२) व्यर्थ काम चेष्टा को जहां रोकने वाली है वहां पुंस्त्व को नष्ट करने वाली नहीं इसलिये सौभाग्यवती कही गई है।

(३) मेखला आजकल मुञ्ज आदि की बनाकर जिस समय बालकों को पहिनाते हैं तो सुई की तरह वह बच्चों को चुभती है पानी खैंचने की जो रस्सी बाज़ार में बिकती है, एक हाथ भर उसी भद्दी खुरदरी रस्सी को बांधदेते हैं, जिसको कुछ क्षण रखकर बच्चे गुम कर देते हैं। पुराने समय में मुञ्ज आदि की कोमल और सुन्दर मेखला बनाई जाती थी जिसको रुचि से बालक धारण करते होंगे। पेटी के समान मेखला कुछ चपटी होनी चाहिये, आजकल पतली सी रस्सी लपेटने को ही मेखला बांधना हमारे देश में समझ रहे हैं।

(४) भिन्न भिन्न वर्णों के पदाधिकारियों के लिये भिन्न भिन्न मेखला होने से वह वर्णबोधक चिह्न का काम दे सकती है। जिस प्रकार आजकल पुलिस के सिपाही और सेना के सिपाहियों की पेटियों में भेद होता है वैसे ही भिन्न भिन्न मेखला के चिह्न समझ लेने चाहियें।

(५) प्राण, अपान वायु को ठीक रखने से वह बल देने वाली है। इसी बात को सब चुस्ती देने वाली कहते हैं। बल का एक फल चुस्ती है। चुस्ती बलमयी गति है।

संस्कारविधि में जो लेख है कि ब्राह्मण के बालक को मुञ्ज वा दर्भ की, क्षत्रिय के बालक को धनुषसंज्ञक तृण वा बल्कल की, वैश्य के बालक को ऊन वा सण की मेखला होनी चाहिये यह वर्णभाव को बोधन करने के लिये लिखा गया है। यदि सब वर्णों के बालकों की मेखला एकसा होती तो यह भिन्न भिन्न वर्णभाव को बोधन न कर सकती। जिन वस्तुओं से यह नाना प्रकार की मेखला बनाने का विधान है उन वस्तुओं में जो जो गुण हैं वह हम नीचे लिखते हैं। जहां ब्राह्मण शब्द है वहां ब्राह्मणपदाधिकारी† बालक समझना चाहिये।

(१) मुञ्ज—इसके दो प्रकार ह (क) सरपता वा रामशर। रामशर के अभिनव निघण्टु में भद्रमुञ्ज, शर, बाण, तेजन और चक्षुवेष्टन नाम दिये गये हैं। इसी को संस्कारविधि में धनुषसंज्ञक तृण के नाम से लिखा गया है।

(ख) दूसरी मुञ्ज के मुञ्ज, मुञ्जातक, बाण, स्थूलदर्भ और सुमेखल नाम अभिनव निघण्टु में दिये गये हैं। इन के गुणों के विषय में अभिनव निघण्टु में यह लिखा है कि:—"दोनों मुञ्ज अर्थात् सरपता और मुञ्ज—मधुर, कषाय, शीतल, त्रिदोषनाशक, वृष्य और मेखला जो कमर में कसी जाती है उसमें काम आते हैं"।

(२) दर्भ—यह "एक प्रकार का कुश है" हिन्दी में इसको डाभ वा दाभ कहते हैं, इसके गुण यह हैं:—

† देखो—दर्शनानन्दग्रन्थसंग्रह

" कुश और डाभ दोनों त्रिदोषनाशक, मधुर, कषैले और शीतल (पृ० ११६) कुश के दूसरे नाम सूच्यग्र और यज्ञभूषण हैं "।

(३) सण–" इसके टाट, चरस निकालने की बरत, सुतली आदि बनते हैं······ गुण–खट्टा, कषैला, गर्भ और रुधिर को गिराने वाला वमन लाने वाला तथा वात कफ को दूर करने वाला और तीव्र अङ्ग टूटने को दूर करता है "। वात, कफ के शमन तथा अङ्ग टूटने वा आलस्य को दूर करने में इस मेखला का प्रभाव पड़ता है।

(४) ऊन–ऊन की मेखला ऊनीवस्त्र समान कटिस्थल की गरमी को बाहिर जाने नहीं देगी और बाहिर की गरम वायु के प्रकोप से कटि की रक्षा करेगी। जिस प्रकार मुञ्ज कुश, सग शरीर की गरमी को बाहिर जाने नहीं देते वा बाहिर अन्दर आने से रोकते हैं उसी प्रकार ऊन में गुण हैं। मुञ्ज, दर्भ, सण और ऊन के गुणों पर विचार करने से विदित होता है कि इनकी मेखला धारण करने वालों को कटिप्रदेश में लाभ पहुंचता है। यदि मेखला में गांठ लगानी हो तो वह गांठ पीठ की तरफ रहे। एक डाक्टर साहिब का मत है कि पीठ के बल अधिक सोने से वीर्यपात हो सकता है और यदि कटिबन्ध की गांठ पीठ की ओर होगी तो विद्यार्थी को चुभने के कारण पीठ के बल सोने नहीं देगी।

" ओम् युवा सुवासा...." इस मन्त्र को बोल कर दो शुद्ध कौपीन, दो अङ्गोछे, एक उत्तरीय वस्त्र और दो कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे। इस मन्त्र का अर्थ उपनयन प्रकरण में आचुका है जिसमें दर्शाया गया है कि ब्रह्मचारी जहां यज्ञोपवीत धारी हो वहां "सुवासा" शरीररक्षक अच्छे वस्त्र धारण करने वाला बने। इस अभिप्राय को लेकर प्राचीन ऋषियां ने कौपीन, अङ्गोछे आदि ब्रह्मचारी को देने की मर्यादा बांधी थी। कौपीन—इस वस्त्र को धारण करने से वीर्य रक्षा में सहायता मिलती; चलने, फिरने, दौड़ने, श्रम वा व्यायाम करने से अङ्गविशेष सुरक्षित रहता है। दो कौपीन इसलिये दिये जाते हैं कि प्रत्येक दिन ब्रह्मचारी स्नान करते समय एक कौपीन को धो डाले और दूसरा बांध ले। कई लोग मोटे गाढ़े वा चुभने वाले मोटे कपड़े के कौपीन बनाते हैं वे यह सोचते हैं कि कौपीन बहुत दिन चलें परन्तु बहुत मोटे कप के कौपीन पहिनने में चुभने के कारण बालकों की रुचि नहीं होती। इसलिये कोमल कपड़े के कौपीन बनवाने चाहियें। भारतवर्ष में आजकल ऐसी रीति प्रचलित है कि लोग कौपीन को कभी धोबी के देते ही नहीं। वास्तव में सब से अधिक शुद्ध रखने की कौपीन की ज़रूरत है। यदि धोबी के न भी दे तो कुछ चिन्ता नहीं किन्तु दो चार दिन के पीछे तो साबुन से स्वयं ही धो डालना चाहिये, और बिना साबुन के तो रोज ही धो लेना उचित ही है। कौपीन के नियम को सब सभ्य देशों में समझते हैं। और इसके लाभों को प्रत्येक विद्वान् जान गया है। गुजरात और दक्षिण देश में स्त्रियां जब घर में काम करती हैं तो साड़ी वा धोती को कसकर कौपीनवत् बना लेती हैं। पारसी स्त्रियां चड्डी, जिसको गुजराती तथा पञ्जाबी भाषा में कछ कहते हैं, धारण करती हैं। यूरोपवासियों की पतलून में भी कौपीन का नियम बहुत अंश तक रहता है।

अङ्गोछा—अंगोछा भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से उपयोग में आरहा है। इसका महत्व थोड़े ही वर्षों से यूरोप के विद्वानों ने अनुभव किया है; और अब अंगोछे का यूरोप आदि देशों में बहुत प्रचार हो गया है। भारतवर्ष में अब आठ दश आने के रंगी बेरंगी "टुवाल" (अङ्गोछे) प्रचार पारहे हैं। उत्तम गाढ़े वा उत्तम खादी के बने हुए अङ्गोछे में जो गुण हैं, वैसे ब्रह्मचारियों के शृंगारमयी "टुवालों" में नहीं है अतः ब्रह्मचारियों को शृंगारमयी टुवाल देने की ज़रूरत नहीं, अङ्गोछे को कौपीन समान रोज ही जल से धोना और चार दिन के पीछे साबुन से धोना वा धुलाना चाहिये।

उत्तरीय वस्त्र से अभिप्राय ऊपर की चादर, कुर्ते वा अङ्गरखे आदि से है। उत्तरीय पर लिखा है यदि ये भी दो दिये जायं तो अनुचित नहीं होंगे।

कटिवस्त्र दो देने को लिखा है। कटिवस्त्र से अभिप्राय धोती, जांघिया (पाजामा) आदि से हो सकता है। देश काल और ऋतु अनुसार कटिवस्त्र बनाना ठीक है।

दण्ड-धारण

"आचार्य दण्ड हाथ में लेके सामने खड़ा रहे और बालक भी आचार्य के सामने हाथ जोड "ओं यो मे दण्डः........." इस मन्त्र को बोल के आचार्य के हाथ से दंड ले लेवे"। इस मन्त्र में वर्णन किया गया है कि दण्ड जो ब्रह्मचारी के सन्मुख हो वह खडा कर दिया जावे ताकि कहीं से टूटा फूटा हो तो उसकी पड़ताल होसके और ब्रह्मचारी उस दण्ड को विशेषरूप से अपनी आयुरक्षा आदि के लिये धारण करे। आयुरक्षा का आधार शरीररक्षा पर है। दंडधारण का अन्य फल वेदग्रहण करना और वेदोक्त आचार के तेज का होना बतलाया गया है। प्रश्न हो सकता है कि दंडधारण से वेदग्रहण वा सदाचार का तेज क्योंकर धारण हो सकता है? इसका उत्तर देने से पूर्व हम कहेंगे कि प्रत्येक कर्म के फल दो प्रकार के शास्त्रों में माने हैं, एक को प्रत्यक्षफल दूसरे को परोक्षफल कहते हैं। (१) आयुरक्षा। शरीर रक्षा तो दंडधारण का प्रत्यक्ष फल है, शरीररक्षा ही आयुवृद्धि का मुख्य कारण है, अतः आयुरक्षा दंडधारण का भारी फल है।

(२) शरीर के सुरक्षित रहने पर मानसिक शक्तियों की भारी उन्नति होती है। जिसका शरीर स्वस्थ तथा सुरक्षित और मन निर्भय है वह अवश्य बुद्धिबल से युक्त होगा जिसमें बुद्धिबल है वह उत्तम प्रकार से वेद वा सत्यविद्या का अभ्यास कर सकेगा। इसलिये वेदाभ्यास में दंडधारण से अप्रत्यक्ष रीति से निःसन्देह सहायता मिलती है।

(३) यह जो कहा गया है कि वेदोक्त आचार के तेज की प्राप्ति दंड-धारण से होती है। इसके सम्बन्ध में यह विचार करना है कि वेदोक्त आचार का तेज क्या है?

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि वह निर्भयता है। कहने का तात्पर्य यह है कि दंड-धारण करने से निर्भयता प्राप्त होती है जो कि सर्वथा ठीक बात है। दंड एक भौतिक शक्ति है इसशक्ति का उपयोग वहां पर विद्यार्थी करे, यह बड़ी सदाचार की बात है। केवल अपनी रक्षा के निमित्त ही इसका युक्तिपूर्वक उपयोग पीड़ा वा भय देने वाले जङ्गल के जन्तुओं वा प्राणियों पर

करना चाहिये। निर्बल, शान्त, अपराधरहित प्राणियों पर दंड का प्रहार करना क्रूरता का काम है और क्रूरता कभी करनी नहीं चाहिये, केवल भयदाता हिंसाशील प्राणियों से शरीररक्षा-निमित्त इसका प्रयोग करना सदाचार की बात है। जो ब्रह्मचारी दण्डरूपी शक्ति का यथार्थ प्रयोग अभ्यास द्वारा सीखगया उसने सदाचार का भारी शिक्षण ग्रहण करलिया। उसने समझ लिया कि मनुष्य को अपनी शक्ति का उपयोग अपने से बलहीन, भीरु वा शांत स्वभाव वालों को पी। पहुंचाने के लिये नहीं करना चाहिये पर हिंसाशील प्राणियों पर ही अपनी रक्षार्थ इसका उपयोग करना है। शक्ति के सदुपयोग से बढ़कर सदाचार क्या हो सकता है। इस वेदोक्त सदाचारसे जो तेज मनमें प्राप्त होता रहता है वह निर्भयता है। निर्भयता के लिये दण्ड-धारण की आवश्यकता सर्व संसार के मनुष्यों ने अनुभव की है। कोईसभ्य वा असभ्य देश ऐसा नहीं जहां पर लोग जङ्गली प्राणियों वा कुत्ते आदि से बचने के लिले दंड-धारण न करते हों। दण्ड का परिमाण ब्राह्मणपदयाचक बालक के लिये इतना हो कि दण्ड उसके केशों तक और क्षत्रियपदयाचक के ललाट वा भ्रूतक और वैश्यपदयाचक बालक के नासिका के अग्रभाग तक आवे। इससे दो उद्देश्य सिद्ध होते हैं (१) प्रथम तो यह है कि सब ब्रह्मचारियों की कमरें सीधी रहाकरें और उनके मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) में टेढ़ापन न आवे। मेरुदण्ड की लम्बाई उस स्थल पर आकर समाप्त होती है जहां पर नासिका के अग्रभाग से खेंची हुई रेखा जाकर पहुंचे। नासिका के अग्रभाग ललाट वा भ्रू-शिर के केश तक ऊंचे दण्ड धारण करने से छाती को उभार कर कमर को सीधा करना पड़ता है। पढने वाले विद्यार्थियों को लम्बा दण्ड, गरदन सीधी रखने के लिये बड़ा ही सहायक है। प्रश्न होसकता है कि एक के लिये नासिका का अग्रभाग, दूसरे के लिये ललाट, तीसरे के लिये शिर के बाल तक सीमा क्यों बतलाई गई है? उत्तर में हम कहेंगे कि यह केवल वर्णभाव को बोधन करने के लिये लम्बाई में थोड़ा सा नाममात्र भेद करदिया है पर इस भेद से शरीर की हानि किसी की भी नहीं होती। अतः इस परिमाण के दो उद्देश्य हैं (१) मेरुदण्ड को सीधा रखना। (२) वर्णभाव का बोधन करना। दण्ड तीन प्रकार की लकड़ी के हों (१) पलाश वा बिल्व (२) बट वा खदिर (३) पीलू वा गूलर का। पहिले प्रकार का ब्राह्मणपदयाचक बालक के लिये, दूसरे प्रकार का क्षत्रियपदयाचक बालक के लिये, तीसरे प्रकार का वैश्यपदयाचक बालक के लिये होना चाहिये।

(क) पलाश ढाक) के विषय में अभिनव निघण्टु पृष्ठ १५२ पर लिखा है कि "दीपन, बलकर्त्ता, दस्तावर, गरम, कषैला, चरपरा, कडवा, स्निग्ध है व्रण गोले और गुदा के रोग को नष्ट करे तथा टूटे हाड़ को जोड़े, बातादि दोष, सङ्ग्रहणी बवासीर और कृमि इनको हरण करे।"

(ख) बिल्व वा बेल—कषाय, कड़वा, ग्राही, रूक्ष, अग्निवर्द्धक, पित्तकर्त्ता, बात, कफ नाकश, बलकारक, लघु, उष्ण और पाचक (अभिनव निघण्टु पृ० ९०)।

(२) (क) बट के विषय में अभिनव निघण्टु पृ० १४६ पर यह लिखा है कि

शीतल, भारी ग्राही, कषैला, कफ और पित्त को दूर करे, देह का वर्ण उजला करे, व्रण रोग, विसर्प और दाह को दूर करे।

(ख) खदिर (खैर) के गुण आदि ये हैं—शीतल, दांतों को हितकारी, कड़वा और कषैला, खुजली, खांसी, अरुचि, मेदरोग, कृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण, सफेद कोढ़, आमवात, रक्तपित्त, पांडुरोग, कोढ़ और कफ के विकारों को दूर करे है। (देखो अभिनव निघंटु पृष्ठ १४४) इस की लकड़ी के यज्ञ के स्रुवा आदि बनाते हैं। उनसे होम करते हैं और इसकी लकड़ी का कोयला दारू, आतिशबाज़ी में काम आता है। इस वृक्ष की अत्यन्त रंग वाली लकड़ी और कच्ची फलियों में से औटा कर सत्व निकालते हैं उसी को कत्था कहते हैं।

(३) (क) पीलू—इसके गुण आदि ये हैं:—वात, श्लेष्मनाशक, पित्तकर्त्ता, दस्तावर और गुल्मरोगनाशक। पीलू स्वाद में मीठा और कड़ुआ होने से त्रिदोषनाशक और अधिक गरम नहीं है"। (देखो अभिनव निघण्टु० पृ० १७३)

(ख) गूलर (उदुम्बर) के विषय में यह लिखा है कि:—शीतल, रूक्ष, भारी, मधुर, कषैला, वर्णकारक, कफ, पित्त और रुधिर के विकारों को दूर करे तथा व्रण का शोधन और रोपण करे। गूलर की त्वचा शीतल, कषैली, व्रणनाशक, गर्भवती के गर्भ की रक्षा और स्त्री के स्तनों में दूध बढाती है। (देखो अभि० नि० पृ० १४७)

प्रश्न हो सकता है कि पलाश, बेल, वट, खदिर, पीलू और गूलर इन छः प्रकार के वृक्षों के दण्ड धारण करने का विधान क्यों किया गया?

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि वृक्ष वा वनस्पति को विना जाने उसका उपयोग करने से त्वचा-रोगों वा अन्य रोगों का होजाना संभव है। जो लोग शिमला पर्वत पर गये हैं उनको मालूम है कि वहां एक प्रकार की वनस्पति होती है जिसको बिच्छू बूटी कहते हैं। उसको छूते ही हाथ सूज जाता और हाथ पर वेदना प्रतीत होने लगती है। वह दुःख दूसरी बूटी जिसका नाम "पालक" है, उसके लगाने से दूर हो जाता है। इसी प्रकार पूर्वोक्त गुणों पर एक दृष्टि देने से प्रतीत होगा कि इन छः में से किसी भी वृक्ष की लकड़ी ऐसी नहीं जो त्वचा-रोग को करने वाली हो प्रत्युत सब के सब अनेक त्वचा-रोगों को दूर करने वाले हैं। यथा:—

१—पलाश व्रण और कृमि को दूर करता है।

२—बिल्व—बलकारक, वातकफनाशक, अग्निवर्द्धक है।

३—वट—व्रण रोग को दूर करता है और वर्णकारक है।

४—खदिर—खुजली और व्रण तथा कोढ का नाशक है।

५—पीलू—त्रिदोषनाशक।

६—गूलर—वर्णकारक, रुधिरविकारनाशक, व्रणनाशक है।

छोटी छोटी बूटिएं तो बहुत ऐसी हैं जो त्वचा-रोगों का नाश करती हैं पर ऐसे वृक्ष

जिनके दण्ड धारण किये जावें और वह त्वचारोग का उत्पन्न न करें, यह जानकर उनका उपयोग करना बुद्धिमत्ता की बात है। बिल्व को छोड़ कर शेष सबही के विषय में तो स्पष्ट लेख मिलता है कि यह व्रण (फोडा) आदि के नाशक हैं। बिल्व भी वातकफनाशक होता हुआ अग्निवर्द्धक तथा बलकारक है। जो वस्तु बलकारक हैं वह स्वास्थ्यदायक अवश्य हैं। इसलिये बेल की लकडी भी त्वचारोग को करने वाली नहीं। अतः छः में से छः ही त्वचारोग न करने वाले उत्तम काष्ठ हैं और इनके दण्ड धारण करने से किसी प्रकार के सांसर्गिक रोग का भय नहीं हो सकता। पलाश वा बिल्व, ब्राह्मणपदयाचक बालक के लिये, वट वा खदिर क्षत्रियपदयाचक बालक के लिये और पीलू वा गूलर वैश्यपदयाचक बालक के लिये निर्दिष्ट करने से वर्णभाव को बोधन कराना प्रतीत होता है। पार० गृ० सू० का० २ कं० ५ सू० २८ में लिखा है कि " सर्वे वा सर्वेषाम् " अर्थात् सब प्रकार के दण्ड सबके पास होसकते हैं। जिससे वर्णभेद की शंका भी न रहे* दण्ड के विषय में फिर यह लिखा है कि " वे दण्ड चिकने सीधे हों, अग्नि में जले टेढे कीडों के खाये हुये न हों "।

भारतवर्ष में लोग इस बात की ओर कम दृष्टि देते हैं। यदि दण्ड चिकना न होगा तो हाथ में फांस चुभ जाने का भय रहेगा, यदि सीधा न होगा तो उसके शीघ्र टूट जाने की अधिक संभावना होगी, अग्नि में जले हुये कोयले के समान वा कीडों का खाया हुआ दण्ड बहुत जल्दी टूट सकता है इसलिये दण्ड चिकने और सीधे तथा दृढ होने चाहिये। फिर लिखा है " एक एक मृगचर्म उनके बैठने के लिये देना चाहिये " मृगचर्म, कुशासन, तृणासन और ऊर्णासन सब में यह गुण है कि वह शरीर की अग्नि बाहर भूमि में जाने नहीं देते। आजकल मृगचर्म स्वाभाविक मृत्यु से मरे हुये मृगों के मिलने कठिन हैं, इसलिये कुशासन संध्या आदि के लिये उपयोग करने चाहियें। मृगचर्म बहुत मूल्यवान् है और कुशासन सस्ता है यह भी याद रखना चाहिये।

पिता की ओर से उपदेश

जब दण्ड धारण कर लेवे तब ब्रह्मचारी को उसके पिता बाईस सूत्रों द्वारा उपदेश करे—

(१) हे अमुक नाम वाले तू ! आजसे ब्रह्मचारी है यह उपदेश सूचना मात्र है।

(२) दूसरे संध्या तथा भोजन के पूर्व आचमन करने का विधान है, संध्या में मन्त्रोच्चारण तथा प्राणायाम करना होता है इसके करने से कंठ के कफ आदि की निवृत्ति होती है। भोजन से पूर्व आचमन करने से कंठ की भोजन करने वाली नाली गीली होजाने से भोजन को अन्दर जाने में सहायता मिलती है।

(३) " कर्म कुरु "। यह तीसरा उपदेश पूर्णरूप से इस समय यूरोप आदि देशों मे विद्यार्थियों को दिया जाता है। यही कारण है कि वे लोग पुरुषार्थ और कर्म करनेवाले

* सर्व सूत्रग्रन्थों के पाठ से यह सिद्ध है कि वे वर्णभेद के बोधक चिह्न विकल्प रूप से लिखते हैं। एक जगह लिखकर दूसरी जगह सामान्य चिह्न भी लिखते हैं।

होते हैं। आलस्य उनके पास फटकता नहीं। कभी भारतीय ऋषि इस उपदेश को देते थे और उस समय भारत–संतान तपस्वी और पुरुषार्थी होती थी।

(४) दिन में सोना नहीं। जो विद्यार्थी दिन में सोते हैं उनके शिर में गरमी बढ़जाने से उनकी स्मृति निर्बल होजाती है। दिन में सोने से आलस्य बढ़ता है। अंग टूटने लगते हैं, आंखें लाल होजाती हैं। इसलिये ब्रह्मचारियों को कभी दिन में सोना नहीं चाहिये।

(५) आचार्य्य की आज्ञा मानते हुये वेद पढ़ो। यूरोप आदि सभ्य देशों में सब बुद्धिमान् मानते हैं कि जो आज्ञा-पालन करना नहीं जानता वह कभी आज्ञा देने के उच्च अधिकार को उत्तमता से पूर्ण नहीं कर सकेगा। विद्यार्थियों को यूरोप आदि देशों में आज्ञा-पालन के अंक (नम्बर) दिये जाते हैं। आज्ञापालन के साथ ही विद्याभ्यास हो सकता है। इसलिये वेद के पढ़ने वाले विद्यार्थी के लिये आचार्य्य की आज्ञा का पालन करना बहुत लाभदायक है।

(६) एक वेद के लिये बारह बारह वर्ष ब्रह्मचर्य कर। एक वेद के साङ्गोपाङ्ग पढ़ने में पुराने समय में बारह वर्ष लगते थे। तभी तो वह वेदों के उत्तम पंडित बनते थे। आज चार वेदों के इस प्रकार पढ़ने की शैली देश से उठजाने के कारण वेदविद्या लुप्तसी होरही है।

(७) आचार्य के आधीन धर्माचरण में रहा कर परन्तु आचार्य धर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करे तो उसको तू कभी मत मान और उसका आचरण मत कर।

कई देशों में आजकल कई आचार्य प्रायः अन्धश्रद्धा के प्रचारक बनगये हैं और अनेक शिष्य लोग गुरु की आज्ञा-सेवन ही परम सौभाग्य समझते हैं चाहे वह आज्ञा कैसी ही धर्मरहित क्यों न हो। यूरोप का इतिहास बतलाता है कि सुधारक मारटन लूथर से पहिले ईसाई धर्म के कई गुरु लोगों ने कई शताब्दियों तक अपने शिष्यों में अन्धश्रद्धा का प्रचार किया, और इतिहास में इसको अन्धकार का समय कहा जाता है।

ऋषि लोग मनुष्य-स्वभाव से पूर्ण विज्ञ थे, वह जानते थे कि यदि आचार्यों और पढ़ाने वालों के सब अनिष्ट वाक्यों को भी शिष्य सर्वांश में मान कर उन पर आचरण करने लग जावेंगे तो शिक्षकों को जहां अन्धश्रद्धालु और कुकर्मी शिष्य बनाने का निरंकुश होने से अवसर मिल जावेगा वहां वह उच्च उद्देश्य, जो समाज में विद्या और सदाचार की वृद्धि का है, लुप्त होजावेगा। इसीलिये उन्होंने बालक को ऐसे गुरु से सावधान रहने के लिए जो उपदेश दिया वह अत्यन्त उपयोगी है, जिन माता पिताओं ने सीधे स्पष्ट शब्दों में यह समझ रक्खा है कि हे बालक! शिक्षक का मान करना, उसकी धर्मयुक्त आज्ञा-पालन में तत्पर रहना, पर यदि कभी तुम्हारा शिक्षक तुमसे कोई अधर्म कार्य्य कराना चाहे तो खबरदार! ऐसे समय उसका कभी कहा नहीं मानना और उसके कहने से अधर्म नहीं करना। जिस प्रकार राजभक्त शूरवीर सिपाही राजा महाराजाओं के सबरक्षक होते हैं, उसी प्रकार ऋषियों की यह सची बात ब्रह्मचारियों तथा ब्रह्मचारिणियों को अन्धश्रद्धा और कुकर्म से बचानेवाली, तनरक्षक के समान है और सदैव होगी। कोई मनुष्य चाहे कितना भी विद्वान् और सदाचारी प्रसिद्ध हो पर अन्त को मनुष्य

है यदि वह निरंकुश है तो उसका गिरना सम्भव है। यही नहीं कि इस उपदेश के होने से केवल शिष्य दुराचार से बच सकते हैं किन्तु सदाचारी आचार्यों के आचार की इसीसे भारी रक्षा हो सकती है, क्योंकि आचार्य को भय रहेगा कि यदि मैं धर्म से रहित कोई भी कर्म करने को कहूंगा तो आशा नहीं कि बालक मेरे कहने में फंसे और बालक के आगे मुझे पतित होना पड़ेगा। यह ऐसी शिक्षा थी जो बच्चों को एक तरफ सावधान होने का उपदेश देती थी वहां दूसरी ओर आचार्य्य पर अंकुश का काम देती थी। बड़े बड़े अनुभवी विद्वानों का कथन है कि प्राय: एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के अंकुश से पाप करने में प्रवृत्त नहीं होता। छोटे बच्चे जिस बात को अधर्म समझ गये वा सुन गये हैं यह बात यदि कोई उनको धर्म कहकर मनवाना वा कराना चाहे तो परस्पर विरोध का भाव देखकर वह बालक शङ्का कर देते हैं। बालक को यह शङ्का करने की शक्ति ही अंकुश का काम देती है। कल्पना कीजिये कि एक बालक को माता पिता ने घर में पांच वर्ष की अवस्था में यह समझा दिया कि हे बालक! तू गुरुकल में नङ्गा होकर किसी अन्य नग्न मनुष्य के साथ नहीं सोना जब बालक गुरुकुल वा विद्यालय में गया तब भी उसने यह उपदेश किसी और से सुना और फिर कुछ मास पीछे यदि कोई शिक्षक उसको किसी मनुष्य के साथ नग्न होकर सोने के लिये कहे तो उस समय उसको प्रतीत होने लगेगा कि अमुक बात से यह विरुद्ध बात है। उसके मन में उस समय शङ्का उत्पन्न होगी जो स्वाभाविक अङ्कुशरूप होने से उस खोटी आज्ञा के पालन न करने को कह रही है ऐसी दशा में यदि बालक कहेगा कि यह अधर्म है मैं नहीं करूंगा तो शिक्षक की मानसिक मलिनता को दूर करने के लिये नकार बड़ा काम कर जावेगा। इस नकाररूपी अंकुश से शिष्य और शिक्षक दोनों कुकर्म से बच सकेंगे। आजकल अङ्गरेजी की छोटे छोटे लड़के लड़कियों के लिये ऐसे पाठ लिखे और पढ़ाए जाते हैं जिनमें बालकों को नकार कहां करना चाहिये, सिखाया जाता है। उन सब पाठों में लिखा होता है कि जो "नो" (नकार) का सदुपयोग जानता है, वह शूरवीर है। चोरी करने, मदिरा पीने आदि अनेक कुकर्मों के लिये यदि कोई तुम से कहे तो हे बालको! तुमने वहां "नो" (नकार) कहना, ऐसा ऐसा लिखा रहता है। सर्व सभ्य देशों में सत्यवचन कहां कहना और उसके साथ "नो" (नकार) कहां कहना चाहिये, इसकी शिक्षा आजकल छोटे बालकों को उत्तमता से दी जाती है, क्या अङ्गरेजी पुस्तक के पाठ साधारण तौर पर उपदेश नहीं देते कि यदि कोई भी बालक को चोरी करने के लिये कहे तो उसका कहा बालक को नहीं मानना चाहिये, क्या इस प्रकार के कथन में मास्टर आदि सब का समावेश नहीं हो जाता? ऋषियों ने इससे कुछ अधिक स्पष्ट शब्दों में ब्रह्मचारी के लिये उपदेश रक्खा कि यदि साधारण मनुष्य नहीं किन्तु बालक का गुरु भी उसको अधर्म करने के लिये कहे तो वहां उसे (नकार) कर कहना चाहिये और कुकर्म को कभी नहीं करना चाहिये।

(८) क्रोध करना और अनृत कहना वर्जित है। (१) क्रोधी बालक का शरीर पुष्ट नहीं होता क्योंकि क्रोध से भूख कम हो जाती है। (२) क्रोधी की

बुद्धि निर्बल होने लगती है । (३) क्रोध के वेग में अपशब्द कह देने का स्वभाव होजाता है। (४) क्रोध के वेग को शमन न करने से मारपीट वा हिंसा में प्रवृत्ति होती है। (५) क्रोधी का क्रोध शान्त होने पर पश्चात्ताप होता है जो इस बात की सूचना है कि वह क्रोध के वेग को धारण न करे। (६) क्रोध करते रहने से सहन-शक्ति और क्षमावृत्ति का ह्रास होता है इत्यादि कारण शिक्षक वा पिता आदि बालकों को अनेक विध समझाते रहें, जिनसे उनको क्रोध के दोष स्वयं अनुभव होने लग जावें।

मिथ्या भाषण के दोष यह हैं :—

(१) मिथ्याभाषण करने वाले का कोई विश्वास नहीं करता और दूसरों से जो सहायता इसको मिलनी चाहिये वह नहीं मिलती। जिसके न मिलने से वह अपनी उन्नति कर नहीं सकता वा यों कहो कि कार्य्य सिद्ध नहीं होता। (२) झूंठ बोलने से मन अत्यन्त निर्बल होजाता है कारण कि झूंठे के मन में सदैव भय इस बात का बना रहता है कि झूंठ किसी पर न खुल जावे और भय से बढ़कर मानसिक रोग कोई नहीं है। (३) झूंठे के मुख की कांति और निद्रा कम हो जाती है। (४) झूंठा अपयश का भागी बनता है।

(९) मैथुन वर्जित हैं:—स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीडा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम यह आठ प्रकार के मैथुन मानवशास्त्र में गिने हैं।

१—जिस समय मन में स्त्रीका ध्यान आवे उस समय ब्रह्मचर्य के महत्वबोधक मन्त्र व श्लोक उच्चारण करे तथा मन में अन्य शुभ-विचार भर देने चाहियें।

२—विषयवर्द्धक जहां पर कथा कहानी होती हो वहां से चला आवे वा वहां न जावे। थियेटर वा नाटक न देखे, न थियेटर वालों का गाना सुने।

३—जो जो स्पर्श, विषयवासना को उत्तेजन देने वाले हैं उन उन से बचे। स्नान करते समय वा शौच वा रोग के समय उपस्थ इन्द्रिय को हाथ से धोना वर्जित नहीं। मेलों में जहां भीड होती है और जहां धक्के दिये बिना गुजरना कठिन होता है ऐसी जगहों में वा जहां जहां स्त्रियों के स्पर्शन आदि का अवसर मिलता हो उन उन से बचे। बाजार आदि में भी स्त्री से छूकर चलना ठीक नहीं। सावधानी से मेला, उत्सवों तथा बाजारों में चलना चाहिये।

(४) क्रीडा से अभिप्राय लड़के लड़कियों के परस्पर ऐसे खेल कूद से है जो विषय-वर्द्धक हो। (५) स्त्री दर्शन से अभिप्राय कुदर्शन से है। पुराने समय में रोज ब्रह्मचारी ग्राम में भिक्षा मांगने जाया करते थे उनको स्त्रियों के दर्शन तो होते थे परन्तु विषयदृष्टि से ताड़न का निषेध है। युरोप में विद्यार्थियों को नग्न तसवीरें देखने से रोका जाता है। इसलिये कुदर्शन दो प्रकार का समझना चाहिये। (१) नग्न स्त्रियों को विषय दृष्टि से ताड़ना। (२) अश्लील प्रतिबिम्ब (फोटो) वा तसवीर का देखना। आलिंगन, एकान्तवास और समागम इनके विषय में अधिक लेख की आवश्यकता नहीं। माता पिता को प्रथम से ही बालकों को, यह बातें स्पष्ट शब्दों में उनको सुना देनी चाहियें और आचार्य

आदि समय समय पर उपदेश देते रहें जिससे वह जितेन्द्रिय होसकें। शोक है हमारे देश में इन पर कोई ध्यान देता ही नहीं।

(१०) भूमि पर शयन करने का उपदेश है। इसलिये कि समचौरस भूमि बदन की नस नाड़ी को अच्छी प्रकार फैलने में सहायता देती है और कोमल न होने से वीर्यरक्षा में भी सहायक है। इसी कारण एक प्रसिद्ध लेखक " एस. स्टाल " " युवा बालक को क्या जानना चाहिये ? " इस पुस्तक के पृष्ठ १७३ पर सख्त बिस्तरे पर सोना लिखते हैं। भूमि पर सोना भी, इसी हेतु से है कि मैथुनवासना की उत्तेजना कम हो। पुराने आर्य दुमञ्जले मकानों की दृढ़ छत्तों पर बालकों को चौमासे में सुलाते होंगे वा खाट के आकार समान ऊंचे चबूतरे मट्टी वा चूने (गच) के बनवा छोड़ते होंगे, कोई कह नहीं सकता। आजकल साधु लोग लंबी चौकी (तख्त) पर इसी प्रयोजन से सोते हैं।

चौमासे में सीली भूमि पर यदि सोया जावे तो सीलेपन से कमर दर्द रोग के अतिरिक्त सर्प बिच्छू तथा कनखजूरा आदि जंतुओं के काटने का भारी भय बना रहेगा सरदी में जबतक पर्याप्त रुई के गद्दे नीचे न हों तबतक ज़मीन पर सो नहीं सकते। गुजरात देश में पञ्जाब से अधिक रिवाज़ भूमि पर शयन करने का है, पर लोग इतने मोटे रुई के गद्दे डालते हैं कि सरदियों में शीत का भय नहीं रहता। बहुत से लोग सुन्दर पक्के दुमञ्जले मकानों की छत्तों पर सुरक्षित भूमि पर (गुजरात देश में) बहुत मोटे गद्दे डालकर सोते हैं।

सर्प, बिच्छू आदि जन्तुओं से बचकर यदि किसी प्रकार से समचौरस उत्तम भूमि पर मनुष्य सो सके तो चिन्ता नहीं। ऊंची, नीची भूमि पर सोने से अन्न नहीं पचता शिर दुखता है, जिससे विद्याप्राप्ति में विघ्न आता है। आर्यसमाज के गुरुकुलों में जो काष्ठ की चौकी (तख्त) पर ब्रह्मचारियों को साधुओं के समान सुलाया जाता है यह उत्तम प्रकार है। कारण कि काष्ठ की चौकी उत्तम भूमि समान कठोर और समचौरस होती हैं और ऊंची होने से सर्प आदि जन्तुओं का भय भी नहीं रहता। यूरोप के डाक्टर ब्रह्मचर्य के लिये जिस कड़े बिस्तरे का उपदेश देते हैं वह चौकी से बढ़कर क्या हो सकता है ? इसलिये चौकी पर सोना ऋषियों के उस उद्देश्य को जो भूमि-शयन से पूरा हो सकता था, कर रहा है। संस्कार में जब लिखा है कि तीन दिन नया ब्रह्मचारी जिसका संस्कार हुआ है ज़मीन पर सोवे तो इस लेख से पाया गया कि तीन दिन के पीछे वह किसी प्रकार की चौकी आदि पर सो सकता है।

(११) गाना, बजाना, नृत्य, गन्ध और अञ्जन सेवन न करने का उपदेश है। इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि विषयवासना के वृद्धिकारक गीत न गाये जावें, नृत्य आदि कर्म न किये जावें और इतर आदि गन्ध तथा अञ्जन शृङ्गारचेष्टा से काम में न लाये जावें। सामगान करने और रोगनिवृत्ति के समय चन्दन आदि गन्ध का लेप करने वा सुरखी आदि नेत्ररोग के निमित्त अञ्जन आदि औषधवत् प्रयोग करने का निषेध नहीं है।

(१२) अतिस्नान, अतिभोजन, अतिनिद्रा, अतिजागरण, निन्दा, लोभ, मोह भय शोक इनका ग्रहण ब्रह्मचारी न करे। एक बड़े विद्वान् का वचन है कि बच्चे उसी काम का

करते हैं जो उनके गुरु माता पिता आदि आचरण में लाते हैं। यदि गुरुजन मर्यादा से जीवन व्यतीत करनेवाले और लोभ आदि दोषों से मुक्त हैं तो निश्चय जानिये कि उनके छात्र अवश्य इस सूत्र के अनुगामी हो सकेंगे। यूरोप में सुनीतिशिक्षण की उत्तम पुस्तकों में यह मानागया है कि बालकों को मर्यादा से चलने और शोक आदि मानसिक रोगों से मुक्त रखने के लिये सबसे भारी ज़रूरत यह है कि शिक्षक लोग स्कूल वा बोर्डिङ्गहाउस में अपने आचरण से उनको शिक्षण दें। यूरोप में सैकड़ों ऐसे बोर्डिङ्गहाउस हैं जहां उच्च जीवन की शिक्षा विद्यार्थी अपने शिक्षकों के आचरण से आयु भर के लिये ग्रहण करते हैं। जहां एक ओर शब्द द्वारा उपदेश की जरूरत है वहां दूसरी ओर गुरु अपने आचरण से उस शब्द को सार्थक बना सकता है।

(१३) रात्रि के चौथे प्रहर जाग, आवश्यक शौचादि दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वरस्तुति, प्रार्थना और उपासना, योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर, यह उपदेश है। रात्रि के पिछले प्रहर में जागने वाले की आयु बढ़ती और आलस्य नष्ट होता है। मल–मूत्र–त्यागनार्थ जङ्गल में जाना पुरानी रीति है। बड़े शहरों को छोड़ कर सब भारतवर्ष में आजतक ग्रामों के लोग प्रायः जङ्गल में शौच के लिये जाते हैं। पुराने समय में सड़कें साफ करने वाले वा झाड़ू लगाने वाले मनुष्य तो इस देश में थे पर मैला उठाने वाले भङ्गी न थे। इसी लिये संस्कृत में मैला उठाने वाले के लिये कोई शब्द नहीं है। पुराने समय में ग्रामों के गृहस्थ नर नारी तो जङ्गलों में शौचार्थ जाते थे। बड़े बड़े नगरों में भी जङ्गल जानेवाले बहुत होते थे पर कहीं कहीं सण्डास भी होते थे। इन सण्डासों को भङ्गी साफ़ नहीं करते थे। किन्तु नमक (क्षार) मट्टी आदि डालने से वह मल को भस्म कर देते थे। आजकल ब्रिटिश रेजिमेन्टों में ट्रेंच सिस्टम कई वर्ष से जारी है अर्थात् सिपाही लोग एक नाली जो पचास फीट लम्बी और दो फुट चौड़ी और दो फुट गहरी खोदते हैं। मल त्यागने के पश्चात् उसको मिट्टी से भर देते हैं। फिर दूसरे दिन नई खोद लेते हैं। जब सब खेत भर गया तो तीन वा चार साल उस पर घास कृषि आदि के लिये छोड़ देते हैं। यूरोप आदि देशों के बड़े नगरों में आजकल नलद्वारा पानी के वेग से मल समुद्र वा दरिया, नदी आदि में कलायन्त्र से अन्दर अन्दर पहुंचाया जाता है। किसी मनुष्य को मल उठाने के काम करने की आजकल के सभ्य देशों के बड़े बड़े नगरों में ज़रूरत नहीं और न पुराने समय में थी। ग्रामों के रहने वाले पुराने समय में आजकल भी प्रायः जङ्गल ही जाते हैं। मुसलमानों की औरतों को खुले मुंह जङ्गल में जाना कठिन था इसलिए उन्होंने अपनी औरतों के लिये घर के बीच में " जाय ज़रूर " (आवश्यक स्थान) " पाखाना " (घर का निचला भाग) आदि बनाए। शब्द फारसी भाषा के हैं। फिर धीरे धीरे हिन्दू लोगों ने इनकी नकल की। अब अङ्गरेजी सभ्यता के प्रभाव से नलयन्त्र द्वारा मल को नगर से दूर लेजाने के साधन बड़े नगरों में बढ़ेंगे, ऐसी आशा है जिससे मनुष्य–जाति का एक भाग भङ्गी होने से पूर्वकाल के समान बच सकेगा।

गुरुकुलों में ब्रह्मचारियों का जंगल में शौच-निमित्त भेजना ठीक है, रोगी ब्रह्मचारी के लिये सण्डास की जरूरत है। सण्डास ऐसे होने चाहियें जिनकी ऊपर की आधी छत न हो, ताकि सूर्य्य की रोशनी दो पहर को उसमें जासके और नमक मट्टी आदि डालना चाहिये, ताकि मल भस्मरूप हो सके। मल के ऊपर शौच का पानी नहीं पड़ना चाहिये।

इस सूत्र के संस्कृत पाठ पर दृष्टि देने के लिये हम सर्व जिज्ञासुओं से प्रार्थना करते हैं। सूत्र के देखने से निश्चय हो जावेगा कि सन्ध्योपासनादि शब्द विद्यमान हैं। मूर्तिपूजा की गन्ध भी इसमें नहीं, यही नहीं परञ्च अन्य सूत्रग्रन्थों में भी सन्ध्या उपासना का ही विधान है।

(१४) इस सूत्र में क्षौरकर्म वर्जन किया गया है उस्तरे से बाल मुँडाना क्षौरकर्म है।

(१५) मांस, रूखा शुष्क अन्न न खावे और मद्यादि न पीवे। आर्यभोजन क्या था ? इसका उपदेश इस सूत्र में मिलता है अब तो यूरोप के विद्वान् मदिरा मांस से रहित आहार की महिमा को जान गये हैं। शुष्क अन्न खाने से मल नहीं उतरता और आंतों में रोग हो जाते हैं, इसलिये घृत, दही वा छाछ से युक्त अन्न खावे।

(१६) बैल, घोडा, हाथी, ऊंट आदि की सवारी ब्रह्मचारी न करे।

मि० स्टाल अपनी पुस्तक के पृष्ठ १७३ पर घोडे की सवारी का निषेध करते हैं इसलिये कि नीचे के अङ्गों में अधिक वीर्य उतरता है। सूत्र का आशय यह है कि इन जानवरों पर तथा इनसे चलनेवाले यानों (गाड़ियों) में भी सवारी न करे, जानवरों की पीठ पर सवारी करने से वीर्य्यपात का भय है और यान में बैठने से टांगो में बल नहीं बढ़ता जिससे मनुष्य बलहीन हो जाता है।

(१७) गांव में निवास, जूता और छत्र का धारण मत कर, यह लेख संस्कारविधि में है। दो काल भिक्षा लेने को ब्रह्मचारी गुरुओं के साथ ग्राम में जाते ही थे, इसलिये निवास का आशय यही हो सकता है कि दिन वा रात को गांव में कहीं सोवे वा ठहरे नहीं। इस सूत्र का दूसरा अर्थ यह है कि ग्राम के अन्दर निवास, ग्राम के अन्दर जूता और ग्राम के अन्दर छत्र का धारण न करे। ऐसा ही गोभिल गृह्यसूत्र के प्रपाठक ३ कंडिका १ सूत्र २५ का अर्थ जर्मनदेश के विद्वान् हरमेन ओलडनबर्ग और प्रोफेसर मैक्समूलर साहब ने किया है कि ग्राम में जूता धारण न करे, संस्कारविधि की उपरोक्त भाषा से भी यही अर्थ निकल सकते हैं। जहां तक विचार किया जाता है वहां तक इस सूत्र का यही आशय अधिक युक्त और भावपूर्ण प्रतीत होता है कि ग्राम के अन्दर जूता और ग्राम के अन्दर छत्र को धारण न करे। पुराने समय में ग्रामों की सड़कें उत्तम होने से कांटे आदि से रहित होती थीं, इसलिये ऐसी सड़कों पर जिनमें कांटे नहीं, ब्रह्मचारियों को नंगेपांव चलना हानिकारक न था किन्तु पग को दृढ़ करने का साधन था। ग्रामों की सड़कों पर पुराने काल में वृक्ष अवश्य होते थे और प्रातः सायं वे भिक्षा लेने जाते थे जिस समय भूमि भी तपी हुई नहीं होती थी और न सूर्य का ताप शिर पर बहुत होता था इसलिये ग्राम में

जूते और छत्र धारण का निषेध युक्त प्रतीत होता है। गुरुकुल के मकान वा बाड़े में भी जूते की ज़रूरत नहीं। गुरुकुल के मकान में पग आदि धोकर आसन पर बैठने तक खड़ाऊं उपयोग में सब ही लाते हैं। निकट के उस जंगल में जिसमें कांटे न हों, खड़ाऊं से बराबर काम चल सकता है। पर कभी ऐसे जंगल में जाना पड़े जिसमें अधिक कांटों की संभावना हो उस दशा में जूते का निषेध नहीं समझना चाहिये। जब शौचादि जाते समय रक्षा-निमित्त दंड-धारण की आवश्यकता है तो कांटों से पग को कष्ट न पहुंचे और रोग न हो तथा सर्प बिच्छू आदि के पग काटने के भय की निवृत्ति के लिये जूते को यदि पहिना जावे तो उचित है। परन्तु इसका यह आशय नहीं कि गुरुकुल के कंटकरहित स्थल में वा ग्राम की उत्तम सडकों पर भी जूता पहिना करें। घर में लोग शिर नंगे और एक धोती लगाये बैठे रहते हैं पर दरबार, दफ्तर वा रेल आदि की यात्रा के समय पगडी लगा अंगरखा पहिन कर जाते हैं। इसी प्रकार जिस वस्तु के उपयोग की जहां ज़रूरत हो वहां पर ही करना और वर्जित स्थान पर न करना ही ठीक है। अतः ग्राम के अन्दर जूता न पहिने और ग्राम के बाहर उक्त दशा में पहिन सकता है। पंजाब के एक गुरुकुल में हमने एक ब्रह्मचारी को कई वार विना जूते के, पास के कांटोंवाले जंगल में शौचार्थ जाते देखा, एक दिन उस ब्रह्मचारी को बडा गहरा कांटा चुभा और डाक्टर ने चीर कर निकाला और बालक को बहुत कष्ट सहन करना पडा। उस दिन से उस गुरुकुल में ब्रह्मचारी कांटोंवाले मार्ग से बचने के लिये जूते का उपयोग करने लगगये हैं। खडाऊं तो लगभग सब ही गुरुकुलों में उपयोग में लाई जाती हैं। अब तो ज्वालापुर जि० सहारनपुर तथा बरेली में ऐसे जूते (बूट) बने हुए बिकते हैं जिनका तला काष्ठ का और ऊपर का भाग कंतान कपडे का होता है, इन पगरखों को कांटे वाले स्थलों पर उपयोग में ला सकते हैं।

प्रश्न हो सकता है कि गुरुकुल अथवा ग्राम के अन्दर जूता पहिना जावे तो दोष ही क्या है ? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि कुछ काल जूता न पहिनानेसे ऋषियों का आशय यह था कि पग दृढ हों। ग्लेडस्टोन "राजमन्त्री इंगलैंड" की पोती घर के आंगन में खेलते समय पग नंगे रखती थी। कुछ काल चलते हुए जूता न पहिना जावे इसलिये ऋषियों ने इस सूत्र में यह उपदेश दिया है कि ग्राम के अन्दर जूता न पहिने। छत्र भी ग्राम के अन्दर इसी अभिप्राय से वर्जित है कि कुछ कुछ अभ्यास कष्टसहन का जावे, परन्तु इसका आशय यह नहीं कि दो प्रहर के समय प्रचण्ड धूप में व्यर्थ चलने से आंखे ही खराब करली जावें। सूत्रकारों के आशय गम्भीर होते हैं उनकी व्याख्या और व्याप्ति जहांतक उन पर मनन करें युक्त उपयोगी सिद्ध होती जाती हैं।

(१८) इस सूत्र में ऐसा उपदेश है कि विना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श न करे और उपस्थेन्द्रिय-स्पर्शन से वीर्यस्खलित कभी न करे अर्थात् हस्तमैथुन त्यागदे। वीर्य्य को शरीर में रखके ऊर्ध्वरेता बने ताकि वीर्य्य गिरे नहीं। जिनके मन में वीर्य्य-निग्रह की इच्छा तीव्र है वह कभी अपने हाथ से अपनी उपस्थेन्द्रिय का स्पर्शन वा मर्दन वीर्य्य गिराने के

लिये नहीं करते । जो इस प्रकार वीर्य्य गिराते हैं उनको अनेक रोग अवश्य ग्रस लेते हैं, उनकी छाती सुकड जाती आवाज बिगड जाती, स्मृति नष्ट होजाती, मन शोकातुर रहता, देह से बल उड जाता, एकान्त में चोरों के समान बैठने में रुचि रहती, नपुंसकपन का रोग होजाता है। यदि उचित समय पर डाक्टर वा वैद्य को बताकर ओषधि नहीं की जावे तो भारी रोगों का होना सम्भव है। ओषधि-सेवन और कुचेष्टा-त्याग से बहुत लाभ होजाता है।

कई लोग कहा करते हैं कि ऋषियों ने "हस्तमैथुन" से बालकों को बचाने का उपदेश कहीं नहीं किया, वे जरा निम्नसूत्र का पाठ करजावें। गोभिल गृह्यसूत्र प्रपाठक ३ कंडिका १ के सूत्र २६ में इसी भाव का बोधक यह सूत्र है कि:--"**स्वयमिन्द्रियमोचनम्**' जिसका भावार्थ यह है कि इन्द्रियमोचन अर्थात् अपने हाथ से मर्दन करके वीर्य्य छोडे नहीं।

(१९) तैलादि से अंगमर्दन, उबटना, अतिखट्टा-इमली आदि, अतितीखी-लालमिरची आदि, कसेला—हरडे आदि, क्षार-अधिक लवण आदि और रेचक-जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर । यह लेख संस्कारविधि में है, ऊपर के लेख में यदि तैलादि शब्द के आगे उबटना शब्द रक्खा जावे और मर्दन आगे से हटा दिया जावे तो वाक्यरचना अधिक उत्तम हो सकती है । मूलसंस्कृत सूत्र पर विचार करने से विदित होता है कि तैल से अभ्यङ्गमर्दन का निषेध है। अभ्यंगमर्दन से तात्पर्य्य तैल की मालिश से है जैसा कि मल्ल (पहलवान) लोग करते हैं अथवा चोट आदि लगने पर विशेषरूप से की जाती है। जिस प्रकार इसी सूत्र में "अतिअम्ल" (अधिक खटाई) "अतितिक्त" (अधिक तीखे) पदार्थ खाने का निषेध है उसी प्रकार तैल की अति मालिश का भी निषेध है। साधारण रीति से जैसा गृहस्थी लोग बालकों के तैल मलते हैं, उनका निषेध नहीं। तैल साधारण रीति से भी मला हुआ शरीर को पुष्टि देता है और कान में डालते रहने से कर्णरोग नहीं होते। आयुर्वेद में स्नान से पूर्व तैल लगाने के बहुत लाभ लिखे हैं। पाश्चिम के डाक्टर ह्यूफलड साहब के वचन हैं कि तैल का मलना बहुत हितकारी है। अनुभव से देखा जाता है कि शीतकाल में मनुष्य तैल शरीर पर न मलें तो चमड़ा कडा होकर फटने लगता है और बालकों को तो कभी कभी असह्य वेदना सहनी पड़ती है साधारण रीति से तैल लगाने वाले को फुंसी आदि चर्मरोग नहीं होते यह आयुर्वेद का दृढ़ मत है इसलिये मर्य्यादा से तैल लगाना चाहिये।

(२०) नित्य युक्ति से आहार विहार करके विद्याग्रहण में यत्नशील हो। यह उपदेश संस्कारविधि में लिखा है। सूत्र की मूलसंस्कृत में जो विहार शब्द है, उसके अर्थ हिंदी में खेल कूद वा सैर के होते हैं। एक संस्कृतकोष में विहार शब्द के लिये परिक्रम शब्द दिया है। जिसके अर्थ प्राय: बोलचाल में सैर के होते हैं, तात्पर्य्य यह है कि ब्रह्मचारियों को आल्हादयुक्त खेल कूद वा सैर आदि के लिये नियत समय मिलना चाहिये ताकि उनके मन में उत्साह और हर्ष बना रहे। व्यायाम और विहार में भेद है, अंगरेज़ी में व्यायाम के लिये

और विहार के लिये शब्द पृथक् पृथक् हैं। व्यायाम का विहार अंग है ऐसा यूरोप आदि देशों में भी माना जाता है।

(२१) सुशील, थोड़ा बोलने वाला, सभा में बैठने योग्य गुण ग्रहण कर, यह लेख संस्कारविधि में है। मूल संस्कृत में जो " मितभाषी " शब्द है उसका अर्थ ऊपर लेख में थोड़ा बोलने वाला किया गया है और कोई भ्रान्ति से यह समझ सकता है कि ब्रह्मचारियों को अधिक मौन रहने का उपदेश है पर मूलसूत्र में मितभाषी शब्द से मर्य्यादायुक्त बोलने का विधान है। मर्य्यादा से ही बोलना चाहिये, अधिक मौन और बकवाद का निषेध है।

(२२) मेखला और दण्ड का धारण, भिक्षाचरण, अग्निहोत्र, स्नान, सन्ध्योपासन, आचार्य्य का प्रियाचरण, प्रातःसायं आचार्य्य को नमस्कार करना ये तेरे नित्य करने के और जो निषेध किये वे नित्य न करने के कर्म हैं, यह लेख संस्कार विधि में हैं।

मूलसूत्र में " विद्यासंचयजितेन्द्रियत्वादीनि " ये शब्द भी हैं जिनके अर्थ छूटगये हैं अतः " विद्यासंचय, जितेन्द्रिय रहना आदि " यह भी उपरोक्त अर्थों में जोड़ देने चाहियें।

जब पिता यह उपदेश कर चुके तब बालक भिक्षा मांगे। मुफ्त और लाजमी शिक्षण आजकल के समय में प्राइमरी वा मिडिल श्रेणियों तक कई सभ्य देशों में दिया जाता है। मुफ्त शिक्षण का भार राजा और प्रजा दोनों पर होता है पुराने समय में शिक्षण-सम्बन्धी जो भार प्रजा पर था इसका एक भाग शिक्षकमण्डल प्रजा से आप सञ्चित करता था और उस सञ्चय को परिभाषा में " भिक्षाचरण " कहते थे। आजकल जब किसी देशीय विद्यालय के लिये देश के वृद्ध पुरुषों को धन के सञ्चित करने की जब कभी जरूरत होती है तो तब वह वृद्ध-पुरुष एक " भिक्षामण्डली " जिसको अंग्रेजी में " डेपूटेशन " कहते हैं, बनाकर निकलते हैं। उक्त डेपूटेशन वा भिक्षामण्डली का सभासद् होना लोग अपना गौरव समझते हैं। पुराने समय में रोज प्रत्येक ग्राम के अन्दर ब्रह्मचारियों की भिक्षामण्डली या डेपूटेशन निकला करता था और प्रत्येक ब्रह्मचारी जैसा कि मनुआदि स्मृतिकार और सब सूत्रकार लिखते हैं भिक्षा का आचारण अपना कर्तव्य समझता था। यह कोई आलसियों की भिक्षामण्डली न थी जिसका कि निरादर हो यह तो देश के नौनिहाल प्राण प्यारे और आंखों के तारे, अपने अपने नगर वा ग्राम से मानों उन गुरुओं की ओर से जिन्होंने मुफ्त और लाजमी तालीम देने का आयु भर व्रत धारण कर लिया है, गुरुकुलों के चलाने के आर्थिक सहायता लेने जाते थे। गुरु विद्यादान देते थे और बालकों के मातापिता अन्न धनादि का दान, विद्यादान को चलाने के प्रयोजन से करते थे। ब्रह्मादेश में एक भी लड़का लड़की इस समय अशिक्षित आपको नहीं मिलेगा इसके कारण केवल दो ही हैं। (१) तो यह ब्रह्मादेश के गुरुकुलों में शिक्षक लोग मुफ्त और लाजमी तौर पर शिक्षण देते हैं जिसको संस्कृत के एक शब्द में विद्यादान कह सकते हैं।

(२) प्रजा के लोग विद्यादान के निमित्त अन्नदान करते हैं।

कभी समय आवेगा कि लोग विद्यादान का महत्व समझेंगे उस समय वह स्वयं विद्यादान की प्रथा को जीवित रखने के लिये विद्यालयों में अन्नादि दान करना कर्त्तव्य समझेंगे।

विद्यादान (मुफ्त तालीम) का आधार भिक्षाचरण तथा राजकीय सहायता पर है, जिस देश में तालीम लाजमी और मुफ्त होगी, वहां प्रजा चाहे जिस प्रकार धन देवे, दिये विना वह रह नहीं सकती। ऋषियों की विद्यादान और भिक्षाचरण की प्रथा आज पर्यन्त ब्रह्मादेश में है और उसका कितना उत्तम फल है कि ब्रह्म देश में एक भी बालक अशिक्षित नहीं है * । इस भिक्षाचरण के पश्चात् बालक का शुभ आसन पर बैठाकर वामदेव्यगान करना चाहिये फिर बालक भिक्षा में से भोजन करे तत्पश्चात् विशेष होम सायंकाल करे। इस होम में चार विशेष आहुति हैं। पहिली तथा दूसरी आहुति के मन्त्र मेधा की उन्नति-सम्बन्धी हैं। तीसरी आहुति ऋषियों के आदरार्थ है जिसका प्रयोजन यह है कि मेधावी और सदाचारी आहुति ऋषियों का आदर करने से ही विद्या बुद्धि की प्राप्ति होसकती है। चौथी आहुति अभिमान-त्याग की सूचक है। फिर बारह आहुतियों का विधान है, तत्पश्चात् शिष्य अपने गोत्र को कहकर नमस्कार करे। फिर आचार्य आशीर्वाद देता है। इसके पीछे आचार्य और बालक दोनों भोजन करें और संस्कार में आनन्त्रित पुरुष स्त्रियों को यथायोग्य भोजन करा उनको विदा करें और सब जाते समय बालक को आशीर्वाद दें। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी को तीन दिन तक भूमि में शयन, प्रातः सायं "ओमग्ने सुश्रवः" इस मन्त्र से समिधा-होम और मुखादि अङ्ग स्पर्श आचार्य करावे तथा तीन दिन (सदसस्पति०) इत्यादि चार स्थालीपाक की आहुति पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मचारी के हाथ से करावे और तीन दिन तक शिष्य क्षार-लवणरहित भोजन किया करे, तत्पश्चात् पाठशाला में जाके गुरु के समीप विद्याभ्यास करने के समय की प्रतिज्ञा करे तथा आचार्य भी करे। इस प्रकार का लेख संस्कारविधि में है। तीन दिन तक यह विशेष हवन आदि क्यों करे, यह प्रश्न हो सकता है। इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि यह इसलिये कि नये मन पर अधिक प्रभाव पड़े। क्षार लवण आदि पदार्थ वीर्यवर्द्धक नहीं हैं। वीर्यवर्द्धक पदार्थ ही बुद्धिपोषक हैं इसलिये तीन दिन के लिये वैसा करने को कहा है। कोई कह सकता है कि जब यह बात है तो क्षार लवण आदि कभी भी सेवन नहीं करना चाहिये। नहीं, यह बात भी नहीं हो सकती जो पदार्थ वीर्यवर्धक हैं वे मिठास का गुण रखने से आंतों में कई प्रकार के कृमियों को उत्पन्न होनेका अवकाश देते हैं उनकी निवृत्ति के लिये लवण का मर्यादा से सेवन हितकर है। आंतरोग की निवृत्ति क्षार लवण से होती है। तीन दिन जमीन पर सोने के पीछे वह खाट आदि पर सो सकता था इससे यह बात सिद्ध होती है।

वेदारम्भसंस्कारसंबन्धी शङ्काएं और उनके उत्तर

प्रश्न—यज्ञोपवीत तथा वेदारम्भसंस्कार क्या कन्याओं और शूद्रों के लिये नहीं है ?

---

* गुजरात देश के एक महाविद्वान् लेखक ने एक मेगजीन में लेख लिखकर दर्शाया है कि इस समय ब्रह्मादेश की स्त्रियां विदुषी और गुणवती इसी शिक्षणप्रणाली के कारण हैं।

उत्तर—हैं। सत्यार्थप्रकाश स० ३ में महर्षि दयानन्दजी ने वेदमन्त्र के प्रमाण तथा अनेक अखण्ड युक्तियों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि वेद पढ़ने, सुनने का अधिकार मनुष्यमात्र को है।

पुरुषार्थप्रकाश नामी सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में से बीस प्रमाण यहां पर देने हम उपयुक्त समझते हैं; वहां तो अनेक प्रमाण शास्त्रों के और भी दिये हुए हैं उन्हें सत्य के प्रेमी जन वहां देख सकते हैं *।

(१) आथर्वणस्य वेदस्य शेष इत्युपदिशन्ति॥ आपस्तंब धर्मसूत्र अ० ११। खण्ड १९॥ अर्थः—स्त्री और शूद्र को अथर्ववेद पढ़ाना चाहिये।

२) ब्रह्म वै स्तोमानां त्रिवृत् पंचदशो विशः सप्तदश शौद्रो वण एकविंशः॥ ऐतरेय ब्राह्मण पं० ८। अ० १॥

अर्थः—ब्राह्मण नव, क्षत्रिय पन्द्रह, वैश्य सतरह और शूद्र इक्कीस अग्निष्टोम करे इससे सिद्ध हुआ कि शूद्र को यज्ञद्वारा वेदाध्ययन का अधिकार है।

(३) ऋग्वेद मंडल १० अनुवाक ३ सूक्त ३० से ३४ तक का मन्त्रद्रष्टा ऋषि "कवष ऐलूष" हुआ है। और "कवष ऐलूष" जन्म से शूद्र था, यह बात ऐतरेय ब्राह्मण की पंचिका २ अ० ३ में है

(४) एहीति ब्राह्मणस्यागत्याद्रवेति वैश्यस्य च राजन्यबन्धोश्चाधावेति शूद्रस्य॥ शतपथ कां० १। प्र० १। अ० १। ब्रा० ४। कं० ११॥

अर्थः—चारों वर्ण वेदमंत्रों से यज्ञ की हवि को शुद्ध कर॥

(५) हविष्कृदेहीति ब्राह्मणस्य हविष्कृदागहीति राजन्यस्य हविष्कृदाद्रवेति वैश्यस्य हविष्कृदाधावेति शूद्रस्य प्रथमं वाव सर्वेषाम्॥ आपस्तम्ब श्रौतसूत्र प्र० १। का० ९॥

अर्थः—यज्ञ के विधान में पूर्वोक्त पृथक् पृथक् मंत्रों स चारों वर्ण हवि शुद्ध कर इससे शूद्र को वेदाधिकार का होना सिद्ध होता है॥

(६) आचान्तोदकाय गौ ˜ ति नापितस्त्री ब्रयात्॥ मुंच गा वरुणपाशात् गोभिलीय० सू० प्र० ४। कं० १०॥

अर्थः—पूर्वोक्त मंत्र हज्जाम को जो कि शूद्र है वेदाधिकार सिद्ध होता है।

---

* विद्वद्वर्य भारतभूषण श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी तथा श्री स्वामी नित्यानन्दजी सरस्वती कृत यह ग्रन्थ है। जयदेव ब्रदर्स बड़ौदा से यह ग्रन्थ मिल सकता है॥

† महर्षि दयानन्दजी कृत वेदभाष्यानुशीलन पृ० सं० ३० (टिप्पणी)"

(७) तयैवावृता निषादस्थपतिं याजयेत् ॥ आप० श्रौ० सू० प्र० ९। का० १४ ॥

अर्थ — पहिले जिस यज्ञ का प्रतिपादन किया है वह सब निषाद (अतिशूद्र) से कराना ॥ सावित्री पुरोनुवाक्या ' इस सूत्र से गायत्री मन्त्र का शूद्र को अधिकार है ॥

(८) फलार्थत्वात्कर्मणः शास्त्रं सर्वाधिकारं स्यात् ॥ ४ ॥ पूर्वमीमांसा अ० ६। पा० १ ॥

अर्थः—विद्याध्ययन तथा यज्ञ आदि कर्म मनुष्यमात्र को फल देते हैं चाहे पढ़ने वा यज्ञ करने वाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र वा अन्त्यज हो। जो विद्या पढ़े उस को विद्या आवेगी। यज्ञ करेगा वह उसका फल पावेगा और उस पर उसका शुभ प्रभाव पड़ेगा।

(९) शूद्रणामदुष्टकर्मणामुपनयनम् ॥ १ ॥ पारस्कर गृ० का० २। गृ० ६० ॥

अर्थः—जो शूद्र दुष्ट कर्म करनेवाला न होवे तो उसका उपनयनसंस्कार करना चाहिये। दुष्ट कर्म करनेवाले ब्राह्मणादि का उपनयन नहीं करना इसके लिये देखो आपस्तंब सू० प्र० १, ५० सू० ५ ॥

(१०) यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्याँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥ यजुर्वेद अ० २६। मं २ ॥

अर्थः—परमेश्वर उपदेश करते हैं कि जिस प्रकार मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, (अरण) अतिशूद्र अर्थात् (अरर आराकर्मणि) अन्त्यज आदि सर्व मनुष्यमात्र के लिये वेद का उपदेश करता हूं उसी प्रकार हे मनुष्यो! तुम भी करो।

कन्याओं को अधिकार हैः—

(१) ब्रह्मचर्येण कन्याऽयुवानं विन्दते पतिम् ॥ अथर्ववेद का० ११ अनु० ३ व० १५ ॥

अर्थः—वेदाध्ययन व्रतपालन की हुई विदुषी, युवती, कन्या युवा पति से विवाह करे।

(२) समानं ब्रह्मचर्मम् ॥ श्रौतसूत्रपटल कं० १५ ॥

अर्थः—स्त्री पुरुष का ब्रह्मचर्य समान होना चाहिये ॥

(३) ऋग्वेद मं० १ अनु० २३ सू० १७९ की प्रचारिका ऋषि लोपामुद्रा हुई है। मं० ८ अनु० ९ सूत्र ९१ का ऋषि अपाला देवी हुई थी।

(४) अथ य इच्छेद्दुहिता मे पण्डिता जायत ॥ बृह० उपनिषद् अ० ८। ब्रा० ४ ॥

अर्थः—जो मनुष्य इच्छा करे कि मेरे विदुषी कन्या उत्पन्न हो तो वह चावल पकाकर उस में घी डालकर पति पत्नी दोनों खावें।

(५) इमं यज्ञं सहपत्नीभिरेत्य ॥ अथर्ववेद का० १९ । अनु० ७ । व० ५९ ॥ ६ ॥ अर्थः—इस यज्ञका पत्नी सहित करो ॥

(६) तच्चाम्नायो विदध्यात् ॥ गोभि० गृ० प्र० १ । क० ६ ॥

अर्थः—स्त्री आम्नाय (वेद) को पढ़े।

(७) प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदायन्जपेत् सोमोऽददद् गन्धर्वायेति ॥ गोभि० गृ० प्र० २ । का० १ ॥

अर्थः—जो कन्या उत्तम वस्त्रों से (प्रावृत) आच्छादित और (यज्ञोपवीतिनीम्) यज्ञोपवीत धारण की हुई हो उसको विवाह में शाला में लावे और "सामोऽददद्" इत्यादि मन्त्रों को वर बोले, इस कन्या का उपनयनाधिकार स्पष्ट सिद्ध ही है ॥

(८) स्त्रिय उपनीता अनुपनीताश्च पारस्कर गृह्यसूत्र पृष्ठ ८४ ॥

इससे कन्याओं के उपनयन संस्कार का विधान स्पष्ट है।

(९) उत्तरोत्तरिकवाचो व्याहारययेयुर्यावतीरधिगच्छेयुः ॥ २० ॥ लाट्या० श्रौ० प्र० ४ । क० २ ॥

इस मूल सूत्र की टीका में लिखा है कि (शास्त्राण्यधिकृत्य कथाः कारयेयुरिति) वे दासियां परस्पर शास्त्र की कथा करें। इससे शूद्र वा स्त्रियों को भी वेद आदि मूल शास्त्रों के पढ़ने का अधिकार सिद्ध होता है।

(१०) फलवत्तां च दर्शयति ॥ २१ ॥ पूर्वमीमांसा अ० ६ । पा० १ ॥

इससे स्त्री पुरुष दोनों को यज्ञ का समान अधिकार हैं।

श्रीमन्त महाराजा सयाजीराव बड़ौदा का प्रयोग सफल हुआ

यह बात सबको याद रखनी चाहिये जैसे कि पुरुषार्थप्रकाश में लिखा है कि :— "आंख को बोलने का अधिकार नहीं" तो लाख यत्न करने पर भी "आंख बोल नहीं सकेगी" इसी प्रकार कन्या, स्त्री, दासी, शूद्र यदि इनको विद्या तथा वेदादि शास्त्रोंके पढ़ने, यज्ञ तथा षोडश संस्कार करने का अधिकार ईश्वर ने न दिया होता तो कोई भी कन्या, स्त्री, दासी शूद्र तथा अतिशूद्र आज करोड़ यत्न करने पर भी पढ़ न सकता।

उस समय भारतभूषण श्रीमन्त महाराजा सयाजीराव गायकवाड बड़ौदा ने जो प्रयोग (तजुर्बा) अन्त्यज बालकों को सुशिक्षित करने का कर रक्खा था वह दश वर्षों के अन्दर ही सफलता को प्राप्त होगया जिससे सिद्ध होता है कि अन्त्यज भी बराबर विद्या और शास्त्रों के पढ़ने के अधिकारी हैं। उस समय १७००० अन्त्यज बालक बड़ौदा राज्य में २०८ अन्त्यज

स्कूलों में शिक्षण पा रहे थे। २०० अन्त्यज विद्वान् मास्टरों का काम कर रहे थे अनेक अन्त्यज ट्रेनिङ्ग कालेज परीक्षाएं पास किये हुए अन्त्यज स्कूलों के असिस्टेंट डिप्टीइन्सपेक्टर के काम पर नियुक्त थे। बडोदा नगर के अन्त्यज बोर्डिंगहाउस में ३५ लडके और १५ लडकियां थीं। यह लडके लडकियां वेदपाठ, सन्ध्या, हवन यज्ञ दो काल करते थे, रविवार के रोज निकट के ग्रामोंमें कभी कभी जा जा कर लेकचर देते थे। अनेक बोर्डर हाईस्कूल में अङ्गरेजी और संस्कृत भी पढ़ते थे। आगरा निवासी श्रीयुत राय बैजनाथ साहब जज ने जब इस अन्त्यज बोर्डिङ्गहाउस बडौदा को देखा तो उन्होंने यह सम्मति प्रकट की थी कि:—"बोर्डरों की शकल से कोई भी यह नहीं कह सकता कि वे अन्त्यज जाति के बालक हैं, वेद मन्त्रों का पाठ, संध्या, गायत्री ऐसी अच्छी करते हैं जैसा कि कोई ब्राह्मण का लड़का कर सके"।

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के प्रान्तों के अनेक अनुभवी विद्वानों ने बडौदा में अन्त्यज स्कूलों और बोर्डिङ्ग हाउसों को देखा, सब के सब यही कहते थे कि श्रीमंत महाराज सयाजीराव गायकवाड का प्रयोग सफल हुआ और यह बात प्रत्यक्ष होगई कि अन्त्यज बालक गुजराती, हिंदी, संस्कृत और अंगरेजी उत्तमता से द्विजों के बालकों के समान पढ़ रहे हैं और पढतेथे।

वेदारम्भ-संस्कार में पिता की ओर से जो सूत्रों में उपदेश किये गये हैं उनकी व्याख्या जो हम पूर्व लिख आये हैं उसको कई लोग, जिन्होंने आन्दोलन "रिसर्च" नहीं किया, हम पर खैंचतान का दोष लगाने को तय्यार होजावेंगे। इसलिये इस लेख द्वारा हम अपनी व्याख्या की पुष्टि में जो कुछ सामग्री है वह नीचे निवेदन करेंगे, जिसके पाठ से निष्पक्ष सज्जनों को विदित हो सकेगा कि उन सूत्रों की हमारी व्याख्या युक्त ही है। गोभिल गृह्यसूत्र के संस्कृत तथा हिन्दी भाष्य में से जो ब्रह्मप्रेस इटावा में छपा है, हम भारतभूषण विद्वद्वर्य्य श्री पण्डित सत्यव्रत सामश्रमीजी की संस्कृत व्याख्या तथा श्री उदयनारायणजी वर्मा का नागरी अनुवाद देते हुए दिखायेंगे कि इन सूत्रों के आशय क्या हैं? ॥ (गोभिल० प्र० ३। ख० १। सूत्र १८,१९)

उपरि शय्याम् ॥ १८ ॥ कौशीलवगन्धाञ्जनानि ॥१९॥ यह मूल सूत्र हैं। इनकी व्याख्या श्री सत्यव्रत सामश्रमीजी यह करते हैं:—"उपरिशय्यां, गुरु शय्याया उच्चैः शयनं वर्जय। इति पञ्चमोपदेशः ॥ १८ ॥

अर्थः—गुरु की शय्या की अपेक्षा अपनी शय्या ऊंची न करना ॥ १८ ॥

कौशीलवं नृत्यगीतवादित्राद्यनुष्ठानम्, गन्धः घृष्टमलयजादिको, माल्याद्युतश्च अञ्जनं चक्षुषोः शोभासम्पादकम्, एतान्यपि त्रीणि वर्जय। अत्रापि यथा चाध्ययनस्य व्याघातकरो मनोऽत्राविर्भावः स्यादेवं कौशीलवादिकं वर्जयेत न तु सामादिगीतवादित्रचर्चां नापि गुरुप्रसाद-गन्धमालादि न च रोगाद्युपशमनायाञ्जनव्यवहारं वर्जयेत्। अतएव मनुनाऽभ्यधायि "यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते" ॥ १९ ॥

अर्थः—जिससे मनोविकार उत्पन्न हो ऐसा नृत्य, गीत बाजा आदि की चर्चा, चन्दन और मालादि गन्ध का व्यवहार एवं आंखों में अञ्जन आदि धारण न करना ॥ १९ ॥

हमने जो ऊपर नागरी अनुवाद किया है वह भावार्थरूप ही है, अक्षरार्थ नहीं। सत्यव्रत सामश्रमीजी की संस्कृत व्याख्या का अक्षरार्थ नीचे हम लिखते हैं—

जिससे मनोविकार उत्पन्न हो ऐसा नृत्यगीत बाजा आदि की चर्चा, चन्दन और मालादि गन्ध का व्यवहार, एवं आँखों में शोभाकारक अञ्जन यह तीन भी वर्जित हैं। यहां भी अध्ययन आदि में हानिकारक, मनोविकार उत्पन्न करने वाला कोशीलव आदि वर्जित है, न कि साम आदि गीत, बाज आदि की चर्चा और न गुरु का प्रसादरूप गन्धमाला आदि वर्जित हैं, और न रोग आदि के शांत करने लिये अञ्जन को लगाना वर्जित है। इसीलिये मनु ने भी कहा है " यःस्रग्व्यपि द्विजोऽधीते " ॥

मूल सूत्र **क्षुरकृत्यम् ॥ २२ ॥ अन्तर्ग्राम उपानहोर्धारणम् ॥ २५ ॥**

" क्षुरकृत्यम् " क्षुरेण केशलोमादीनां वापं वर्जय ॥ २२ ॥

अर्थः—उस्तरा के द्वारा केश, लोम आदि का मुण्डन न करावे ॥ २२ ॥ ‡

" अन्तर्ग्रामे " ग्राममध्ये उपानहोः, चर्मपादुकयोः धारणं वर्जय ॥ २५ ॥

अर्थः—ग्राम के मध्य में जूता न पहिने ॥ २५ ॥

।मि न्द्रियमोचनमिति ॥ २६ ॥ स्वयमिन्द्रियमोचनम्, हस्तमैथुनञ्च वर्जयत्येव ॥ २६ ॥ अर्थः—हस्त मैथुन न करना। † यह दुर्गुण आजकल स्कूल एवं कालेज के लड़कों में अधिकांश पाया जाता है, इसका कारण शिक्षा का अभाव है।

(१) " उपरि शय्यां वर्जय " के अर्थ जो श्री पं. सत्यव्रत सामश्रजीने किये हैं, उनके अनुसार ब्रह्मचारी मुञ्ज आदि से बुनी हुई खाटा पर सो सकते हैं, गुरु की खाट उनकी खाट से ऊंची रहनी चाहिये। बोर्डिङ्गहाउसों का जो कुछ हमें अनुभव है उसके अनुसार हम कह सकते हैं कि खाट शीघ्र ढीली होजाती हैं और उनके कसने आदि के रगडे से बचने के लिये काष्ठशय्या (तख्त), जो गुरुकुलों में उपयोग किये जाते है, बहुत अच्छे हैं।

(२) गोभिल गृह्यसूत्र में गोदान-संस्कार के लेख के अन्तर्गत एक स्थल पर ऐसा विधान है कि पीने का जल कूप का होना चाहिये और जब जब जरूरत हो तुर्त भरा जावे। उत्तम कूप के जल में नल के जल से भी भारी लाभ यह है कि गर्मियों में ठंडा और सर्दियों में स्वयं गरम होता है। कोयले और बर्फ पर जो पैसा खर्च होता है वह बच सकता है।

---

‡ (नोट) ब्रह्मचर्य काल में उस्तरे से क्षौर कराने का निषेध है। यदि महीने में एकवार कैंची से बाल कटाये जावें तो कोई हानि नहीं, ऋषियों का आशय यह नहीं हो सकता कि शिर में मैल या जूएँ पड़ जायं और न उनका आशय यह हो सकता है कि उस्तरे से खत बनाते हुए श्रृङ्गार करते रहें। केवल स्वच्छता के लिये आवश्यकतानुसार कैंची से बाल कटते रहें।

† यह अनुवादकर्ता महोदय का नोट है, जो हमने अनुवाद के साथ ही उपयोगी समझ कर उध्दृत कर दिया है।

बड़े नगरों में नल जारी हो गये हैं पर ग्रामों में तो कूपजल ही काम देता है और किसी गुरुकुल में नल भी हो तो भी एक कूप अवश्य निकट की उत्तम भूमि मे पीने के पानी के लिये होना चाहिये। कई अंग्रेज कूपों को काष्ठ के सरपोश से ढक देते हैं, ऐसे कूपों का जल, वायु के बन्द होने से खराब होजाता है। वृक्ष के पत्ते कूप में गिरने से बचाव के लिये जैसे हवनकुण्ड के ऊपर छतरी सी बना देते हैं वैसे बना देनी ठीक है। जिस कूप से पीने का जल भरना हो उस पर स्नान करना, कपड़े धोने, कुण्डों में पानी भरना नहीं चाहिये। राख वा मट्टी से मँजा हुआ बर्तन धोने के लिये कूप में नहीं डालना चाहिये। चाहिये। लोहे की संकला से बंधा हुआ लोहे का डोल पानी खैंचने के लिये काम में लाना चाहिये। भूलकर भी चरसा वा बोका व चर्मडोल पीने के कूप में नहीं डालना चाहिये। अमृतसर के सुप्रसिद्ध डाक्टर मेलरोनी का कथन है कि चमड़े का बना हुआ बर्तन कभी कूप में नहीं डालना चाहिये और नहीं मशक (चर्मपात्र) में रक्खा हुआ पानी कभी पीना चाहिये। अमृतसर तहसील के सब सरकारी अस्पतालों के कूपों पर लोहे के डोल लोहे की शृङ्खला से बँधे हुए उपयोग किये जाते हैं। गुजरात और युक्तप्रान्त में कूपों पर चरखी नहीं होती, जिस प्रकार पंजाब में कूओं पर चरखियें (मोनिए) होती हैं, वैसी सर्वत्र होनी चाहियें।

(३) स्मृतियों में लिखा है कि नंगे होकर स्नान नहीं करना चाहिये उसका केवल आशय यही है कि दूसरों के सामने वा खुली जगह में जहां पर दूसरों के आने जाने की सम्भावना है, नग्न नहीं नहाना चाहिये। स्नानगृह में दरवाज़ा बन्द करके नग्न स्नान करने में कोई दोष नहीं। (४) आजकल साबुन का उपयोग बहुत चलगया है परन्तु उसके साथ शरीर पर तैल मलने की प्रथा उड़ गई है। बड़े बड़े डाक्टरों का कथन है कि साबुन से रोज नहाना ठीक नहीं। जो लोग अंगोछे से या धोती से स्नान करते समय शरीर वा पग, हाथ युक्ति से कोमल रीति से रगड़ लेते हैं उनको साबुन की आवश्यकता पड़ती ही नहीं। विलायत में कोई डाक्टर दो अंगोछे रखते हैं, एक से शरीर मलते हैं दूसरे से पोंछते हैं। शिर और मुख पर तो साबुन लगाने की ज़रूरत नहीं आंवले भिगो कर उसके पानी से शिर तथा मुख धोना आयुर्वेद के अनुसार बहुत हितकर है। शिर पर लगाने के लिये खालिस सरसों का तैल वा तिल का तैल वा नारियल का हितकर है।

(५) आसन (बैठने की वस्तु) कई प्रकार के हैं। सन्ध्या के लिये कुशासन, तृणासन (चटाई), उर्णासन (कम्बल), काष्ठसन (बेंच) इत्यादि। विष्टर भी एक उत्तम प्रकार का आसन होता है। इसको चौकी वा कुर्सी भी कह सकते हैं। पुस्तक रखने की घोड़ी को टेबल वा मेज कहते हैं। धरणी हिन्दी मे कह सकते हैं। जो जो वस्तु उपयोग में आवे उस उस को हिन्दी शब्द से पुकारना चाहिये। जैसे गुजराती में रजिस्टर को पत्रक पुकारते हैं।

(६) सोने, खाने, हवन सन्ध्या के कमरों (कोठों) वा खण्डों में मट्टी का तैल नहीं जलाना चाहिये। मोमबत्ती का काम सरसों वा अरण्डी का तैल देता है।

प्रश्न—क्या छोटे लड़के लड़कियों का उनके गुप्तेन्द्रिय-सम्बन्धी कुछ उपयोगी शिक्षण देना चाहिये वा नहीं ?

उत्तरः—अवश्य देना चाहिये। शरीर एक अनुपम मन्दिर वा गृह है जिसमें जीवात्मा सब प्रकार के व्यवहार करता है। यदि कोई गृहनिवासी अपने अपने घर की किसी खिड़की का पूरा और उचित ज्ञान नहीं रखता तो क्या वह अपने मकान की हानि नहीं कर बैठेगा ? अवश्य कर बैठेगा। इसी प्रकार बच्चे उक्त ज्ञान न रखने के कारण हस्तमैथुन करते हैं। यजुर्वेद में—

वाचन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि ॥

इस मन्त्र द्वारा गुरु माता पितादि का कर्त्तव्य बतलाया गया है कि वे गुप्तेन्द्रियों का ज्ञान अपने बालकों को देवें। गृह्यसूत्रों में "वीर्यमोचन" (हस्तमैथुन) से बचाने के लिये गुरु, माता, पिता, का कर्तव्य दर्शाया गया है। यूरोप के शिक्षणशास्त्री अब मुक्तकंठ से यही बात कहकरहे हैं। "एज्यूकेशनल टाइम्स" में, जो लण्डन से प्रकट होनेवाला प्रामाणिक शिक्षणसम्बन्धी मासिकपत्र है उसके सितम्बर मास सन् १९१२ के अंक में डाक्टर पर्चार्ड महोदय का कथन है कि डाक्टर लोगों को गुप्त इन्द्रियों के विषय में शिक्षण देना चाहिये। यह सम्वाद करते हुए उसके योग्य सम्पादक महोदय लिखते हैं कि हमारे विचार में माता पिता इस विषय का शिक्षण देने के लिये अति उत्तम शिक्षकों का काम दे सकते हैं।

इसके पश्चात् इस के कई अंकों में इस बात पर चर्चा चलती रही है और अब यूरोप की पंडितमंडली स्वीकार करचुकी है कि गुप्त इन्द्रिय-सम्बन्धी शिक्षण माता पिता और गुरु की ओर से देना चाहिये। वेदारम्भ संस्कार में परिक्रमा का वर्णन आता है। यह एक स्तुति बोधक चिह्न है, नीचे के लेख से यह बात सिद्ध होगी।

सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम्। न्यवेदयदमेयात्मा दृष्टा सीतेति तत्त्वतः॥ रामायण बालकांड प्रथमसर्ग श्लोक ॥ ७८ ॥

अर्थ—रामचन्द्र के निकट आकर उनकी प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया तथा विनयपूर्वक जानकी का सब वृत्तान्त सुनाया कि सीता को भले प्रकार देख आया हूं ॥

हनुमान्‌जी ने श्री रामचन्द्रजी की जो परिक्रमा की उसका वर्णन उक्त श्लोक में पाया जाता है। यह प्रदक्षिणा हनुमान् के इस भाव का बोधक है कि वे रामचंद्रजी में दिव्य वा महान् गुणों का होना स्वीकार करते वा मानते हैं वा यों कहो कि स्तुति करते हैं। आज-कल कई लोग उन मन्दिरों की परिक्रमा करते हैं जिनमें राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, ऋषभदेव, पारसनाथ, बुद्ध की मूर्तियां होतीं हैं। मुसलमान लोग मक्के के मन्दिर की परिक्रमा करते और उनकी भाषा में इसको "त्वाफ" कहते हैं और वे इससे मानो बोधन कराते हैं कि मक्का पवित्र स्थान है। कई लोग यह समझते हैं कि छोटी आयुवाला ही, गुरु आदि बड़ी आयुवालों की, परिक्रमा करता है, यह ठीक है, पर कभी कभी बड़ी आयुवाले वृद्ध महात्मा भी छोटी आयुवालों की परिक्रमा करते हैं, जब उनको छोटी आयुवालों में दिव्य गुण वा

गुणविशेष स्वीकार कर उस स्वीकृति का बोधन कराना अभीष्ट हो । यथा—

तथा ब्रुवति रामे तु जामदग्न्ये प्रतापवान् ।
रामो दाशरथिः श्रीमांश्चिक्षेप शरमुत्तमम् ॥
रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः ।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः ॥
(रामायण बालकांड सप्तविंशसर्गः श्लोकः ४०,४१)

अर्थ :— जमदग्नि के पुत्र परशुराम के उक्त प्रकार कथन करने पर श्रीमान दशरथ के प्रतापी पुत्र राम ने उत्तम तीर को छोड़ा, तब परशुराम ने रामचन्द्र की प्रशंसा की और उनकी प्रदक्षिणा करके अपने स्थान को चले गये । यहां पर वृद्ध परशुराम ने रामचन्द्र की, जो आयु में उससे छोटा था, प्रदक्षिणा की, उसका वर्णन है । परशुराम का परिक्रमा करना इस बात का बोधन करता है कि उसने स्वीकार करलिया वा मानलिया कि राम में शूरता का दिव्य (विशेष) गुण है ।

ब्रह्मचारियों के वस्त्र कैसे रंग के हों

जब सबसे पहिले तजुर्बे के तौर पर पहला गुरुकुल गुजरानवाला में खुला था ब्रह्मचारियों को श्वेतवस्त्र धारण करने के लिये दिये जाते थे । जब महात्मा नारायण कृष्णजी तथा श्रीयुत बाबू रलारामजीने यह अनुभव किया कि ब्रह्मचारी कपड़े शीघ्र मैले कर देते हैं तब पीला रंग उनके कपड़ों को रंगने के लिये तजवीज़ किया गया, फिर यही पीला रंग सब गुरुकुलों में प्रचार पागया । कई सज्जनों ने इस विषय पर प्रश्न भेजकर हमारा ध्यान दिलाया है । उनके प्रश्नों के उत्तर में पुराने ग्रन्थों में जो लेख मिलता है वही हम पाठकों के सन्मुख रखते हैं । यह भी दर्शा देना उचित होगा कि पुरानी संस्कारविधि में ऋषि दयानन्दजीने भी यही गृह्यसूत्र उध्दृत किये थे ।

यदि वासांसि वसीरन्नक्तानि वसीरन्, काषायं ब्राह्मणो माञ्जिष्ठं क्षत्रियो हारिद्रं वैश्यः ॥ प्रथम अध्याय कंडिका १९ । सूत्र ९ । आश्वलायनीय गृह्यसूत्र ॥

अर्थ :— यदि वस्त्र पहिनावे तो लाल रंग वाले हों अर्थात् गेरुवे रंग वाले ब्राह्मणपदाधिकारी बालक के और मजीठ के रंग वाले क्षत्रियपदाधिकारी बालक के और हल्दी के रंग वाले वैश्यपदाधिकारी बालक के हों । लाहौर के पदार्थविज्ञानशास्त्री महात्मा पण्डित गुरुदत्तजी एम. ए. ने इस बात को अनुभव किया था कि गेरू का रंग शरीर की खाल को शान्त करता है । आयुर्वेद में रक्तशुद्धि के लिये गेरू का प्रयोग होने से यह सिद्ध होता है कि गेरू मिट्टी में भगवान् ने अद्भुत गुण रक्खे हैं । मजीठ न केवल प्रसिद्ध औषधि किंतु कपड़े रंगने के लिये इसका बड़ा भारी उपयोग किया जाता है । मजीठ रंग का वस्त्र कोई चर्मरोग उत्पन्न होने नहीं देता । पञ्जाब में मजीठ का रंगा कपड़ा सालु कहलाता है

और विवाह आदि में पवित्र समझ कर उपयोग में लाया लाया जाता है। गेरू की तरह यह भी जल्द मैला नहीं होता। मुसलमानी तथा मरहठा राज्य में मजीठ से सरकारी जाजम, तकिया, गोदड़ा कागज बांधने के बस्ते आदि रंगने का रिवाज रहा है और अबतक भी प्रायः सरकारी वस्तुएं इसी रंग में रंगने की प्रथा जारी है जिससे मालूम होता है कि क्षत्रियवर्ण ने मजीठ के लाल रंग को इस सूत्र के अनुसार खूब अपनाया है, राज्याधिकार दिखाने के लिये प्रायः नक्शों में सदैव लाल रंग ही उपयुक्त होता है। ब्रिटिश इन्डिया को लाल रंग ही बोधन करेगा। हल्दी भी अद्भुत गुण रखने वाली वस्तु है, चोट लगने पर खून के दौरे को गति देने के लिये ही केवल नहीं किन्तु इसके रंगे हुए कपड़े में चिऊंटी नहीं आती और त्वचा के मैल को हरण करने की भी इसमें शक्ति है इसीलिये उबटने में यव के चूर्ण के साथ हल्दी मिलाई जाती है। आजकल लोग हल्दी जैसी पवित्र और लाभदायक वस्तु से वस्त्र न रंग कर जर्मनी के उस पीले रंग से वस्त्र रंगते हैं जो रंग त्वचा के रोगों को बढ़ाने वाला सिद्ध होजाता है। हल्दी में वस्त्र को रंगते समय यदि कुछ फिटकरी का पानी डाला जाय तो उसकी सुन्दरता बहुत बढ़ जाती है। उक्त आश्वलायन गृह्यसूत्र पर गार्ग्य नारायणी वृत्ति है उसका तथा गौतम मुनि का मत यह दर्शाया है कि :—

वासांसि क्षौमचीरकुतपाः सर्वेषां कार्पासं वाऽविकृतमित्यादि ॥

इसका भावार्थ यह है कि ब्रह्मचारी कभी रेशमी वस्त्र न पहिने, क्योंकि रेशमी वस्त्र पहिनने वाले तपस्वी नहीं रहते।

इति वेदारम्भसंस्कारव्याख्या